काफ़ी हाऊस की मेज़ नं० ५

कुर्सियों का नम्बर क्रम बद्ध रखना काफ़ी हाऊस में सम्भव नहीं, कुर्सियों पर बैठने से लेकर झूमने तक की स्वतन्त्रता है, लेकिन अगर कुर्सियाँ चलाने की नौबत आ जाय, तो इसकी स्वतन्त्रता नहीं है।

अधिकांशतः प्रेम और रोमान्स, स्कैण्डल्स और अफ़वाह एक साथ काफ़ी हाऊस में फैलते हैं। पुराना ज़माना होता तो पृथ्वी फट जाती, शेषनाग का आसन डोल जाता इन अफ़वाहों को सुनकर। इन्हीं अफ़वाहों में से मि० अनुज शर्मा के सूत्र हैं जैसे प्रगतिशील की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा था—

पूँजीपति की लड़की से मजदूर प्रेम करे तो वह प्रगतिशील है,

और

अगर ज़मींदार का लड़का किसी मज़दूरिन से प्रेम करे, तो अश्लील है।

या

परकीया से रागात्मक सम्वन्ध प्रेम है,
स्वकीया से अर्थात पत्नी से प्रेम पतन की निशानी है।

अथवा

प्रेम साहस की चाँदनी चाहता है, उसी में विकसित होता है—
प्रेमिका दुस्साहस करे तो यह प्रेमी का सौभाग्य है।
इसी प्रकार मि० अनुज की अन्य घोषणायें हैं जैसे :
ख़बरे पंजाब एक सराय है जहाँ दो मित्र आपसी राज़ बताते हैं—

"नार्मलसी" मिडियाकर का लक्ष्य ९ "अनार्मलसी" जीनियस की पहचान है।

और इसी प्रकार मि० अनुज शर्मा की वाणी उसी प्रकार संग्रहीत की जा सकती है जैसे गोरख वाणी अथवा प्रभू नाई के सूत्र। वह

दिन दूर नहीं जब प्रेम-मार्गी साधकों में मि० अनुज शर्मा भी कच्चे धागे को फाँसी लगा कर शहीद हो जायेंगे। ऐसा इसलिए कि बी० के० और मिस्टर अनुज शर्मा में यही अन्तर है—बी० के० सचमुच फाँसी पर चढ़ गया और मीरा का यह भजन गाता रहा—सूली ऊपर सेज पिया की किस विध मिलनो होय, और इसी के साथ वह यह भी कहते हैं—चीनी और नमक में जो भेद है वह रूप या गुण का भेद नहीं है, आत्मा-आत्मा का भेद है। एक स्थिति ऐसी भी आ सकती है जब चीनी की आत्मा—(मेरा मतलब चीन वासी नहीं है) नमक की आत्मा में घुल-मिलकर एकाकार हो जाय। प्रेम में चीनी नमक और नमक चीनी हो सकता है। किन्तु चीनी दालचीनी, दाल में नमक चीनी नहीं हो सकते। मि० अनुज की दिव्य दृष्टि से मैंने ये सूत्र संग्रहीत किये हैं।

मैरून फ़ियट : नं० १०१११

मि० अनुज शर्मा के एक दोस्त थे बी० के०।

बी० के० के कुछ सिद्धान्त थे। मसलन प्रेम के लिये एक मैरून फ़ियट नं० १०१११ होना ज़रूरी है। कल्पनायें प्रेम की सान से तीव्र हो जाती हैं। उनके साथ उड़ने के लिये एक मैरून रंग की गाड़ी का होना बहुत ज़रूरी है। मैरून कार की आवश्यकता के लिये ही बी० के० की दोस्ती ज़रूरत से ज्यादा बदसूरत औरत से हुई थी। लेकिन, वह कार भी कहाँ-कहाँ भटकी, इसका रहस्य आज भी उद्घाटित नहीं हो सका है। केवल इतना ही मालूम है कि वह कार आजकल मीनाक्षी के पास है और मीनाक्षी के पास वह कैसे पहुँची यह अभी तक किसी को भी मालूम नहीं हो सका!

कार के साथ-साथ बी० के० हज़ार की भी बात करता था। हज़ार बी० के० को नहीं मिला इसलिये वह फलीभूत नहीं हो पाया है। बी०

के० जीवन में कई बार साहस की चाँदनी में भटका और भटकता रहा। लेकिन, जब-जब मंजिल के निकट पहुँचा, तो कुछ ऐसा हो गया है कि जीवन की पकड़ ही छूट गई है। अब दया से द्रवित होते-होते उसकी सारी चेष्टा एक ऐसी करुणा में बदल चुकी है कि अब वह उससे उबर नहीं पाता।

पेट्रोल से चलने वाली गाड़ी आँसुओं से चल नहीं सकी। लेकिन उसमें जंग भी नहीं लगी। गाड़ी आज भी चल रही है, लेकिन न तो बी० के० का पता है और न उस ज़रूरत से ज़्यादा बदसूरत औरत का···

काफ़ी हाऊस में रोज़ शाम को गाड़ी ६ बजे के लगभग आती है, लेकिन अब उसमें मीनाक्षी नहीं होती। केवल एक वृद्ध महिला आती है, काफ़ी पीती है और चली जाती है।

●

एक डेड वायलेन का वक्तव्य

मीनाक्षी के पास एक वायलेन है—टूटा हुआ बेतार का।

उसे वह सदैव अपने कमरे में टाँगे रहती है। कभी-कभी उसे उतारती है और झाड़-पोंछ कर टाँग देती है। जब से मि० अनुज शर्मा से घनिष्टता हुई है, उस टूटे हुए वायलेन के प्रति उसका दर्द कुछ ज़रूरत से ज़्यादा हो गया है। लेकिन वह दर्द उसे एक मज़ाक़-सा लगता है। कभी-कभी वह अपने आप पर हँसती है। तेज़ हँसी और फिर मौन हो जाती है। मि० अनुज शर्मा उस वायलेन का इतिहास जानना चाहते हैं। कई बार उन्होंने मीनाक्षी से पूछा है, लेकिन मीनाक्षी बता नहीं पाती। कुछ है जिसे व्यक्त करने के लिये उसके पास शब्द नहीं है। लोग कहते हैं मीनाक्षी ने उसे बी० के० के मकान में पाया था। कुछ लोगों का कहना है बी० के० ने उसे खरीद कर दिया था। लेकिन जिस दिन उसने वह

वायलेन ख़रीद कर दिया था उसी दिन कुछ ऐसी घटना घटी थी कि बी०. के० को घर छोड़कर अज्ञातवास लेना पड़ गया था। यह अज्ञात-वास कब और कैसे हुआ था, यह भी एक रहस्य है, जो उस समय तक नहीं खुल सका, जब तक कि बी० के० आत्म हत्या करके मर नहीं गया। वह वायलेन आज भी मीनाक्षी के पास सुरक्षित है। वह कब तक सुरक्षित रह पायेगा, कहा नहीं जा सकता।

एक लेटरबाक्स नुमा आदमी का परिचय

ख़ुशहाल पर्वत पर एक लेटर बाक्स है ठीक मीनाक्षी के मकान के ... कहते हैं बी० के० जब खुशहाल पर्वत पर रहता था, तो इसी ... बाक्स में ख़त डालने आया करता था। एक रात किसी ने उस ... बाक्स में मिट्टी का तेल डालकर आग लगा दी थी। बी० के० ... जीवन का एक नितान्त महत्त्वपूर्ण पत्र उसी में जल कर राख हो गया ...। उस दिन से आज तक बी० के० ने बराबर उस पत्र की याद की है, लेकिन उतना अच्छा पत्र वह लिख नहीं पाया है। आज यद्यपि उस लेटर बाक्स में कोई भी ख़त नहीं डालता, फिर भी वह लेटर बाक्स वहाँ उसी तरह बदस्तूर मौजूद है। कई बार लोगों ने उसे वहाँ उस स्थान से हटाना चाहा लेकिन हटा नहीं पाये! मीनाक्षी ने किसी न किसी रूप में उस लेटर बाक्स को सुरक्षित रक्खा है। उसका विश्वास है कि कभी-न-कभी उस लेटर बाक्स में कोई महत्त्वपूर्ण पत्र डाल जायगा। यह कोई कौन है इसे स्वयम् मीनाक्षी भी नहीं जानती! मीनाक्षी की माँ को वह लेटर बाक्स बहुत नापसन्द है। कभी-कभी तो वह उसे देख कर बेहोश, तक हो जाती है। कई बार मीनाक्षी ने स्वयम् इस रहस्य को जानने के

लिए माँ से सवाल किया है, लेकिन माँ ने उसे कोई उत्तर नहीं दिया है। कभी-कभी खीझ कर कहती है—"इसी में मेरा अन्तिम जनाज़ा निकल जायेगा" लेकिन कब? इसका शायद उसके पास भी कोई उत्तर नहीं है।

●

झुकी हुई आल्पीन नुमा आदमी

जिस लेटर बाक्स की चर्चा की गई है, ठीक उसी के पास एक औरत आज रात भी घूमती हुई पायी जाती है। वह पागल नहीं है, लेकिन लोग उसे पागल समझते हैं और कहते भी हैं। अक्सर वह चण्डीदास के भजन गाती है। लोग उसे रामी धोबिन कहते हैं। लेकिन ाह चण्डीदास की रामी धोबिन नहीं है। कुछ लोग समझते हैं कि वह के० की रामी धोबिन है, लेकिन वह बी० के० न तो चण्डीदास थ न वह रामी धोबिन रजकनी थी। पं० इलाचन्द्र जोशी के उ जिप्सी की नायिका की प्रतिरूप यह बी० के० की नायिका थी, ज पागल हो गई है। लोग समझते हैं कि इसको पागल बनाने वाला के० था, लेकिन इसे न तो वह रामी धोबिन ही मानती है और न के० ही मानता है। आज वह रामी धोबिन उस झुकी हुई आल्पीन समान है, जो प्रेम-पत्रों के पृष्ठ के पृष्ठ लिखने के बाद बड़ी आसानी स उसमें लगा दी जाती है। प्रेम-पत्रों के पृष्ठ जब अधिक होते हैं, त आल्पीन झुक जाती है। रामी धोबिन उन्हीं प्रेम-पत्रों के परिणामों की परिणति है लेकिन न तो वे पत्र उसने लिखे थे और न वह स्वयं उनकी माध्यम थी—वह केवल परिणामों के निरावरण में झुक गई है…झुकी रहेगी। इन परिणामों का सम्बन्ध बी० के० से नहीं है, लेकिन बी० के० भी उसके इर्द-गिर्द आता है।

आदमीनुमा आल्पीनों की सिम्फ़नी

आधी रात गये अगर कभी कोई संगीत की स्वर लहरी सुनायी पड़े या सहसा खेती की पत्राकार फ़ाईल से कुछ जंग लगी हुई आल्पीनें निकल पड़ें और सहसा उनका कोरस होने लगे, तो उस ध्वनि में तरंगित बी० के० की आत्मा आज भी कहीं न कहीं अनुभव की जा सकती है। इस सिम्फ़नी में ममता होती है, मिसेज़ सम्सन होती है, रामी धोबिन होती है और इस प्रकार सब का सम्मिलित स्वर कभी-कभी सुनाई पड़ जाता है। यह स्वर ऐसा नहीं कि किसी प्रेतात्मा का स्वर हो··· कहीं-कहीं यह स्वर हम सब में है। मि० अनुज शर्मा उस स्वर को अधिक जागरूकता से सुन लेते हैं, लेकिन ऐसा नहीं कि इस सिम्फ़नी का स्वर केवल विशिष्ट व्यक्ति ही सुन सकते हों।

ममता हो या रामी या सैम्सन या वैजेन्ती, शीला इन सब के स्वरों के आरोह-अवरोह में मानवीय संवेदना की असहायता और निरीहता छिपी है···उनकी आत्मा में हम सब की आत्मा है·· स्थितियों की विवशता है, निरीहता है, उन पर अधिकार न पा सकने की असफलता है···ये आल्पीनें हैं, ये चुभती है, ये हमें वेदना पहुँचाती हैं···वेदना सब की वेदना हैं···चुभने वाली आत्मा को विचलित कर देने वाली छायायें-प्रतिछायायें। इनके साथ हम भी जीते हैं, मरते हैं लेकिन इन संवेदनाओं का शायद कोई अर्थ नहीं बन पाता और अगर बन भी पाता है, तो शायद उसे हम केवल व्यापक रूप में समझते हैं। वह उससे इतना अलग होता है कि वह केवल चुभता है बिना कोई सार्थकता ग्रहण किये।

●

आदमी की थरथराती हुई आत्मा

कुछ अजीव सा लगता है···

आदमी और उसकी तस्वीर के बीच कुछ काँपती हुई लकीरें हैं—

कुछ हिलती-डुलती छायायें हैं, जिन्हें हम देखते नहीं, लेकिन जिनका अस्तित्व हमें हमेशा अनुभव होता है…हर दर्द में हर वेदना में…शायद हर बेचैनी में।

बी० के० को भी हमेशा यही अनुभव होता रहा…ज़िन्दगी की इतनी बोझिल भटकन में शायद उसका आधार कुछ नहीं है…एक कूड़े पर फिकी हुई लाश से लेकर आज के इस विस्तृत अपवाद में वह बार-बार अपने को ढूँढ़ने की कोशिश करता है चाहता है कहीं उसे कोई पकड़ मिल जाय, कहीं वह अपना कोई आधार पा सके, लेकिन इस कोई वाले चेहरों के बीच जैसे उसे कोई भी अपनाने के लिये तैयार नहीं है… वह जानवरों से दोस्ती करना चाहता है, लेकिन जैसे उनके बीच कुछ व्यवहार है, जो ठस है—और कुछ सीमायें हैं जिन्हें तोड़ कर वह भी आगे नहीं बढ़ पाते…उसे लगता है वह दुनिया भी कुछ ऐसी जकड़ी हुई है जहाँ एक सीमा के बाद कोई भी अर्थ सार्थक नहीं हो पाता वह आज की सभ्यता और रोशनी से वापस होना चाहता है लेकिन शायद वह वापसी भी उसके अपने बस की बात नहीं है…उसे लगता है उसके जीवन की उपलब्धि इसी में है कि वह कुछ थरथराती हुई परछाइयों से आक्रान्त भटकता रहे…भटकता रहे…उसे यह भी लगता है जैसे इन असंख्य सफ़ेद चेहरों के बीच पहचाना कोई नहीं है…सब बेपहचाने लोगों की भीड़ है और सब के चेहरे सफ़ेद रंग से पुते हुए हैं।

वह अपने को पहचानना चाहता है—अपनी शकल पर कुछ शिकन लाना चाहता है। कुछ धब्बों को वह अपने आप अपने तन-मन से चिपका लेता है—शायद इसी से वह पहचाना जा सके, लेकिन ये धब्बे भी सफ़ेद होने लगते हैं…लगता है, इन धब्बों के साथ भी वह अपहचाना ही रहेगा…वह कुछ और धब्बों को अपने साथ जोड़ लेता है…वह अन-गिनत धब्बों का समूह बनाना चाहता है, लेकिन धब्बे भी उसका साथ नहीं देते…फिर वह पहचाना कैसे जाय…? आदमी की पहचान कैसे हो ?

वह सोचता है ···शायद अपने ओर रहस्य का जाल बुन कर ही आदमी अपने को पहचनवाता है···उसे भी वह रास्ता दिखलाई पड़ता है—ऐसा रास्ता जो उसका अपना न होते हुए भी अपना जैसा लगता है ।

लेकिन तभी एक आवाज़ आती है···आवाज़ है जेल में बंद एवं पंगु की जो दीवार लाँघ कर एक वार्ड से निकल कर उसके पास आता है···उसके पैर कटे हैं । आँखों में कठोरता है । हाथों की नसें बताती हैं कि उसने एक नहीं, हजारों खून किये हैं···वह उसकी बातें सुनता है···उसे लगता है···जैसे वह शकल ही है जिसे वह इन सफ़ेद चेहरों के बीच एक मुद्दत से ढूँढ़ रहा है ।



काफ़ी हाऊस
की पहली शाम

"तुम प्लेग के चूहों को खाकर कम-से-कम उन्हें हज़म तो कर जाती हो, लेकिन आदमी शायद प्लेग के जर्म्स् फैलाता है—चूहों की तरह उन्हें पचाता नहीं। आदमी न तो ख़ुद मरता है और न मारता है। वह केवल आतंकजन्य स्खलनों में च्युत होता है और उस च्युत संस्कार को ही कूड़े के ढेर पर फेंक कर या यज्ञ की पीठिका पर बलि का उपक्रम करके छोड़ देता है न मरने के लिए और न जीने के लिए!"

"आदमी को मयस्सर नहीं इन्सां होना"

•

सोमवार : २७ अगस्त, १९६२

•

बरसात की शाम थी। काफ़ी हाऊस में उस दिन कोई नहीं आया था। तीन ही बजे से बारिश हो रही थी। काफ़ी हाऊस आने वाले शूरमाओं के लिये यदि वह बारिश अग्नि परीक्षा कही जा सकती है, तो अवश्य वह अग्नि परीक्षा की शाम थी। सर हथेली पर लेकर चलने वालों की टोली सर भिगोते हुए भी यदि आये, तो हथेली ही पर समझने में किसी को आपत्ति नहीं होती। सारी सड़क बरसात की बूँदों से चमक रही थी। हरे घने साये वाले पेड़ों की हरियाली धुल कर और भी गहरी और घनी हो गई थी। पाँच बजे ही ऐसा धुप्र अँधियारा छा गया था कि लगता था जैसे सात-साढ़े सात बज गये हैं। काफ़ी हाऊस के बोर्ड पर पाँच ही बजे बिजली जल गई थी।

सहसा एक मैरून रंग की गाड़ी आकर काफ़ी हाऊस के सामने रुकी। उसमें से तीन अधेड़ एक महिला के साथ निकले और काफ़ी हाऊस में प्रवेश कर गये। भीतर जा कर वह एक खिड़की के पास बैठने ही वाले थे कि बगल में बैठे हुए एक दूसरे अधेड़ लेकिन दिल और पहनावे से नवजवान आदमी ने आवाज देकर बुलाया—

"भल्ला साहेब हैं क्या ?"

अभी वे लोग कुर्सी पर बैठ भी नहीं पाये थे कि उन्होंने मुड़ कर देखा श्री अनुज जी बैठे थे। मिस्टर भल्ला ने उनका अभिवादन करते हुए कहा—

"मान गया, साहब ख़ूब मिले आप ?"

और उन्होंने सब को लेकर मि० अनुज की टेबुल की ओर आने का संकेत किया। मि० अनुज पहले तो बैठे रहे लेकिन साथ में एक महिला देखकर उठ खड़े हुए। महिला को प्रणाम किया और वह उस समय तक खड़े ही रहे जब तक बेयरा पाँचवीं कुर्सी नहीं रख गया और जब तक वह महिला भी कुर्सी पर बैठ नहीं गईं। श्री अनुज जी के इस व्यवहार को प्रायः सभी लोगों ने नोट कर लिया। मि० भल्ला ने कहा—"अमाँ बैठो भी तुम्हारी तो लड़कपन ी आदत अभी तक नहीं छूटी...."

मि० भल्ला की बात सुनकर मिस्टर अनुज थोड़ा मुस्कराये। उन्हें थोड़ी आन्तरिक शान्ति मिली और उन्हें लगा कि अपने जिस रोमानी एवं ;उदार मनोवृत्ति का वह परिचय देना चाहते थे, उसके पारखी मि० भल्ला अब भी उतने ही विशेषज्ञ हैं जितने कि वह अपने विद्यार्थी काल में थे। मि० अनुज थोड़ा अहं भाव से ओत-प्रोत हो गये। बोले—"भाई तुम तो जानते हो मेरी आदत....हम भारत वासियों को कम-से-कम आने वाले एक हज़ार वर्ष तक स्त्रियों के प्रति उदार व्यवहार ही रखना पड़ेगा.... मेरी यह कमज़ोरी है......"

मिस्टर भल्ला के साथ इलाहाबाद हाईकोर्ट के मशहूर फ़ौजदारी के वकील श्री खन्ना थे और दूसरे सज्जन सीनियर सुपरिनटेन्डेण्ट पुलिस रमेश चतुर्वेदी। दोनों ने ही मि० अनुज की ओर देखा और उसकी गदगद वाणी एवम् आर्त्तस्वर पर मुस्करा कर खामोश हो गये। नीली साड़ी पहने मीनाक्षी ने भी एक बार विस्फारित नेत्रों से मि० अनुज की ओर देखा और उनके चेहरे पर अकस्मात उमड़ आने वाली भावुकता देख कर उसने सिर नीचे कर लिया। मि० भल्ला अविचल, दृढ़-

प्रतिज्ञ से बैठे रहे। उनके ऊपर जैसे कोई असर ही नहीं पड़ा। बात आई-गई हो गई। काफ़ी और नाश्ते का आर्डर किया गया। मीनाक्षी बरसात से धुले गिरजेघर के निरावरण सौम्य पाषाण सौन्दर्य को जैसे मग्न होकर देखने लगी। हरे धुले अशोक वृक्षों की फुनगियों के बीच और पानी की चाँदी-सी झिलमिली में डूबी गिरजाघर की मीनारों जैसे सम्पूर्ण वातावरण में अनायास ही रोमानी भाव भर रही थीं। हल्की सी हवा का भिगो देने वाला झोंका जालियों के बीच से समूचे शरीर पर ऐसा पड़ता था जैसे कोई बलात् शरीर के रोम-रोम में छिपे रसको कुरेद कर उभार रहा हो।

मौन का वातावरण तोड़ते हुए मि० अनुज ने कहा—"आखिर तुम आजकल हो कहाँ, मि० भल्ला······"

मि० भल्ला को जैसे तन्द्रा टूटी। लगा जैसे वह स्वयम् इस प्रश्न का उत्तर ढूंढ़ रहे थे—आख़िर वह आज-कल हैं कहाँ? वे जानते थे कि शायद मि० अनुज साहित्यकार होने के नाते जहाँ पत्नी और प्रेमिका में बारीक से बारीक अन्तर निकालने में निपुण है एवम् प्रेम और परकीया को अविभाज्य अंग मानकर जीवन के पचास वर्षों तक केवल इसी पक्ष का प्रतिपादन करते रहे हैं, स्वयम् भी उनकी गति से अवगत होंगे। किन्तु मि० अनुज के प्रश्न से वह सहसा चकित हो गये। कुछ सहम कर बोले—

"तुम्हारी ही तरह एक शहीद की यादगार में इन दिनों जेलरी से मुअत्तल कर दिया गया हूँ। हाईकोर्ट में अपील की है। उसी सिलसिले में ठोकरें खा रहा हूँ······"

मिस्टर अनुज अब भी कुछ नहीं समझे। बोले—

"रहस्यवादी भाषा मत बोलो······सच मानो मैं कुछ नहीं जानता······तुम लोग तो खुद इतने बड़े बेरहम हो कि बिना मेरे भी

ज़िन्दगी बिता लेते हो। लेकिन, मैं हूँ कि शिकायत करने की आदत ही नहीं पाई है······ठीक-ठीक बताओ आखिर बात क्या है ?"

"कुछ नहीं तुम्हारे ही दोस्त का कारनामा है···भुगत रहा हूँ··· देखें क्या होता है···"

मिस्टर अनुज की समझ में कुछ नहीं आया, बोले—

"कौन मेरा मित्र यार···कुछ बताओ भी"

"बी० के० को जानते हो" मिस्टर भल्ला ने एक दम राम बरन की तरह यह नाम छोड़ा। मि० अनुज के बदन में बी० के० का नाम सुनते ही जैसे एक बिजली-सी दौड़ गई। जहाँ बैठे थे वहीं जैसे वह तिलमिला गये। बोले—

"क्या उस समय तुम आगरा जेल ही में थे···"

"जी हाँ, हुज़ूर वहीं था······और मेरे दोस्त ने जो कुछ भी हरकत की उसका खमियाज़ा भुगत रहा हूँ······"

मि० अनुज शर्मा को जैसे थाह ही नहीं मिल रही थी। बोले—
"वह तो बड़ा नेक आदमी था तुम्हें याद होगा कामायनी का लज्जा और श्रद्धा सर्ग उसे याद था···इतने सुन्दर स्वर में वह उसे गाकर सुनाता था····· "

"आँसू' के भी छन्द वह उसी तन्मयता से सुनाता था, लेकिन कौन जानता था कि श्रद्धा और लज्जा का सुन्दर गायक, आँसू का मर्मज्ञ एक दिन वह अनन्त की पुकार सुनकर स्वर्गीय हो जायगा और हम सब नर्क की यातनायें भोगने को शेष रह जायेंगे या शेष भी न रहेंगे···"

मि० अनुज के सामने सारा नक्शा ही जैसे दौड़ गया। बी० के० उनका रूम पार्टनर था। कमरे के दो दरवाज़े थे। उसी छोटे से कमरे को उसने "नीहारिका" नाम दिया था। एक दरवाज़े पर उसने चाक से नीहारिका लिख रखा था और दूसरे पर उसने ऊपर अपना नाम और नीचे अनुज का नाम लिखा था। खत भी "नीहारिका" सर

सुन्दर लाल हास्टेल के पते से आता था। हास्टेल के विद्यार्थी, पोस्ट मास्टर महोदय हुआ करते थे—जानते थे कि इस नाम का केवल एक ही कमरा है और वह है मि० बी० के० और मि० अनुज का। कमरे के भीतर शान्तिनिकेतन और अजन्ता शैली के कई चित्र थे जिसमें कानों तक लम्बे नेत्रों वाली स्त्रियाँ अंकित थीं। हर चित्र के नीचे श्री बी०के० ने लिख छोड़ा था—"ज्योत्सना", "शेफ़ालिका", "रश्मि", "उषा", "किरण" आदि। रोज़ सायंकाल कमरे की समस्त खिड़कियाँ बन्द करके वह कम से कम आध घण्टे तक धूप जलाता और सारा कमरा धूप से भर जाता तो उसमें बैठ कर गाता—कुछ इस प्रकार की पंक्तियाँ होतीं—

चिर धूम्र मय आलोक में प्रिय
सघन कुन्तल कान्तिमय तुम,
स्निग्ध सौरभ ओस कण सी
चिर सरल, चिर शान्तिमय तुम
जलज ज्योतिर्मय विहंगिनि—
ओ सअंगनि सलिल अंजनि
पास मेरे निकट अन्तर्मन गहन से,
आ बसो ओ क्षितिज रंगाने···

और बी० के० का यह सारा चित्र, हाव-भाव, जैसे इसके सामने एकदम सजीव होकर एक क्षण में ही आ गया। आत्म विस्तृति की इस स्थिति से जब श्री अनुज की तन्द्रा टूटी तो उन्हें लगा जैसे उनके सामने मीनाक्षी नहीं कोई ज्योत्सना, रश्मि, शेफ़ालिका, उषा या सन्ध्या बिल्कुल सजीव प्रतिमा सी बैठी हुई। अब तक काफ़ी और नाश्ता भी आ गया था। दिन भर हाईकोर्ट में मुकदमे में जूझने वाले सूरमाओं ने उसके साथ न्याय करना शुरू किया। डोसे को चाकू से काटते हुए श्री अनुज ने कहा—

"नेक आदमी था बी० के० सज्जन और सुहृदय। ऐसे आदमियों के लिये यह कठोर दुनिया नहीं बनी है…मैं कल्पना नहीं कर सकता कि बी० के० भी कोई ऐसा जुर्म कर सकता था कि उसे जेल की सज़ा मिले……"

"कल्पना करने की क्या जरूरत है…यहाँ तो प्रत्यक्ष प्रमाण मौजूद है जनाब !"—पुलिस सुपरिनटिन्डेण्ट मिस्टर चतुर्वेदी ने उत्तर दिया।

"ऐसे लोग एण्टी सोशल होते है। इन्हें समाज में रहने नहीं देना चाहिये…पागल, विक्षिप्त…"—वकील साहब के पेट में जैसे चारा पड़ जाने से न्याय की वाणी मुखर हो गई। अपने सहज आवेश में ही उन्होंने जो स्लाइस पर बने पोच को उठाकर खाना चाहा तो वह उनके काले कोट पर गिरकर टेक्नीकलर बन गया। जल्दी-जल्दी उन्होंने रूमाल से उसकी ज़र्दी पोंछ डाली लेकिन फिर भी साफ़ हो गई। अब तक मीनाक्षी ख़ामोश बैठी थी, जैसे उसे हंसी रोकने में कठिनाई हो रही थी। उसके हंसते ही श्री अनुज जी भी हंस पड़े। मिस्टर भल्ला ने अपना संतुलन नहीं खोया। वह पोच भी सफ़ाई से खा गये और बिना किसी विशेष भाव-मुद्रा के बोले—

"ख़ैरियत तो यह है, मिस्टर अनुज, कि आप अभी ज़िन्दा हैं और अपनी नैसर्गिक अनुभूति में आपने अपने किसी दोस्त को चक्कर में नहीं डाला, वरना जनाब हैं तो आप उसी स्वर्गीय आत्मा के पार्टनर।"

मि० अनुज थोड़ा संकोच में पड़ गये। बात काटते हुए बोले—"क्या वास्तव में वह संसार से ऊब गया था जो इस तरह दूसरे जगह सब को धोखा देकर ख़ुद फाँसी पर चढ़ गया ?"

"अब यह तो आप जब उससे मिलियेगा तो पूछियेगा। मैं तो इतना ही जानता हूँ कि वह हम सब को धोखा देकर ख़ुद फाँसी पर लटक गया। आज अगर भूत-प्रेत के रूप में भी वह मिल जाय तो चमड़ी उधेड़ कर रख दूँ उसकी…" पुलिस कप्तान महोदय बोले।

"लेकिन बात क्या थी आखिर ?"

"एक खूनी की जान बचाने के लिए वह फाँसी पर लटके, लटकने के लिये उन्होंने साज़िश की, साज़िश में फाँसी लगाने वाला आदमी भी आत्म-हत्या कर बैठा और जिसकी जान उन्होंने बचानी चाही, उसने भी जाने क्या खा लिया कि वह भी महीने भर बाद हैज़े की बीमारी से मर गया। यह मीनाक्षी देवी उनकी वारिस है अर्थात् उनकी अन्तिम प्रेयसि। हम लोग अदालत में यह साबित करना चाहते हैं कि वह पागल था, लेकिन सरकारी वकील का कहना है कि मैं महज़ एक बिल्ली के बच्चे के लालच से उससे रंजिश रखता हूँ और इसलिए जान-बूझकर मैंने उसे फाँसी लगा दी है। हमारे पास उसे पागल साबित करने का कोई सबूत नहीं है। सिर्फ़ मीनाक्षी ही हमारी मदद कर रही है।"

यह सारा पचड़ा मि० भल्ला एक ही साँस में कह गये। फिर थोड़ी देर रुक कर बोले—"जैसे आप इनको देख कर एक दम एक सीधी रेखा पर दूसरी सीधी रेखा के समान खड़े हो गये थे, उसी प्रकार वह महाशय भी मीनाक्षी को देखकर खड़े हो जाया करते थे और एक गर्ल्स कालेज की प्रिंसिपल मीनाक्षी उनसे महज़ इसलिए प्रेम का अभिनय करती थीं ताकि उनका दिमाग़ शायद भूले-भटके सही हो जाय और वह आदमी बन सकें…।"

मि० अनुज ने एक बार फिर अपनी ललचाई आँखों से मीनाक्षी की ओर देखा। वह थोड़ी लज्जित होकर संकोच में पड़ गई। पुलिस कप्तान ने अपने हाथ का बेटन संभाला और वकील साहब ने अपनी मिसिल में से टाइप किया हुआ एक काग़ज़ निकाला। बोले—

"मीनाक्षी जी ने श्री. बी० के० की इस घटना पर आधारित एक बड़ा ही रोचक उपन्यास लिखा है। उसे हमने सबूत में अदालत में दाखिल कर दिया है। आज उसके पहली हिस्से पर मैंने बहस शुरू की

है। अगर आप ज़्यादा दिलचस्पी के साथ जानना चाहते हों, तो यह लीजिये इसे पढ़ लीजिये।"

मि० अनुज वकील साहब मि० खन्ना के इस संदेश से जैसे चौंक से गये। उन्होंने नीला टाइप किया हुआ काग़ज़ उनकी ओर बढ़ाया और मिस्टर अनुज ने उस काग़ज़ को लेकर अपने माथे से लगा लिया।

तभी बेयरा बिल लेकर आया।

मि० भल्ला बिल भुगतान करने लगे, लेकिन मि० अनुज ने उन्हें सूचित किया कि उनकी उस मेज़ पर कोई दूसरा बिल का भुगतान नहीं करता। वह जिस मेज़ पर बैठते हैं, उस पर जो भी आये सबके बिल का भुगतान वे स्वयम् करते हैं। पुलिस कप्तान इस सूचना से चौंक पड़ा बोला—

"सोच समझ लेना मि० भल्ला···एक का भुगतान तुम कर रहे हो, अब दूसरे की पारी है····।"

कहते-कहते सब उठ खड़े हुए––

और जब सब उठ कर खड़े हुये तो देखा आर्द्र नेत्रों से श्री अनुज मौन रूप से बैठे ही रह गये। बाहर बारिश थम-सी गई थी। धीरे-धीरे लोग आने लगे थे। मि० अनुज अपनी कुर्सी पर उपन्यास का वह हिस्सा रख पर फाटक तक आये। मोटर पर बैठ कर फिर वापस चले गये और बड़ी तन्मयता के साथ वह कहानी पढ़ने लगे।

●●

पहली कहानी

●

सलीब पर चढ़ने वालों से उसने कहा—"तुम को इतिहास से मोह है इसलिए तुम शहीद हो रहे हो।" भीड़ में एक खलबली-सी मच गई। सहसा एक आवाज़ आई—"मैं आभारी हूँ उन फ़ौलादी कीलों का जो नशतर की तरह चुभी लेकिन गल गई।

वह अपनी इनवैलिड गाड़ी ही पर बैठा रहा। आस-पास सभी फाँसी की सज़ा में मरने वाले कैदी खड़े थे। उसके चेहरे पर अजीब रोवानी थी। सब खामोशी से उसे सुन रहे थे।

सब की आँखें उस व्यक्ति की ओर गड़ गई। मामूली सा आदमी था। एक तीन पहिये की गाड़ी पर बैठा कहता जा रहा था। भीड़ ने पहले उसे उत्सुकता से सुना फिर जैसे सब उस पर टूट पड़े। जेल-ख़ाने के सारे कैदी उसे पीटने लगे। वह कुछ कह नहीं पा रहा था। पहली घटना ही बड़ी भयानक थी। आज तक जेल के इतिहास में ऐसा हुआ ही नहीं था कि जिसको फाँसी दी गई हो वह ज़िन्दा बच जाय।

जेलर जो फाँसी घर से लाश निकलवाने के लिये खड़ा था अचम्भे

में पड़ गया। उसके गले में लटकती तख्ती उसने देखी। न० १३। नं० १३ के कैदी को ही फाँसी होने वाली थी। फिर यह नं० १३ कैदी कौन है। उसने फोटो मिला कर देखा, पहचाना और हुलिया देखी। उसके ख़राब पैरों को देखा। वह गाड़ी में वैसा ही बैठा रहा।

जिला मजिस्ट्रेट ने कहा—"शनाखत मैंने की थी"

मेडिकेल आफ़िसर ने कहा—"मैंने हृदय की गति और फाँसी के समय उसके स्वास्थ्य का विवरण देखा था"

नेता ने कहा—"फाँसी होते वक्त मैंने देखा था नक़ाब लगते वक्त तक यही आदमी था···फिर यह बच कैसे गया···?

और दूसरे रोज़ सुबह अखबारों में खबर छपी। सारे शहर में एक हंगामा मच गया। लोगों की भीड़ जेल के सामने लग गई।

और जब लाश निकाली गई, तो फिर एक तहलका मच गया। लाश थी बी० के० की।

बी० के०—जो अभी पिछले महीने जेल में दाखिल हुआ था। जाने कैसे उसकी दोस्ती उस फाँसी वाले मुजरिम से हो गई थी। जाने क्या उसने उसे सिखाया-पढ़ाया था।

वह बच गया। मरा बी० के०, लेकिन पोस्टमार्टम के बाद जब बी० के० की लाश का वारिस ढूँढ़ा जाने लगा, तो कोई नहीं मिला। कई बार आवाज़ लगाई गई। भीड़ ने सुना लेकिन सबने एक दूसरे का मुँह देखना शुरू कर दिया। किसी ने आगे बढ़ कर यह नहीं कहा कि वह बी० के० को जानता है—या उसकी लाश का वारिस है। केवल एक सफ़ेद बिल्ली बार-बार लाश के पास जाती है। सिपाहियों ने उसे भी मार कर भगा दिया।

पोस्टमोर्टम की हुई लाश म्यून्सिपेल बोर्ड की लाश गाड़ी में भर दी गई, दो जाबिर काले भूत जैसे आदमी उसमें बैठे और गाड़ी शमशान घाट की ओर चल पड़ी। भीड़ छँट गई।

भीड़ भीड़ ही होती है ।

उसमें से कुछ हँस रहे थे । कुछ रो रहे थे । कुछ गालियाँ दे रहे थे । थोड़ी देर बाद सारा जेल का हाता खाली हो गया । वहाँ कोई भी नहीं बचा ।

जेल का सन्तरी टहलने लगा !

फाटक बन्द हो गया ।

शाम का अँधेरा और गाढ़ा हो गया ।

तभी एक मैरून रंग की गाड़ी जेल के फाटक पर रुकी और उसमें साँवले रंग की महिला नीली साड़ी पहने निकली । संतरी जो अब तक बैठा था उठ खड़ा हुआ । महिला ने पूछा—"जेलर साहब कहाँ मिलेंगे ?"

"अभी नहीं मिल सकते ।"

"लेकिन मुझे ज़रूरी काम है—" महिला ने कहा !

"साहब का हुक्म है कि···"

"साहब को यह काग़ज दे दो" महिला ने बात काटते हुए कहा ।

संतरी वह काग़ज लेकर भीतर चला गया । महिला बाहर टहलने लगी । एक बार उसने सामने लगे पेन्जी के फूलों को चुटकी में लेकर, उसके नीले रंग और अपने श्याम रंग को जैसे मिलाना चाहा । फिर एक सूखी हँसी हँस कर वह खामोश हो गई । पहरे पर खड़े दूसरे संतरी ने सात का घण्टा बजया । उसकी ध्वनि जैसे शून्य में तैरकर एक दम डूब गई ।

थोड़ी देर बाद संतरी जेल के भीतर से निकला । महिला से बोला "आप भीतर चलें"—और वह उसके साथ भीतर चली गई ।

बाहर फिर सन्नाटा ही सन्नाटा रह गया ।

संतरी नं० पहले ने कहा—"बी० के० की वारिस हैं यह देवी जी"

संतरी नं० दो ने कहा—"वारिस की बीबी···"

संतरी नं० पहले ने कहा—"बीबी तो नहीं लगती···मजिस्ट्रेट

साहब का ख़त लेकर आई है कि असली वारिस यही है। लाश इसी को मिलनी चाहिये…"

"भगवान जाने…जैसा वह आदमी था उसी तरह की यह वारिस भी है…" दूसरे ने जवाब दिया।

"अब तो लाश भी प्रवाहित की जा चुकी होगी।"

"कौन जाने ?"

दोनों संतरी फिर टहलने लगे।

अँधेरा कुछ और गाढ़ा होकर उतर आया।

जेल के बाहर की सारी बत्तियाँ जल चुकी थीं। पहरेदारों के भारी बूटों की आवाज़ रह-रह कर गूंज जाती थी। जेलख़ाने के भीतर से कोई कैदी निर्गुन भजन गा रहा था…

रमैया की दुलहिन ने लूटा बाजार
लूटा बजार, लूटा संसार…ऽऽऽ

पहरे पर के वृद्ध संतरी ने खड़े होकर उस आवाज़ को सुना। फिर हँस पड़ा।

"हँसे क्यों ?" दूसरे ने कहा।

"झुम्मन खाँ है…निर्गुन गा रहा है"

"तो क्या हुआ…?"

"कुछ नहीं…आज पचास बेंत की सजा मिली थी…हर बेंत पर वह हँस रहा था…और इस वक्त निर्गुन भजन गा रहा है जैसे कुछ हुआ ही नहीं…"

"कौन जाने बेंत की चोट उससे जबर्दस्ती गाना गवा रही हो…"

"तुम बेवक़ूफ़ हो…" संगीन के कुन्दे को ज़मीन पर पटकते हुए वृद्ध ने कहा। फिर संगीन को दोनों हाथों से उठाकर कन्धे पर रक्खा और टहलने लगा। निर्गुन भजन वैसा ही चलता रहा।

सहसा जेल की खिड़की खुली। पहले वह महिला निकली। पीछे

जेलर महोदय ! दोनों संतरी एटेन्शन के पोज़ में खड़े हो गये। महिला तेज़ी से मोटर की ओर बढ़ने लगी। जेलर महोदय ने कहा—

"घाट तक देख लीजिए···वैसे कोई उमीद नहीं है"

"लेकिन यह आप लोगों ने बड़ी ज्यादती की है···"

"ज्यादती मुझसे नहीं हुई है···यह बहुत बड़ा हादसा है। इसकी तहक़ीक़ात होगी···की जायगी···"

अभी यह बात हो ही रही थी कि सहसा एक जेल का सिपाही दौड़ा हुआ आया। जेलर को उसने सलाम किया और घबराकर बोला—

"उसके घर में और कोई नहीं है···सिर्फ़ उसकी लाश बरामद हुई है···"

"लाश···"

"जी हाँ···लगता है यह सब उसी ने किया है" महिला जैसे कुछ समझ गई।

"क्या उस जल्लाद ने खुदकुशी कर ली ?"

"जी"

महिला मोटर से बाहर निकल आई।

"लेकिन क्यों ?"

"शायद डर के मारे ही किया होगा उसने ऐसा"

"नहीं" सिपाही बोला—"उसकी जेब में एक खत था। पुलिस ने वह खत ले लिया है।

"और कुछ भी मिला है"

"जी···"

"वह क्या है···" जेलर ने पूछा !

"बी० के० के हाथ के लिखे सात खत हैं"

"वह किसके नाम है···"

"सात आदमियों के नाम हैं…"

महिला फिर ख़ामोश हो गई। उसने अपनी गाड़ी स्टार्ट की और चली गई। जेलर काफ़ी देर तक इस महिला की मोटर गाड़ी के पीछे की लाल रोशनी देखता रहा। धीरे-धीरे वह रोशनी दूर जा कर दायीं तरफ़ मुड़ी। जेलर को विश्वास हो गया कि वह शमशान घाट ही गई है। वह चुपचाप मुड़ा और फिर जेल के भीतर पहुँच गया।

दूसरे दिन सुबह जब उस महिला ने पुलिस थाने में फोन करके पता लगाना चाहा कि वह सात ख़त किस-किस के नाम हैं, तो उसे पता चला कि उनमें से एक ख़त उसके नाम भी है।

पुलिस ने उन ख़तों को 'एक्ज़िबिट' के रूप में दाख़िल दफ्तर कर दिया है। लेकिन उसकी भी दिलचस्पी हद से ज्यादा बढ़ गई है क्योंकि वे सातों ख़त सात ऐसे आदमियों के नाम हैं जिनका एक दूसरे से सिलसिला मिलाना कठिन नहीं तो असंभव अवश्य है।

बी० के० कैसे जेल आया था इसका भी एक अजीब क़िस्सा है जिसे आज तक कोई हल नहीं कर पाया। ख़ूनी वह लगता नहीं था। लेकिन जेल में वह एक ख़ूनी के रूप में ही आया था। महीने भर तक जेल में था लेकिन जैसे जेल का चप्पा-चप्पा उसका अपना हो गया था। सबसे ज्यादा दोस्ती उसकी झुम्मन मियाँ से थी। लोग उसे पागल समझते थे लेकिन वह पागल भी बी० के० के पास ऐसा रहता था जैसे भीगी बिल्ली। अक्सर कैदी बी० के० से कहते थे—"यह तुम्हारी बात क्यों मानता है?"

"क्योंकि मैं उसकी बात मानता हूँ"

झुम्मन ने दस दिन से भूख हड़ताल कर रखी थी, जब बी० के० को एक ख़ूनी की हैसियत से जेल में लाया गया था। शाम को ही वह आया था और सुबह ही उसने झुम्मन खाँ की भूख हड़ताल तोड़वाई

थी। महीने भर तक झुम्मन खाँ बी० के० की हर टहल करता रहा था। कभी-कभी वह पूछता—"साहब आपने क्यों खून किया..."

"क्यों जैसे तुमने किया..."

"मैं तो बदज़ात बीबी से परेशान था...वह इश्क़ करती थी मैं पठान ठहरा साब...औरत की हम इबादत करता है, लेकिन बदचलन औरत का ख़ून पी जाता है...

"बदचलनी किसे कहते हैं झुम्मन खाँ ?"

"जब औरत अपनी इसमत बेचने लगती है"

"यह इसमत क्या औरतों ही को मिली है"

"आदमी ज़ात को भी मिली है, साब..."

"ख़ुदा बड़ा बेरहम है झुम्मन मियाँ..."

"क्यों हुज़ूर..."

"जानवरों को उसने इसमत नहीं दी...आदमी को इसमत दे दी... जानवर बदचलन नहीं होते...आदमी बदचलन होता है...जानवर..."

झुम्मन मियाँ को बी० के० की यह बात जैसे खल रही थी। बी० के० को झुम्मन मियाँ निहायत ही शरीफ़ आदमी समझता था, लेकिन आदमी और जानवर की यह तुलना उसे जैसे खटक रही थी। ज्यों-ज्यों बी० के० आदमी और जानवर की बात करता था झुम्मन मियाँ दाँत पीस-पीस कर रह जाता था। फिर बी० के० ने कहा—

"आदमी चोर होता है, बेईमान होता है, बदचलन होता है, काफ़िर होता है, कायर और बुज़दिल होता है...लेकिन जानवरों में इस किस्म की कोई बीमारी नहीं होती...आदमी से तो जानवर ही बेहतर है..."

अब तो जैसे झुम्मन मियाँ का गुस्सा उसके बस में नहीं रह गया। एक दम चिल्ला कर उसने बी० के० का गला पकड़ लिया। ज़ोर से दबा देना चाहा। बी० के० को खाँसी आ गई। उसने दोनों हाथ से झुम्मन मियाँ के दोनों हाथ पकड़ कर पीछे ढकेल दिया। झुम्मन मियाँ

ज़मीन पर जा गिरा। अपने गले को सहलाते हुए एक लम्बी साँस लेकर बी० के० ने कहा—

"और आदमी-आदमी का क़ातिल होता है…जानवर एक दूसरे के क़ातिल नहीं होते। उनका शिकार करते हैं…"

इस खींचतान के शोर ओ गुल में सभी कैदी होश में आ गये। बी० के० वर्मा के कमरे के पास सभी आकर खड़े हो गये। सभी बी० के० पर व्यंग की हँसी हँस रहे थे। सभी को लग रहा था जैसे बी० के० से बढ़कर बेवकूफ़ कोई दूसरा नहीं है। झुम्मन मियाँ जैसे पागल आदमी का सुधार करने चले थे। कोई कह रहा था—"आदमी नहीं जानवर है, जानवर।"

और बी० के० सोच रहा था—

काश झुम्मन मियाँ जानवर ही होता।

●

कुछ दिनों बाद आधी रात को सारे जेल में एक हंगामा मच गया। बी० के० ने इस बीच जेल में बराबर आने जाने वाली एक बिल्ली को पाल लिया था। वह बिल्ली बी० के० के कमरे में ही रहती थी। बी० के० अपने खाने में से उसे भी खिलाता था। उसे साबुन से नहलाता था और एक हफ्ते के भीतर ही वह सफ़ेद बिल्ली एक दम नये रोयें वाली निहायत ही नाजुक और देखने में नितान्त भली लगने लगी थी। कभी-कभी उसके साथ एक बिल्ला भी आता था लेकिन वह कुछ ही देर रहता था और फिर चला जाता था।

उस रात बी० के० पर वही बिल्ली झपट रही थी जिसको उसने इतने लाड़-प्यार से पाला था। वही उसे काटने दौड़ रही थी। उसने इतना शोर मचाया कि जेल के वार्डर बी० के० के वार्ड में आये और उन्होंने उस बिल्ली को कमरे से निकालना चाहा। बी० के० ने उन्हें

रोक दिया। वह खुद कमरा छोड़ कर बाहर बरामदे में आ गया। वार्डरों ने जब ज़बर्दस्ती करनी चाही तो उसने डाँट कर उन्हें भगा दिया। चलते-चलाते एक वार्डर ने एक लाठी भी बी० के० को मारी। उसके माथे पर एक ज़ख्म हो गया। खून बहने लगा। बी० के० ने हाथ लगा कर खून बन्द कर दिया और रात भर बरामदे में बैठा रहा।

जाने क्या बात थी बिल्ली उसके कमरे में रात भर कूदती रही। बी० के० की आत्मा में जो सद्य स्नातः करुणा थी वह बार-बार उसे पीड़ित कर रही थी। क्या हो गया है इस बिल्ली को? कहीं प्लेग वाला चूहा तो नहीं खा लिया है उसने ?

प्लेग···प्लेग···प्लेग—जैसे यह शब्द केवल इन्सानों को ही परीशान करता है। बिल्ली को नहीं। या तो इस रोग से केवल चूहे मरते हैं या आदमी।

लेकिन बिल्ली न तो चूहा है और न आदमी।

अगर उसने प्लेग वाले चूहे खा भी लिए होंगे तो क्या? उसे तो कोई भी छूत नहीं लगनी चाहिए। छूत तो महज़ आदमी को लगती है··· आदमी को आदमी की छूत···आदमी को चूहों की छूत···

लेकिन बिल्ली वैसी ही रो रही है!

कई बार बी० के० ने कमरे में जाने की चेष्टा की। लेकिन दरवाज़े पर आहट पाकर बिल्ली ने फिर चीखना-झपटना शुरू कर दिया। अन्त में परीशान होकर बी० के० ने लाईट आफ़ कर दी और अँधेरे में बाहर के बरामदे में जा कर नंगी ज़मीन पर लेट गया। जेल से मिला हुआ कपड़ा खून से भीग गया। रक्त के सूख जाने से कपड़ा कड़ा हो गया था और वह उसके जिस्म में बार-बार गड़ रहा था। लेकिन बी० के० को अपने माथे के ज़ख्म की कोई चिन्ता नहीं थी और न उसे अपने ज़ख्म का दर्द ही अनुभव हो रहा था। उसके कान में केवल बिल्ली के रोने और

कराहने की आवाज़ आ रही थी। उसे ही सुनते-सुनते उसे जाने कब नींद आ गई। वह वहीं सो गया।

सुबह जब नींद खुली तो देखा बिल्ली उसके सरहाने बैठी जैसे उसे जगा रही है। बी० के० की नींद खुलते ही बिल्ली अपनी दुम सीधी करके उसके सामने खड़ी हो गई। अपने रक्त सने हाथ से बी० के० ने बिल्ली को सहलाया। बिल्ली दौड़ी हुई कमरे में गई। फिर बाहर आई और फिर बी० के० सामने आकर खड़ी हो गई। बी० के० ने एक बार झुक कर कमरे में देखा। एक दम से खिलखिला कर हँस पड़ा। सात बच्चे एक पंक्ति में लेटे कुनमुना रहे थे। बार-बार आँखें खोलने की चेष्टा करते थे लेकिन जैसे दुनिया की गन्दी रोशनी बर्दाश्त करने में असमर्थ थे। बिल्ली उनकी आँखों को चाट रही थी। बी० के० और प्रसन्नता से जैसे चौंक पड़ा। सामने नल से पानी गिर रहा था। उसने पहले तो अपना ज़ख्मी सर धोया। उसे लगा जैसे रात भर का सारा भार हल्का हो गया है।

दिन निकलते-निकलते बी० के० के वार्ड के सामने भीड़ लग गई थी। झुम्मन मियाँ बी० के० के सिर पर ज़ख्म देख कर रो पड़ा। बोला—"ये बड़े ज़ालिम हैं साब···सबको मारते है···"

"अरे छोड़ो झुम्मन मियाँ···कुछ गाना-बजाना करो···देखते नहीं··· साहब के घर एक साथ सात सन्तानें हुई हैं···भगवान जिसे देता है छप्पर फाड़ कर देता है···" कोई दूसरा व्यंग्य के स्वर में बोला।

"और तभी तो सर भी फूटता है यार" कोई दूसरा दूर से बोला।

अब तक झुम्मन मियाँ ने दौड़ कर उसका गला पकड़ लिया। चारों तरफ़ शोर मच गया। जिस कैदी का गला म्मन मियाँ ने झुपकड़ा था उसकी आँखें निकल आई थीं। बी० के० ने उसे दौड़ कर छुड़ाया। सुबह के आठ बज चुके थे। डिप्टी जेलर के आने का समय हो गया था। जितने कैदी वहाँ खड़े थे सब भाग गये। बी० के० नल ही पर

खड़ा रहा। काफ़ी देर तक सुन्न-सा सबके व्यंग्यों का जैसे अर्थ ढूँढ़ता रहा। फिर एक सूखी हँसी हँस कर बरामदे में चला गया।

थोड़ी देर बाद डिप्टी जेलर आया। बिल्ली ने सात बच्चे जने हैं, सुनकर वह कमरे में गया। बच्चों को देखा। वार्डर से बोला इन बच्चों को खुली रोशनी में लाओ। वार्डर सातो की टाँगें पकड़ कर उठा लाया बिल्ली दो-तीन बार गुर्राई लेकिन वार्डर के एक डंडे की चोट पाते ही खामोश हो गई। उसको देख कर जेलर ने कहा—

"यह कबरी नर है या मादा ?"

"नर है, हुजूर" वार्डर ने कहा!

"और वह काली ?"

"मादा है हुजूर!"

"और वह सफ़ेद ?"

"वह भी मादा है"

"दोनों को मेरे घर पहुँचा दो"

बी० के० की दया फिर जाग गई। बोला

"अभी कुछ दिन यही रहने दीजिये···बच्चे छोटे हैं···मर जायेंगे··· "

डिप्टी जेलर ने कुछ इस तरह आँखें तरेर कर देखा कि जैसे बी० के० कोई आदमी नहीं पत्थर है। बी० के० ने अपना वाक्य फिर दुहराया। इस बार जेलर ने ऐसे देखा जैसे वह निगल जायगा। उसी समय वार्डर ने बाकी पाँच बच्चों को वहीं छोड़ दिया और दो की टाँगें पकड़ कर ले चलने लगा। बी० के० ने उसके हाथ से वे दो बच्चे भी छीन लिये। डिप्टी जेलर के हाथ का डण्डा एकदम से छूट पड़ा। हुकुम दिया मुश्कें बाँध कर पचास बेंत लगाओ।

दूसरे ही क्षण बी० के० की मुश्कें बाँध दी गईं और एक-एक करके पचास बेंत लगे। झुम्मन मियाँ दूर ही से यह देख रहा था। जब नहीं

देखा गया तो आँखें बन्द करके चला गया लेकिन बाक़ी कैदी हर ओर से देखते रहे। हर बेंत पर जब बी० के० का जिस्म थोड़ा अकड़ जाता तो उसकी आकृति और ऐंठन देख कर वे हँस पड़ते। पचास बेंत पूरे हो जाने के बाद डिप्टी जेलर ने हुक्म दिया कि चूँकि सरकारी काम अंजाम देने में बी० के० ने रुकावट पैदा की है इसलिये उसे एक हफ्ते की कैद तनहाई दे दी जाय। हुक्म मिलते ही दो पहलवान किस्म के वार्डरों ने बी० के० को पकड़ा और घसीट कर तनहाई में डाल दिया। एक तो सिर का ज़ख्म दूसरे बेंत को चोट…बी० के० का जिस्म कल्ला रहा था।

शाम को तनहाई में जब उसे खाना देने वार्डर आया तो व्यंग्य में बोला—

"क्यों बाबू, कैसी तबियत है ?"

बी० के० ने सिर उठा कर उसे देखा ! ख़ूनी चेहरा था। चेहरे पर सैकड़ों घावों के दाग़ थे। जेल में पहुँचते ही लोगों ने बताया था कि यह जण्डैल सिंह डाकू है जिसने ६० क़तल किये हैं। अट्ठारह साल से ज्यादा हो गये इसे जेल में। बी० के० को लगा जैसे उसमें कहीं कोई भी आदमीयत रह ही नहीं गई है। उसे यह भी लगा कि वह अब जानवर भी नहीं रह गया है। वह कुछ नहीं बोला लेकिन जण्डैल सिंह बोला—

"आप तो पढ़े-लिखे हो, बाबू सुना है बी० ए० पास हो…फिर भी इतनी अकल नहीं आई। यह जेल है…जेल…"

बी० के० ने इस बार उसकी ओर देखा भी नहीं।

वह चला गया।

शाम को बी० के० को पता चला कि बिल्ली के सात बच्चों में से दो को तो डिप्टी जेलर अपनी लड़की को दे आये। दो को जेलर साहब की पत्नी ने अपने दामाद के यहाँ भेज दिया। एक पुलिस कप्तान के यहाँ तोहफ़े में गयी। एक नर बचा है जो उसी कमरे में पड़ा है। वह थोड़ी

देर तक कुछ इसी प्रकार की चिन्ता में डूबा रहा, फिर जाने कब नींद आ गई और वह सो गया।

●

रात बारह से ज़्यादा बजे होंगे कि उसे लगा बिल्ली उसके कमरे में फिर आई। इस तनहाई की कोठरी में वह कितनी दीवारें पार करके आई होगी इसकी कल्पना भी करना बी० के० के लिए कठिन हो गया था लेकिन उसे अपने बिस्तर पर सिरहाने देख कर वह उठ बैठा। बिल्ली को सहलाने लगा और वह यूँ ही कूँ-कूँ करके उसके बिस्तर पर सो गई। बी० के० भी फिर सो गया लेकिन थोड़ी ही देर बाद उसे लगा जैसे कोई आदमी पेट के बल सरकता उसके कमरे में आ रहा है।

"कौन है ?" बी० के० ने जरा जोर से कहा।

उस आदमी ने सहसा उसका मुँह ही बन्द कर लिया।

कुछ चौंक कर वह उठा और बोला—"मैं हूँ कैदी नं० १३"

"क्या चाहते हो…?"

"दोस्ती…"

"हाँ दोस्ती…सिर्फ़ दोस्ती"

"बन्द करो यह बकवास…कौन किसका दोस्त है ?"

"मैं तुम्हारा दोस्त हूँ…"

"क्या चाहते हो…"

वह कुछ नहीं बोला !

"तुम चुप क्यों हो गये"—

"इसलिये कि तुम हमदर्द हो…मेरी मदद करोगे ?"

"कैसी मदद ?"

"छोड़ो फिर बताऊँगा…अभी इतना ही समझो…मैं सात दिन का मेहमान हूँ…आँठवें दिन इस दुनिया से चला जाऊँगा…"

"क्यों ?"

"फाँसी जो हो जायगी"

बी० के० के भीतर फिर एक दया की लहर दौड़ गई। वह कुछ नम आँखों से उसकी ओर देखने लगा! कमरे में लालटेन की बत्ती जलाई। रोशनी में देखा...वह एक गोरा चिट्टा आदमी था। आयु अभी २७-२८ वर्ष की ही होगी। उसका एक पैर कटा था और उसके चेहरे पर दो गहरे काले दाग़ थे। दया से द्रवित होकर बी० के० ने कहा—

"तुम्हारा जुर्म क्या था...?"

"क़तल..."

"किसका क़तल किया तुमने ?"

"अपनी बीबी..."

बी० के० सन्न रह गया। कुछ समझ में नहीं आया। झुम्मन ने भी अपनी बीवी का क़तल किया था और इस आदमी ने भी। बी० के० समझ नहीं पा रहा था कि आखिर इस कम उम्र में उसने क़तल किया कैसे। बी० के० ने कुछ और पूछना चाहा लेकिन उसने कुछ बताने से साफ़ इन्कार कर दिया। बी० के० ने फिर पूछा—"तुम मुझसे कैसी मदद चाहते हो..."

"एक वचन चाहता हूँ"

"कैसा वचन ?"

"तुम मेरे बच्चों के पिता बन जाओ...चार लावारिस बच्चे हैं। पता नहीं कैसे ज़िन्दगी बिता रहे होंगे...तुम उनकी देख-भाल करना। बोलो करोगे..."

बी० के० की समझ में नहीं आया कि वह क्या उत्तर दे। उसे लगा कि इससे भी बढ़कर व्यंग्य और क्या होगा। बिल्ली के सात बच्चों को जब वह नहीं बचा पाया तो आदमी के चार बच्चों को कैसे बचायेगा...

और फिर सन्तान की कल्पना ही जिसने न की हो वह कैसे उस दर्द को समझेगा जो एक पिता या माता को सहसा अबस कर देती है।

"मैं अपनी ज़िन्दगी में एक बार पिता बनने जा रहा था लेकिन सौभाग्य से उसी समय एक भयंकर एक्सीडेण्ट हो गया और तब से आज तक मैं उस ख़तरे से बचा हूँ—"

वह कैदी कुछ नहीं बोला। चला गया। लेकिन सात दिनों तक लगातार वह रात में चहारदीवारी लाँघ कर आता और तमाम रात उससे बातें करता। बी० के० के पास वह बिल्ली भी आती और रात भर उसके बिस्तर पर पड़ी रहती। सुबह होते-होते दोनों ही उसके कमरे से ग़ायब हो जाते। इन सात दिनों में बी० के० जैसे कुछ और ज़्यादा गंभीर हो गया था। बीबी की हत्या झुम्मन खाँ ने की थी और बीबी की हत्या इस अपाहिज ने भी की थी। जाने क्यों सदा ही प्रस्फुटित होने वाली दया झुम्मन खाँ पर प्रवाहित नहीं हुई, लेकिन इस लँगड़े पति पर अकस्मात ही फूट पड़ी। आख़िरी दिन जब वह तनहाई में था तो उसने पूछा—

"तुम अपना नाम मुझे क्यों नही बताते ?"

वह कुछ नहीं बोला। उठा और चला गया।

बी० के० के दिमाग़ में बार-बार प्रश्न उठ रहा था यह आदमी और हत्या ? बी० के० को जाने क्यों विश्वास हो गया था कि उसने हत्या नहीं की होगी। उसने जब वार्डर से उसका नाम पूछा तो वार्डर ने सारा हवाला बताते हुए कहा कि उसके सब बच्चे यतीमखाने में हैं। इसे अपने बच्चों से इतना मोह है कि दिन-दिन बीत जाते हैं यह रोता ही रहता है! इसकी पत्नी एक अंग्रेजी फ़र्म में टाइपिस्ट थी। चार बच्चों की माँ थी! यह खुद रेलवे में गार्ड था। पैर कट जाने से नौकरी से अलग हो गया था। जब तक रेलवे का दिया हुआ मुआविज़ा था तब तक तो पत्नी साथ रही बाद में भाग गई। बहुत दिनों तक इसे पता

नहीं चला । सहसा जब एक दिन पता चला तो उसने जाकर उसकी हत्या कर दी और तभी से जेल में है । बी० के० चुप-चाप सुनकर बैठा रहा । फिर उठा और टहलने लगा। फिर उसने वार्डर से पूछा और उसका नाम—

वार्डर ने कहा—"शंकर"

और बी० के० की आँखों के सामने उसकी शकल नाच गई । कानो में गूँज गई ।

"एक वचन चाहता हूँ"

"कैसा वचन ?"

"कि तुम मेरे लावारिस बच्चों के पिता बन जाओगे"

और दूसरे दिन सुबह-सुबह जब वह तनहाई की सज़ा काट चुकने के बाद अपने वार्ड में वापस आ रहा था तो रास्ते में वार्ड का मेहतर बिल्ली के दो मरे हुए बच्चों को टोकरी में भर कर फेंकने चला जा रहा था । कोई कह रहा था । रात बिल्ला आया था और उसने इन बच्चों को तोड़ दिया था । बी० के० सुनकर एकदम से चौंक गया । उसके कानों में जैसे फिर प्रश्न गूँजा—

"मैं अपनी ज़िन्दगी में एक बार पिता बनने जा रहा था लेकिन सौभाग्य से उसी समय एक एक्सीडेण्ट हो गया और तब से आज तक मैं उस ख़तरे से बचा हूँ ।"

●

पूसी बिल्ली के नाम

●

मार्फ़त
जेल सुपरिनटेण्डेण्ट
आगरा सेण्ट्रल जेल, आगरा ।

डियर पूसी,

आज यह छठी बार मैंने फिर वही अपराध किया है जो आज से दस वर्ष पहले पहली बार किया था । तुम्हें शायद नहीं मालूम मैंने इससे

पहले भी प्यार किया था और सिर्फ़ करुणा से वशीभूत होकर मैंने उस औरत को बचाना चाहा था जिसके सौन्दर्य की स्मृति आज भी मेरे शरीर में रोमांच पैदा कर देती है। लेकिन उस सहज प्रेम का जो कटु अनुभव मुझे हुआ उससे मैंने यह निश्चय कर लिया था कि अब किसी के दुख-दर्द में मैं नहीं शामिल हूँगा। लेकिन, डियर क्या करूँ ? भगवान ने कुछ तबियत ही ऐसी बना दी है कि लाख न चाहने पर भी जी नहीं मानता। यह ग़लती मैं पिछले दस साल से करता आ रहा हूँ और आज इस जेल में जहाँ न कोई करुणा व्यापती है और न कोई सहानुभूति, जहाँ हर कैदी अपने हाल में मस्त तसले बजा-बजा कर नाचा करते है वहाँ और कोई नहीं मिला तो आफ़त की मारी तू ही मिल गई। और आज मेरी यह हालत है कि इस तनहाई की कैद में भी मुझ से मेरा हाल पूछने वाला कोई नहीं है। यह अँधेरी कोठरी है, मैं हूँ और यह घोर अँधेरा है जो मुझे रह-रहकर बार-बार घेर लेता है।

डियर, तुमसे मैंने प्रेम नहीं किया है केवल न्यायोचित व्यवहार की माँग मैंने जेलर से की थी। तुम्हारे वातसल्य के लिये ही मैंने यह चाहा था कि तुम्हारे नव-जात शिशुओं को मैं तुम्हारे ही पास रहने दूँ—कम-से-कम उस समय तक जब तक उन शिशुओं को तुम्हारे प्रेम की आवश्यकता है। माँ का दर्द क्या हो सकता है, इसे बे माँ का होने के कारण मैं खूब जानता हूँ। लावारिस सड़क पर फेंका हुआ मैं जाने कैसे ज़िन्दा बचा ? तुम्हें विश्वास नहीं होगा, पूसी, कुत्तों ने मुझे चाट-चाट कर बड़ा किया है, कौन जाने बिल्लियों ने भी मुझे दूध पिलाया हो। सड़क के फुटपाथों पर मैंने जीवन बिताया है और फिर जाने कैसे मैं आज वह हो गया हूँ जो मुझे होना नहीं चाहिये था। लोग मुझे स्मगलर समझते हैं, कुछ मुझे किसी डाकुओं की गिरोह का आदमी समझते है और कुछ पागल और सनकी। मैं आभारी हूँ उस क़साई की कुतिया का जो मुझे अपने दाँतों से दबा कर उसके घर ले गयी थी। जाने कौन

थी वह क़साइन जिसने अपना दूध पिला कर इतनी करुणा मुझे दे दी है कि क़दम-क़दम पर मेरा दम घुट जाता है। लेकिन उससे भी वत्सला वह विधवा युवती थी जिसे क़साइन ने मरने के पहले मुझे दे दिया था और जिसने अपनी ज़िन्दगी की अन्तिम पूँजी खर्च करके मुझे पढ़ा-लिखा कर इतना बड़ा किया। लेकिन, पूसी डियर, फिर वही हुआ। पचास साल की उमर में वह विधवा एक नवजवान छोकड़े के साथ भाग गयी। आज तक उसका पता नहीं कि वह कहाँ है। जाते समय उसने मुझे मेरे हास्टल में लिख भेजा "अब तुम बी० ए० तक पढ़ चुके हो। अपना भार खुद संभालो!" और, जब मैं इम्तहान के बाद घर लौटा, तो मुझे पता चला कि वह मकान बेच कर यूनिवर्सिटी के किसी नये विद्यार्थी के साथ सदा के लिये बम्बई चली गयी है। मेरे पैर के नीचे से जैसे ज़मीन खिसक गयी। मैं समझ नहीं पाया कि, जिसे मैं माँ समझता था वह सहसा एक दम नये रूप में मुझे अनुभव करने को मिलेगी। किसी ने कहा वह तो सदा से ही इसी आचरण की थी, लेकिन मुझे विश्वास नहीं हुआ। वही लोग जो अभी कल तक मेरी ही माँ तुल्या को नितान्त श्रद्धा से मुग्ध होकर देवी कहा करते थे और अपने अनेक छोटे-मोटे कामों के लिये गदगद कण्ठों से प्रशंसा करते नहीं अघाते थे, वही आज भयंकर से भयंकर शब्द कहने में नहीं हिचक रहे थे।

डियर पूसी! जब तक मुझे माँ नहीं मिली थी मैं माँ का दर्द नहीं जानता था, किन्तु अब एक बार माँ को पा लेने के बाद सदा के लिये अज्ञात में खो देना मेरे लिये बड़ा पीड़ाजनक सिद्ध हुआ। लेकिन सिवा उस विष को पी लेने के मेरे पास और कोई रास्ता शेष ही नहीं बचा। निराश्रित, निराधार और सदैव स्नेह से वंचित मैं उसी स्नेह के अभाव में तुम्हारे शिशुओं के प्रति उस दिन चीत्कार कर उठा था। तुम कहोगी कि तुमने ग़लती की। पशु के बच्चों के लिए इतनी यातना भोगना पीठ पर पचास चाबुक खाना प्रायः जेल के सभी लोगों को बुरा

लगता था, किन्तु मैं अपने उस आर्द मन को रोक नहीं सका था। और, जब मैंने उसके लिये आग्रह किया तो मुझे जो दण्ड मिला…

लेकिन इसको कोई क्या कहे ? डिप्टी जेलर ने अपनी आवारा लड़की और रिशवत खोर जेलर की मोटी बीबी को प्रसन्न करने के लिए, बिना मेरा दर्द समझे मुझे पचास बेंत लगवाये और सरकारी कार अंजाम देने में बाधा पहुँचाने के जुर्म में मुझे यहाँ तनहाई में झोंक दिया। सच मुझे इससे भी कोई शिकायत नहीं है। लेकिन, मुझे दुख इस बात का है कि आदमी आदमी को तो समझ ही नहीं पाता। साथ ही वह समझने की कोशिश भी नहीं करता। अभी उस दिन की बात है मैं स्टेशन पर किसी का स्वागत करने गया था। टोकरी में एक के ऊपर मुर्गियों को झाबे में बन्द देखकर मुझे सहसा एक विचित्र प्रकार की पीड़ा हुई थी। सच मानो इस प्रकार का व्यवहार मनुष्य ही कर सकता है। जानवर हत्या तो करते हैं, किन्तु वे इस प्रकार से मौत को दीर्घजीवी नहीं बनाते। मेरी आँखों से जो आँसू उस समय निकले थे वही दुबारा उस अवसर पर झलक गये थे जब तुम्हारे बच्चों को डिप्टी जेलर तोहफ़े के रूप में तुमसे अलग कर रहे थे।

पूसी, मैं जानता हूँ कि तुमको मेरी भाषा नहीं आती, लेकिन इस न आने के लिए तुम्हें दुखी नहीं होना चाहिये। आदमी ने भाषा बनाकर भी कई मजबूरियाँ पैदा की हैं। आज आदमी की भाषा निरर्थक हो गयी है। अनुभूति विपन्नता की इस स्थिति में, डियर, मैं तुम लोगों की अन्य भाषा को अधिक महत्त्वपूर्ण समझता हूँ। कम-से-कम तुम अनुभूतियों को तो जी लेती हो। यहाँ तो हर अनुभूति भाषा के जंगल में पड़ कर मर जाती है। मेरी माँ को ही लोग कहते हैं कि वह भाग गई है। सच मानो इस भाग गई शब्द में और सब कुछ है केवल अनुभूति ही नहीं है। ठीक उसी प्रकार प्रेम शब्द है उत्सर्ग, जीवन, आँसू, वेदना, न जाने कितने शब्द हैं जिनका कोई अर्थ नहीं है, लेकिन

लोग इन्हें घास-फूस की तरह इस्तेमाल करते हैं—जीते या अनुभव नहीं करते ।

और सुनो डियर, तुम यह मत समझना कि केवल तुम्हारे ही यहाँ बिल्ला अपने बच्चों को तोड़ देता है । अभी कल ही वार्डर कह रहा था कि तुम्हारा बिल्ला मेरे कमरे में गया था और तुम्हारे बच्चों को तोड़ने ही वाला था कि वह पहुँच गया । मुझे अचरज नहीं हुआ क्योंकि तुम्हारे यहाँ बिल्ला तोड़ कर सदा के लिये मुक्त तो कर देता है, यहाँ तो जिन्दा कूड़े में फेंक देता है । स्वयं मैं उसी प्रकार का एक प्राणी हूँ जिसे किसी माता ने जना और पिता ने कूड़े के ढेर में लिटा दिया और जब मेरी दूसरी माँ जिसने मुझे पाला, मुझे कूड़े में फेंक कर बम्बई चली गई तब मुझे कोई दुख नहीं हुआ, क्योंकि मैं जानता हूँ आदमी में फ़ैसले लेने की क़मजोरी होती है—वह नहीं ले पाता । कम-से-कम तुम्हारी जाति में इन फ़ैसलों की स्पष्टता तो है ।

एक बात और डियर !

तुम प्लेग के चूहों को खा कर कम-से-कम उन्हें हज़म तो कर जाती हो । लेकिन आदमी शायद प्लेग के जर्म्स फैलाता है—चूहों की तरह उन्हें पचाता नहीं, सड़ाता है । चूहों में केवल एक प्रकार का प्लेग होता है, किन्तु यहाँ आदमी के लिये अनेक प्रकार के प्लेग है—धर्म का प्लेग, न्याय का प्लेग, करुणा का प्लेग, सहानभूति का प्लेग जो केवल आदमी को मारते हैं, उसकी हत्या करते हैं लेकिन घुला-घुला कर ठीक उसी तरह जैसे आदमी झावों में आड़ी-बेड़ी-तिरछी मुर्गियों को बन्द करके मारता नहीं तोड़-फोड़ कर मृतप्राय: बना कर छोड़ देता है । आदमी न तो खुद मरता है, न मारता है वह केवल आतंक जन्य स्खलनों में च्युत होता है और उस च्युत संस्कार को ही कूड़े के ढेर पर फेंक कर यज्ञ की पीठिका पर बलि कर उपक्रम करके मरने के लिये छोड़ देता है…

पूसी ! जब मैं कूड़े पर छोड़ दिया गया था तो मुझे होश नहीं था। मैं तुम्हें उस अनुभूति की वेदना तो नहीं बता सकता जो उन दिनों मैंने भोगी होगी, लेकिन मैं इतना अवश्य कह सकता हूँ कि यदि तुम लोगों की जाति में भी आदमी का रोग फैल गया होता तो शायद आज मैं तुम्हारे पास यह पत्र भी लिखने के लिये जीवित नहीं होता।

तुम लोगों को मैं समझ सकता हूँ, क्योंकि तुम लोग स्वार्थी हो। तुम लोगों को मैं परख सकता हूँ, क्योंकि तुम्हारा आचरण एक-सा है।

शायद मैं आदमी होकर आदमी को नहीं पहचान पाता, क्योंकि आदमी स्वार्थी होते हुए स्वार्थी न होने का बड़ा अच्छा अभिनय करता है।

शायद मैं आदमी को कभी भी न पहचान सकूँगा, क्योंकि आदमी के आचरण की भी कोई मर्यादा नहीं है...वह केवल शब्दों का व्यापार करता है अर्थों को समझता ही नहीं।

मैं आदमी हूँ, पूसी इसीलिये आदमी होकर जी नहीं सकता।

तुम्हारा
बी० के०

●

अब तक श्री अनुज शर्मा उस अंश को पढ़कर समाप्त कर चुके थे।

पूसी का पत्र पढ़ने के बाद उन्हें लगा जैसे बी० के० की वास्तविक पीड़ा कुछ और है। वह नितान्त पागलपने की दशा में नहीं जी रहा है वरन् उसके पागलपन के पीछे कोई ऐसी वेदना है जिसके लिये अभी तक कोई शब्द नहीं बन पाया है।

सहसा उसे लगा जैसे अँधेरा और घना हो गया है। बादल कुछ और नीचे झुक आये हैं। बिजली की रोशनी के चारों ओर प्रकाश का वृत्त सिमिटता जा रहा है।

तभी प्रो० राज और डा० सैम्यूअल ने भीगी हुई हालत में कॉफ़ी हाऊस में प्रवेश किया। वे आये और मि० अनुज शर्मा की मेज़ पर बैठ

भी गये, लेकिन वह मि० शर्मा जो दरवाजे पर ही इनको देखकर अभिवादन और स्वागत के लिये खड़े हो जाते थे एक दम खोये-खोये से बैठे हुए थे।

"लगता है आज बारिश आप ही पर गुज़री है" मि० सैम्यूअल ने कहा।

"इन्हीं पर क्यों सब पर गुज़री है" प्रो० राज ने कहा!

"लेकिन उसको भोग मि० अनुज ही रहे हैं"

मि० अनुज को लग रहा था कि जैसे भीगने, गुजरने और भागने शब्दों के अर्थ का बिना जाने ही यह लोग प्रयोग कर रहे हैं। बोले—

"हम भोग ही तो नहीं पाते···हम केवल मजबूर होना जानते हैं।

प्रो० राज को लगा जैसे मि० अनुज आज कुछ दार्शनिक मुद्रा में बोल रहे हैं। सहसा चौंक कर बोले—"मजबूर होना ही भोगना नहीं है क्या ?"

मि० अनुज को लगा जैसे प्रो० राज उसकी बात समझ रहे हैं। बोले —

"आप ने कभी मजबूरन प्रेम किया है"

"प्रेम करने की स्थिति के बाद मजबूरी की स्थिति आ सकती है लेकिन मजबूरन प्रेम करना पड़े यह स्थिति मेरी समझ के बाहर है···

मि० अनुज थोड़ी देर चुप रहे। फिर बोले—

"आदमी को जब कहीं मनोवांछित स्नेह नहीं मिलता, तो वह जानवर से प्रेम करने के लिये विवश होता है"

मि० सैम्यूअल ने कहा—

"और वह जानवर आदमी भी हो सकता है"

"यही तो बात है, मि० सैम्यूअल आज आदमी ऐसी स्थिति पर पहुँच गया है कि वह जानवर भी नहीं हो सकता। अभी-अभी मैं अपने एक मित्र की करुण कथा पढ़ रहा था। उसका मर्म भी यही था। वह

जानवर से भी नहीं प्रेम कर पाता था···वह अपने को आदमी होने के नाते जानवर से भी गया गुज़रा समझता था···"

"ह्वाट ट्रैश···" कह कर सैम्यूअल ने ऐसा मुँह बनाया जैसे वह जानवर से भी गयी गुज़री बात कर रहा है। मि० अनुज फिर भी नहीं माने बोले :

"एक आदमी है। जिसे पैदा करके कूड़े के ढेर पर फेंक दिया गया है···उसे कुत्तों ने, बिल्लियों ने पाला···उसे केवल दूसरे की दया पर जीने का व्यंग्य भोगना पड़ा···फिर उसकी मनोवृत्ति कैसी होगी ?" मि० अनुज की बात सुनकर प्रो० राज बोले—

"कुछ भी हो जानवर से गई गुजरी नहीं होगी···शकुन्तला को भी वन की चिड़ियों ने दाना ला-ला कर पाला था···लेकिन उसकी ही करुणा ने भरत जैसे व्यक्ति को जन्म दिया···"

मि० अनुज को लगा जैसे इस स्थिति का उत्तर देना उनके लिये संभव नहीं होगा। सैम्यूअल भी एक दम सन्दिग्ध मुद्रा में प्रश्नवाचक चिह्न-सा अपना मुँह बनाकर रह गया। मि० अनुज ने जैसे बात को वहीं समाप्त करते हुये कहा—

"शकुन्तला एक फ़ैन्टैसी है लेकिन मेरा मित्र एक रीयल्टी है रीयल्टी···"

"यही तो सबसे बड़ा व्यंग्य है—" मि० सैम्यूअल ने कहा—"आज आदमी आदमी नहीं रह गया है, शायद रीयल्टी ही रह गया है···क्यों मि० अनुज···"

मि० अनुज को आज जाने क्यों यह रियल्टी शब्द भी उतना ही रोमैण्टिक लग रहा था जितना प्रेम, विरह गीत या सौन्दर्य। उन्हें लगा जैसे जिस रीयल्टी की वह जन्म से निन्दा करते आ रहे थे वह आज उनकी समझ में आ गई है। बोले—

"गुलाब का फूल दो रूपों में हमें दीखता है···एक फूल के रूप में

और दूसरा उस जड़ के रूप में जो ज़मीन में सड़कर अन्धकार से जूझ कर जीवन के लिये संघर्ष करती है…" मुझे वह संघर्ष अधिक प्रिय लगने लगा है…"

"और फूल ?" प्रो० राज ने कहा।

"हाँ और फ़ूल ?" मि० सैम्यूअल ने दोहराया।

"फ़ूल एक नक़ाब है जो केवल फ़ैन्टैसी को ही जन्म देकर मौन हो जाता है…उससे गति नहीं स्थिरता है"

कहते-कहते मि० अनुज उठ खड़े हुए।

काफ़ी हाऊस बन्द हो रहा था।

क्षण भर को पानी भी निकल गया था।

प्रो० राज और डा० सैम्यूअल अभी काफ़ी पी ही रहे थे कि मि० अनुज वह बी० के० के मोकदमे वाली फ़ाइल लेकर काफ़ी हाउस के बाहर चले गये।



काफ़ी हाऊस
की दूसरी शाम

•

पनपता नहीं यह शहर,
यह चौराहा, यह ट्रैफिक पुलिस,
यह काठ के चेहरे से लोगों के रूप
यह कंकड़ पत्थर, यह वातावरण, वह अक्षर—
बढ़ता नहीं वह विद्वान, वह पंडित, वह अफ़सर
बढ़ती है वह सड़क, वह गली, वह अनार—
सच को टेस्ट ट्यूब में कैद करते देखा है,
झूठ फिर भी उग आता है।

"सूली ऊपर सेज पिया की किस बिधि मिलनो होय"

•

मंगलवार : २८ अगस्त, १९६२ ।

•

दूसरे दिन जब मि० अनुज शाम को काफ़ी हाऊस गये तो मि० भल्ला, मि० खन्ना और मिस्टर चतुर्वेदी वहाँ पहले ही से बैठे थे ! मिस्टर खन्ना आज कुछ उदास थे । लगता था अपनी बहस का वह भाग जिसे उन्होंने पहले दिन स्थापना के रूप में प्रस्तुत किया था वह कहीं से पपड़िया कर टूट रहा था । मि० भल्ला दोनों अल्प व्यक्तियों से अपेक्षाकृत प्रसन्न दीख रहे थे । मि० चतुर्वेदी एक क़ानून की किताब लिये पन्ना उलट रहे थे । आज मीनाक्षी नहीं थी इन लोगों के साथ । किसी चर्च का पादरी था, जिसने क़ैदी नं० १३ को अन्तिम दिन फाँसी के समय कुछ धार्मिक उपदेश दिया था ।

मि० अनुज बिना किसी संकोच के काफी हाऊस में प्रवेश करते ही मि० भल्ला की टेबुल पर जा बैठे । पिछले दिन की फ़ाईल उन्होंने मि० खन्ना की ओर बढ़ा दी और उन्होंने उसे पोर्टफोलियों में रख लिया । मि० अनुज ने चारों ओर फिर मुड़ कर देखा । मीनाक्षी की जगह पर काले लबादे में गिरजाघर के एक पादरी को देख वह थोड़े चकित तो अवश्य हुये लेकिन फिर जैसे रहस्य को समझ कर उसने कुछ भी नहीं

पूछा। सब को गम्भीर देख कर बोला—"क्या बात है आप सब चुप है ?"

"जी हाँ" मि० भल्ला ने पूछा।

"क्यों" मि० अनुज शर्मा ने फिर प्रश्न किया।

"बात दरअसल यह है कि आज की सारी बहस प्रेम क्या है इसी पर होती रही। जज यह मानने के लिये तैयार ही नहीं होता था कि बी० के० ने यह आत्म हत्या अपने मन से की है। वह आत्म हत्या करने का कारण प्रेम नहीं निराशा मानता था और पूसी का पत्र पढ़ कर वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा था कि बी० के० प्रेमी जीव था वह सबल प्रेम के सामने मौत को स्वीकार करने वाला प्राणी नहीं था।"

मि० अनुज को लगा जैसे यह उनको मन माँगी मुराद मिल गई है। वह तो प्रेम के विषय में बहस करना ही चाहते थे। उनका यह कहना आज सत्य निकला कि संसार में केवल दो ही वस्तुयें महत्वपूर्ण हैं :- प्रथम तो है प्रेम; और दूसरी है नारी। नारी और प्रेम यही दो जीवन को चलाते हैं। कभी-कभी लोगों ने उनसे पूछा भी कि यदि नारी और प्रेम को जीवन के दो पहिये मान लिये जाय तो फिर वह धुरी कौन-सी है जो इनको जोड़ती है। लेकिन, मि० अनुज धुरी के रूप में भी पुरुष को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं थे। उनका कहना था धुरी वह अव्यक्त, अदृश्य और अमूर्त कल्पना है जो नारी और प्रेम को चलाती है। लोगों ने उनसे पूछना चाहा था कि तब पुरुष कहाँ है ? प्रेम के रथ में वह घोड़ा है, खच्चर है, लगाम है, चाबुक है, कोचवान है, क्या है ? लेकिन वह इसका कोई उत्तर ही नहीं दे पाते। नारी और प्रेम के समक्ष वे पुरुष को तुच्छ से तुच्छ स्थान देने के लिये भी तैयार नहीं थे।

आज जब उनके सामने फिर प्रेम और आत्म हत्या का प्रश्न आया तो बोले—"जज ठीक कहता है असली प्रेमी प्रेमिका को लेकर भाग जाता है। वह आत्म हत्या नहीं करता।"

पादरी ने मुड़कर मुँह खोले-खोले मि० अनुज की ओर देखा। मि० भल्ला ने कहा—

"यदि कोई व्यक्ति अपनी पत्नी से प्रेम करता हो तो"

"पत्नी प्रेमिका नहीं हो सकती"—मि० अनुज ने कहा।

"तो प्रेमिका वह है जिसे लेकर प्रेमी भाग जाय" मि० चतुर्वेदी जो अब तक नितान्त धैर्य के साथ खामोशी से मि० अनुज की बात सुन रहे थे, बोल उठे और उनकी इस व्याख्या को सुन कर मेज़ पर जितने भी आदमी बैठे थे सभी हँस पड़े।

मि० अनुज को लगा जैसे उनकी किसी बुनियादी धारणा पर इन लोगों ने चोट की है। बोले—"आप आदमी को कबूतर, फ़ाख़ता या निहायत लोलेबेल का जीव समझते हैं शायद···"

"आप चाहते हैं आदमी साँड़ समझा जाय ?" मिस्टर चतुर्वेदी ने फिर एक सख्त व्यंग्य करते हुए मि० अनुज की प्रेमवादी धारणा पर चोट की। लेकिन अब भी मि० अनुज ज़रा भी हतप्रभ नहीं हुए। बोले—

"प्रेम हमेशा परकीया से किया जाता है और परकीया से प्रेम करने वाला कभी भी आत्म हत्या नहीं कर सकता···"

यह परकीया शब्द पादरी जान्सन की समझ में नहीं आया। अपनी ज़बान के ऐंठे हुए उच्चारण में उन्होंने कहा—"ह्वाट डू यू मीन बाई परकीया, मि० अनुज···"

मि० खन्ना बोले—"परकीया इज़ एनी अदर वुमन हू इज़ लव्ड बाई ए मैन बट इज़ नाट हिज़ वाइफ़। शी इज़ द वाइफ़ आफ़ सम वन यल्स···"

"अर्थात् दूसरे की बीबी ही किसी की प्रेमिका हो सकती है, क्यों मि० अनुज···"

"बट दिस इज़ अडेल्टेरी एण्ड आवर मोविया लार्ड हैथ सेड···"

"इसकी ज़रूरत नहीं, मि० जान्सन मैं मि० अनुज को दफ़ा ताज़ी-राते हिन्द बता देता हूँ···वही काफ़ी होगा···"

मि० अनुज को लगा कि उनका विश्वविख्यात प्रेम-दर्शन का मूल सिद्धान्त ही टूटा जा रहा है। बोले—

"प्रेम में रोमांच और थ्रिल का होना जरूरी है। पत्नी के साथ रोमांच और थ्रिल नहीं होता और वह प्रेम जिसमें थ्रिल नहीं है वह प्रेम-प्रेम नहीं है…"

पादरी जान्सन ने प्रेम की बहुत-सी परिभाषायें पढ़ी थीं। लौकिक एवम् भौतिक से लेकर आध्यात्मिक तक की व्याख्या उनके सामने थी लेकिन प्रेम के साथ जिस थ्रिल की बात मि० अनुज कर रहे थे वह उनकी समझ में नहीं आ रहा था। पुलिस कप्तान मि० चतुर्वेदी ने कहा—"आपका मतलब यह है कि थ्रिल हमेशा कानून तोड़ने से ही होती है ?"

"पत्नी से प्रेम करने में इसलिए कोई थ्रिल नहीं है, क्योंकि उसमें कानून नहीं टूटता …"

मि० अनुज प्रेम की इस व्याख्या से भी तिलमिला उठे। उनके जी में आया कि वह मि० चतुर्वेदी से साफ़-साफ़ बता दें कि देखिये साहब आप और पादरी साहब प्रेम जैसे गहन विषय को नहीं समझ सकते, क्योंकि पादरी साहब धर्म के मानदण्ड से और चतुर्वेदी साहब ताज़ीराते हिन्द की दृष्टि से प्रेम को आँकना चाहते हैं। लेकिन, उन्होंने संकोचवश इतना कटु उत्तर देना उचित नहीं समझा। बोले— "मैं तो और कुछ नहीं जानता केवल कबीरदास की यह पंक्ति ही कह सकता हूँ"—और अपने सुरीले स्वर में धीरे-धीरे गा कर उन्होंने सुनाया—

"कबिरा खड़ा बजार में लिये लुकाटी हाथ,
जो देवै सर आपना चलै हमारे साथ"

यह पंक्ति सुनाने के बाद मि० अनुज थोड़ी देर तक चुप रहे, फिर बोले—

"कबीरदास ने जिस प्रेम का वर्णन यहाँ किया है उसमें थ्रिल है… इसीलिए कबीरदास लुकाटी लिए चलते हैं और सर देने की बात करते हैं…"

थोड़ी देर तक सभी लोग कबीरदास की इस बानी को सुन कर चुप हो गये। मि० अनुज को लगा जैसे उनकी प्रेम की यह परिभाषा इतनी सटीक बैठी है कि सब के सब धराशायी हो गये हैं। मि० खन्ना सहसा चौंक पड़े। बोले—

"तब तो आप जज साहब से सहमत नहीं है।"

"सो कैसे ?" मि० अनुज ने पूछा!

"ऐसे कि यदि आप कबीरदास को मानते हैं, तो आपको यह भी मानना पड़ेगा कि कबीरदास प्रेम में आत्म हत्या की पूरी तैयारी को प्रश्रय देते हैं···नहीं तो हाथ में लुकाटी और सर देने की बात वह क्यों करते······"

"आप समझे नहीं" मिस्टर चतुर्वेदी बीच ही में बोल पड़े, "इनका मतलब है लुकाटी प्रेमिका के पति का घर जलाने के लिए है और सर देना का अर्थ है सर फिर जाना······"

अब तो मि० अनुज से जैसे नहीं रहा गया। बहुत ही कुढ़ कर वह बोले—"आप लोगों की समझ में प्रेम कभी भी नहीं आ सकता। आप केवल बात बनाते हैं······प्रेम जैसे तत्त्वपूर्ण शब्द के अर्थ को आप समझना ही नहीं चाहते······"

और, अब तक काफ़ी आ चुकी थी। सब लोग उसे पीने में लगे थे लेकिन फ़ादर जान्सन को लग रहा था कि मि० अनुज की आत्मा में कहीं न कहीं शैतान निवास करता है और वह शैतान कहीं इतना अधिक प्रबल है कि वह मि० अनुज की आत्मा को बिल्कुल कलुषित और पापमय बनाये जा रहा है। उन्होंने अपनी जेब से काले रंग की एक बाईबिल निकाली और मि० अनुज की ओर प्रति बढ़ाते हुए बोले—"भगवान के लिये इस हाली एंजील को आप जरूर पढ़ लें।"

रेगिस्तान में बीज बोने के समान पादरी जान्सन ने जो यह चमत्कार दिखाया उससे मि० भल्ला, खन्ना और चतुर्वेदी सभी चकित थे। देने को तो ताज़ीराते हिन्द की एक प्रति मि० चतुर्वेदी और एविडेन्स

एक्ट की एक प्रति मि० खन्ना भी दे सकते थे लेकिन शायद उनका देना उतना आसान नहीं था। लगे हाथ सहसा बाईबिल की एक प्रति भेंट स्वरूप पाकर मि० अनुज के विस्मय का कोई ठिकाना ही नहीं रहा! शायद कॉफ़ी पीने और काफ़ी हाउस के वातावरण का मूड अब बन चुका था। घड़ी की तरफ़ देखा, तो लगा एक घण्टे का समय यों ही बीत चुका है। थके हुए मि० खन्ना ने कहा, "अब चलना चाहिए"—लेकिन मिस्टर भल्ला जैसे कुछ देर और बैठना चाहते थे। बोले— "मीनाक्षी अभी नहीं आई।"

और तभी एक बड़े सुन्दर युवक के साथ मीनाक्षी ने प्रवेश किया। युवक लम्बा, दोहरे बदन का, काली, घनी, छँटी हुई मूछें, बड़ी-बड़ी आँखें, एक सादा-सा बुशर्ट पैण्ट और देशी चप्पल, सिर के बाल छोटे और हाथ की घड़ी शायद शुद्ध सोने की। मीनाक्षी मेज़ पर आकर बैठ गई। आस-पास के सभी व्यक्तियों का परिचय देने के बाद बोली— "आप हैं मि० जोशी...यहाँ के स्थानीय कालेज में प्रो० राज जोशी......"

मि० अनुज ने उलट कर देखा। प्रो० राज ही था। मीनाक्षी के साथ राज को देखकर मि० अनुज को थोड़ा आश्चर्य हुआ। प्रो० राज कभी प्रेम भी कर सकता था या वह कभी किसी स्त्री का प्रेम पा भी सकता था यह प्रो० अनुज जी की कल्पना के बाहर की बात थी। काफ़ी आयी और उन लोगों ने भी पी ली। मि० अनुज शायद फ़ादर जान्सन की किताब पा जाने के कारण या विषयान्तर के कारण कुछ बोल नहीं पा रहे थे। मौन ही थे। मीनाक्षी ने कहा—

"बी० के० के विषय में एक बात और पता चली है।"

"वह क्या?" मि० खन्ना ने कहा।

"वह यह कि वे कवि भी थे। कल रात मैं एक महिला से मिली। उन्होंने मुझे कम से कम १०० गीत और एक डायरी दिखायी।"

"१०० गीत और डायरी" मि० भल्ला जैसे चीख पड़े।

"जी हाँ, सौ गीत और उन्हीं की लिखावट में……आज शाम को उसने वे गीत देने को कहा है…

"तो अभी चला जाय…उस डायरी के पृष्ठों से बी० के० की सुसाइडल प्रवृत्तियों का पता निश्चय ही चलेगा…"

सब के सब उठ पड़े। केवल मि० अनुज बैठे रहे। सहसा उन्हें जैसे कुछ याद आया। घबरा कर मि० खन्ना से बोले— "और आगे की किस्त ?"

"ओ हाँ वह तो मैं भूल ही गया था" अपने पोर्टफोलियो में से एक काग़ज का बण्डल निकालते हुए मि० खन्ना ने कहा।

राज भी रुका नहीं। मि० अनुज बैठे रह गये।

घड़ी में छः बज चुके थे। अब लोगों की आम आमद शुरू हो गई।

●

दूसरी कहानी

●

जेल में आये अभी चार दिन भी नहीं हुए थे कि बी० के० से मिलने एक महिला आई। चूँकि बी० के० के बारे में अभी तहक़ीकात चल रही थी इसलिये जेलर को भी यह रिकार्ड रखना पड़ता था कि बी० के० से कौन-कौन मिलने आता है। जेलर ने इस महिला की हुलिया लिखते हुए लिखा था…

"मिसेज सैम्सन (डाली)…देखने में निहायत ही गोरी…नशे में डूबी-सी आँखें, बिल्कुल ऐंग्लो इण्डियन जैसा हाव-भाव…हिन्दी का एक शब्द भी ठीक नहीं बोल पाती…रहने वाली कलकत्ते की…अपने तीसरे पति सैम्सन को तलाक दे दिया है, लेकिन नाम मिसेज़ सैम्सन ही है… एयर-कार्पोरेशन में होस्टेस का काम करती है। आज बी० के० नज़रबन्द कैदी नं० ११३ से मिलने आई…एक घण्टे तक बात करने के बाद गई…"

मिसेज़ सैम्सन अर्थात डाली के आने के बाद जैसे ही सूचना बी० के० को भेजी गई उसने भीतर से ही लिख दिया, "नहीं मिलना चाहते"। मिसेज़ सैम्सन को जब जेलर ने बी० के० के इस निश्चय से सूचित किया, तो वह बिल्कुल उदास हो गई। उसने जेलर से फिर प्रार्थना की। जाने क्यों मि० भल्ला द्रवित हो गये। उन्होंने बी० के० को बुला दिया। जब बी० के० आफ़िस में आया और उसने मिसेज़ सैम्सन को वहाँ बैठे देखा, तो जैसे उबल पड़ा। आवेश में ही बोला—"आप अभी गई नहीं···"

"बी० के० मैं तुम्हारी मदद करने आई हूँ तुम एक वकील कर लो, अपना मुकदमा लड़ो···मेरा विश्वास है···तुम बच जाओगे···"

"लेकिन बच कर क्या करूँगा···मुझे लगता है मेरे लिये ज़िन्दा न रहना ही सबसे बेहतर है···"

मिसेज़ सैम्सन को लगा जैसे बी० के० के इस निश्चय के सामने उसका कोई वश नहीं चलेगा। बड़े दर्द भरे लहजे में वह बोली—

"लेकिन मेरा क्या होगा···"

"जो भी हो तुम मेरा साथ न दे सकोगी···मैंने सैम्सन के साथ क्या किया था···लेकिन जानती हो वह इस मुक़दमें में पुलिस का गवाह है···

"वह तो मेरी वजह से है···" मिसेज़ सैम्सन ने कहा।

"तो बात वही तो हुई···मुझे कोई नहीं समझता कोई नहीं और न कोई अब समझेगा ही—"

मिसेज़ सैम्सन जानती थी कि बी० के० क्यों यह बात कह रहा है। बी० के० मिसेज़ सैम्सन का पक्ष लेकर सैम्सन से लड़ा था। रोज-रोज की शराब और फ़ाक़ाकशी ने मिसेज़ सैम्सन को तो गला ही दिया था लेकिन अब जिन विषैले माध्यमों का प्रयोग सैम्सन कर रहा था उनसे मिसेज़ सैम्सन की हत्या निश्चित थी। सैम्सन अंग्रेजों के ज़माने से ही इनके ड्राइवर का काम करता था, पहले तो खुद ही बिल्कुल अंग्रेज़ साहबों की तरह रहता था और हमेशा एक ईमानदार और नेक नीयत आदमी की तरह ज़िन्दगी बिताना चाहता था। यद्यपि उसकी शक्ल पर

चार गहरे और काले दाग़ थे और वह देखने में आवश्यकता से भी अधिक बदसूरत लगता था लेकिन फिर भी उसके पास एक इन्सान का दिल था। उसमें एक विचित्र प्रकार की करुणा थी…एक सहानुभूतात्मक दृष्टि थी जिसके कारण मिसेज़ सैम्सन उसकी ओर आकृष्ट हुई थी। वह था भी कुछ ऐसा ही। मिसेज़ सैम्सन का दूसरा पति जो बाक्सिंग में कलकत्ते में मशहूर था शायद मिसेज़ सैम्सन की उन कल्पनाओं को संतुष्ट नहीं कर पाता था जो उसकी काव्यात्मक प्रकृति को संतुष्ट कर सकतीं। मिसेज़ सैम्सन उदार थी। उसके लिए सैम्सन आदमी नहीं देवता था। आज भी वह सैम्सन को उसी प्रकार देवता मानती है। जहाँ सैम्सन को शेली, कीट्स, बायरन की पंक्तियाँ याद थीं, वहाँ उसके दूसरे पति को केवल मशहूर बाक्सिंग करने वाले बहादुरों की जन्मतिथि कंठस्थ थीं।

लेकिन कौन जानता था कि सैम्सन जैसा कवि हृदय अकस्मात एक दिन इतना बड़ा कठोर हृदय वाला हो जायगा कि एक अत्यन्त कुरूप मोटी भद्दी औरत को अपनी प्रेमिका बना कर उसी के साथ रहने लगेगा और इस बेचारी को केवल फ़ाक़ाकशी के लिये छोड़ देगा। बी० के० उन दिनों उसी मोहल्ले में रहता था। उस बिल्डिंग के रहने वाले सभी लोग जानते थे कि दूसरे तीसरे दिन शराब के नशे में चूर जब सैम्सन घर आता था तो प्रायः मिसेज़ सैम्सन को पीटता और प्रताड़ित करता था। एक दिन जब उस घर का शोर-शराबा ज्यादा बढ़ा और मोहल्ले के दूसरे लोगों ने पूरा घर घेर लिया, तो मजबूर होकर बी० के० भी चला गया था। बी० के० ने कुछ और नहीं किया था, उसने केवल एक धक्का देकर नशे की हालत में बदहवास सैम्सन को मिसेज़ सैम्सन के जिस्म से अलग कर दिया था। पहली बार जब वह मिसेज़ सैम्सन का हाथ पकड़ कर घर से बाहर लाया, तो उसे लगा कि इतने उपवासों और अनन्य प्रताड़नाओं के बावजूद भी मिसेज़ सैम्सन के नये हाथों ने कहीं उसे छू लिया है। उसने हाथ छोड़ दिया। बी० के० को बेतहाशा गाली देते हुए सैम्सन घर से निकला और जैसा कि लोगों का अनुमान

था, वह रिक्शे पर बैठ कर सीधे उस मोटी बदसूरत औरत के घर चला गया। धीरे-धीरे भीड़ छँट गई और मिसेज़ सैम्सन भी अपने घर में चली गई।

कई दिन बाद जब मिसेज़ सैम्सन अपने से बेज़ार होकर बी० के० के घर आई तो बी० के० ने उसे अपने आफ़िस में क्लर्क की नौकरी दिलवा दी। यह नौकरी ही जैसे बी० के० की जान की जोखिम हो गयी। उसने नौकरी तो दिला दी, लेकिन वह खुद मिसेज़ सैम्सन से दूर रहने लगा। वह यह जानता था कि सैम्सन बी० के० की इस मदद को लेकर काफ़ी ग़लत फ़हमियाँ फैला रहा है। मिसेज़ सैम्सन भी यह सब व्यंग्य सुनने लगी थीं लेकिन उसने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया। वह चुपचाप रोज़ सैम्सन से मिलती और बी० के० का मोम जैसा हृदय तरल हो उठता। वह बार-बार "नारी तुम श्रद्धा ही हो केवल" जैसी पंक्ति पढ़ता और उसमें आत्मविभोर होकर यह भी भूल जाता कि वह कौन है, कहाँ है ?

धीरे-धीरे करके कब और कैसे यह सहानुभूति सह-अनुभूति में बदल गई, कब और कैसे वह मिसेज़ सैम्सन के उस एकाकी जीवन का साहचर्य नितान्त भाव-विभोर होकर भोगने लगा, इससे वह आज भी अपरिचित ही रहा। जीवन के अनेक व्यवधानों के बीच उसे लगता कि जब वह मिसेज़ सैम्सन के साथ होता है तो कहीं कुछ तरलता अपने आप ही पसीज कर उसे भिगो देती है।

एक दिन उससे न रहा गया। उसने मिसेज़ सैम्सन से कहा—

"तुमने कभी किसी को प्रेम किया है···"

"प्रेम ? नहीं···देयर इज़ नथिंग लाइक लव···" बी० के० उसकी बात सुनकर सन्न रह गया। बोला—

"विल्सन बाक्सर से तुमने क्यों विवाह किया···"

मुझे उसको बाक्सिंग की रीति से प्रेम था···वह जिस प्रकार अपने विरोधी को रिंग में मारता था उसमें एक प्रकार का विचित्र आकर्षण था···"

"उस आकर्षण से विवाह से क्या मतलब···"

"मतलब है···मैं जब पहले पहल भीड़ के साथ उसे बधाई देने गई, तो उसने मेरे हाथ को अपने हाथ में लेकर कुछ ऐसा स्पर्श किया कि मेरे शरीर का रोम-रोम जैसे विक्षिप्त हो गया···और-और···"

"और सैम्सन के साथ तुमने क्यों विवाह किया···"

"उसकी भाव तरल कल्पना में कहीं कुछ ऐसा था जिसमें देवत्व की झलक मिलती थी···उसकी गहरी, नीली आँखों में एक ज्योति थी··· एक अलौकिक ज्योति···

बी० के० चुप रह गया। उसने इस विषय को आगे नहीं बढ़ाया। वह चुपचाप ईडेन गार्डेन के वृक्षों की ओर देखने लगा उसे लगा कि मिसेज़ सैम्सन के प्रेम में एक क्षणिक आकर्षण के प्रति आग्रह है। वह उस आग्रह से मुक्त नहीं हो पाती। प्रत्येक आकर्षण जैसे उसे वशीभूत करके जड़वत यंत्र की तरह प्रचालित कर देता है। उसे यह भी अनुभव हुआ कि इस समय भी मिसेज़ सैम्सन जैसे उसी क्षण के वशीभूत होकर उसके साथ हैं। दोनों इडेन-गार्डेन से उठकर क्लाइव स्ट्रीट की ओर चल पड़े। फ्लैट नं० ३ उसका था। फ्लैट नं० ४ मिसेज़ सैम्सन का। दोनों ही उसी ओर चले।

घर पहुँच कर बी० के० ने अपना फ्लैट खोला और कमरे की बत्ती जलाने के लिये स्विच बोर्ड की ओर हाथ बढ़ाया कि उसे लगा उसके हाथ को मिसेज़ सैम्सन ने पकड़ लिया है। वह मिसेज़ सैम्सन की बाहों में घिरा हुआ है। मिसेज़ सैम्सन का सर उसके वक्षस्थल पर टिका हुआ है। बी० के० का सारा शरीर काँपने लगा। उससे बत्ती नहीं जलाई गई। वह अगर वहीं कुर्सी पर बैठ न जाता तो शायद बेहोश होकर गिर पड़ता। कुर्सी पर बैठ कर उसने बहुत धीमे से मिसेज़ सैम्सन के भुजपाश को ढीला किया। दोनों हाथों से कन्धों को पकड़ कर अपने से पृथक् किया। लेकिन मिसेज़ सैम्सन जैसे एक विद्युत-सी थी जिसे छूने से हाथ जले जाते थे, जिसके स्पर्श से सारा शरीर झन-झना उठता

था। वह उस भुजपाश को ढीला तो कर सका लेकिन मिसेज़ सैम्सन को अपने से पृथक् नहीं कर पाया। मिसेज़ सैम्सन की साँस तेज गति से चल रही थी। उसकी प्रत्येक धड़कन जैसे स्वयं बी० के० की धड़कन से टकरा रही थी। थोड़ी देर तक वह वहीं बैठा रहा। फिर धीरे-धीरे उठा। स्विच बोर्ड के पास जाकर उसने बत्ती जलाई। उसने देखा मिसेज़ सैम्सन की आँखें बन्द थीं और वह नितान्त बेहोशी की हालत में एक ठण्डी लाश-सी सोफ़े पर सिर ऊपर किये बैठी थी। नौकर खाना बनाकर मेज पर लगा कर चला गया था। बी० के० मिसेज सैम्सन के पास गया। उसने हाथ पकड़ कर उसे उठाया और मेज़ के पास ले जाकर बिठा दिया। एक प्लेट उसके आगे रख दी। खाना परोस दिया और खुद लेकर खाने लगा। मिसेज़ सैम्सन बिल्कुल मुर्दा जैसी बैठी थी। बी० के० ने कहा—

"खाना शुरू करो···"

जैसे यह एक वाक्य उसकी आत्मा में कहीं ऐसा चुभ गया कि वह तिलमिला उठी। उसने आँखें खोलीं। नशे में चूर लाल आँखों में जाने कितना खुमार भरा था। बी० के० की ओर देख कर वह हँस पड़ी। एक नीरस सूखी हँसी जिसमें शायद उपहास था, बी० के० के प्रति घृणा का भाव था···शायद उसकी कायरता के प्रति क्षोभ भी था।

बी० के० ने खाना शुरू कर दिया था। मिसेज़ सैम्सन वैसे ही बैठी थी।

थोड़ी देर बाद उसे आवेश-सा आ गया। वह उठी। एक झटके के साथ दरवाज़ा खोलकर बाहर चली गई। बी० के० काफ़ी देर तक उसके पैरों की आवाज़ सुनता रहा। उसने यह भी सुना कि मिसेज़ सैम्सन ने एक झटके के साथ अपने कमरे का दरवाज़ा खोला। उसने यह भी सुना कि ठीक उसके सिर के ऊपर छत पर मिसेज़ सैम्सन ने अपना पलँग खींचा है। उसने यह भी सुना कि जैसे कोई पलंग पर जोर से गिर पड़ा।

लेकिन बी० के० के खाने का उपक्रम वैसा ही चल रहा था। वह धीरे-धीरे खा कर चुप-चाप खामोश होकर बैठ गया।

दूसरे दिन बी० के० की भेंट मिसेज़ सैम्सन से आफ़िस में हुई।

आफ़िस में इस बात का शोर था कि आज दोनों एक साथ नहीं आये थे। प्रायः सभी इस घटना को अनहोनी मानते थे। किसी ने कहा— "दोनों में खटक गई है, वह अकेला आया है। थोड़ी देर बाद मिसेज़ सैम्सन भी आ गई। अपने आने के साथ ही वह चुप-चाप अपनी मेज़ पर जाकर बैठ गई। ढेरों ख़त सामने मेज़ पर रक्खे थे। एक एक करके सब समाप्त हो गये। लंच में भी आज मिसेज़ सैम्सन बी० के० से नहीं मिली। कैण्टीन में गई और एक प्याली चाय पीकर फिर आकर काम करने लगी।

शाम को जब छुट्टी हुई, तो वह सीधे घर जाने लगी। बीच में ही बी० के० ने उसे टोका। पास आकर वह बोला— "डाली..."

उसने मुड़ कर देखा और फिर दूसरी ओर चली गई। बी० के० फिर आगे बढ़कर बोला— "डाली..."

डाली रुक गई।

बी० के० ने पूछा— "मुझसे नाराज़ हो क्या..."

डाली ने ऐसे देखा जैसे वह आँखों ही आँखों में उसे निगल जायगी।

बी० के० ने फिर कहा—"लेकिन क्यों..."

अब तो डाली जैसे बरस पड़ी। बोली—"यू टिमिड, कावर्ड..."

बी० के० की समझ में नहीं आया कि आखिर वह इस प्रकार इतनी विह्वल सी क्यों हो रही है। बोला—आखिर तुम्हें हुआ क्या है...कोई बात भी तो हो।"

डाली ने कोई उत्तर नहीं दिया। बस आई और वह उस पर बैठ कर चली गई।

बी० के० की शाम पिछले दो महीनों से डाली के ही साथ बीतती थी। आज वह फिर एक दम अकेला हो गया था—अकेला ठीक वैसा

ही अकेला जैसा वह जन्मा था ···कूड़े पर फेंका हुआ, ग़लीजों के बीच ! ठीक वैसा ही जैसा उसने अनुभव किया था जब उसकी माँ उसे अकेले छोड़ कर बम्बई भाग गई थी। ठीक उसी प्रकार जैसे उसने उस समय अनुभव किया था जब बम्बई के सी-बीच पर कस्टम आफ़िसर्स के बीच छोड़ कर ममता चली गई थी— नितान्त अकेला···निरीह···निराधार···

बी० के० को लगा जैसे वह किसी पूर्व निश्चय द्वारा प्रताड़ित किया जा रहा है। उसके वश में स्वयं उसके ही मन की घटनायें नहीं हैं। वह केवल एक माध्यम है जिसका उपयोग करके लोग उसे छोड़ देते हैं—शायद वह इतना उपयोगी भी नहीं है—केवल अपने भीतर की छूत से डरता है···चाहता है, यह जो पल-पल पर सहानुभूति, करुणा उसे द्रवित कर जाती है, साल जाती है, वह उससे मुक्त हो जाय। लेकिन जैसे मुक्ति उसकी अपनी अर्जित उपलब्धि नहीं है, वह एक आरोपित विवशता है···उसकी मजबूरी है, बीमारी है···

उस दिन वह वहाँ से उठकर सीधे चौरंगी की ओर गया। एक बार में कई चीनी बैठ कर शराब पी रहे थे। वह भी वहीं गया। एक पेग शराब मँगाई और धीरे-धीरे पीने लगा। एक घूँट···दो घूँट··· तीन···

शराब की तेज़ाबी तलख़ी जैसे उसके अन्तर की कटुता को सींच रही थी···एक-एक करके उसके सामने तस्वीरें उभरने लगीं···

शराब की लहरों में एक अत्यन्त ही शरवती रूप···ममता···तुम··· ज़रूरत से ज्यादा सुन्दर लगने वाली तुम···एक भभकती हुई ज्वाला की अनगिनत लपटों के बीच तैरती तस्वीर आग और पानी का सम्मिश्रण···

बी० के० के लिये यह कल्पना भी असह्य थी !

उसने एक रोज़ ममता से पूछा भी— "इस आग से क्यों खेलती हो···ये गन्दे लोग दिन रात मौत से आँख मिचौली खेलने वाले···"

वह एक व्यंग्यात्मक हँसी हस पड़ी थी। बोली—"कुछ चीज़ें हैं जिन पर मेरा कुछ भी वश नहीं है···अगर ज़िन्दा रहना है, तो मुझे इस आग से खेलना ही है···मेरे पास केवल यह रूप है···इसी के बल पर मैं जी सकती हूँ···इसको बेचने के बजाय मैं इसे दिखा कर जिन्दा रहती हूँ···"

बी० के० की समझ में ममता की यह रहस्यमयी भाषा नहीं आई। और, दूसरे दिन जब वह आँखों में आँसू भर कर बोली···

"मुझे लगता है कि मुझे यह रूप भी बेचना पड़ेगा। मेरा यह व्यापार अधिक दिन नहीं चल सकता···" तो बी० के० को लगा जैसे उसकी सारी घृणा एक हठात करुणा में बदल गई हैं। उसने भरे हुए गले से कहा— "तुम्हारे लिए मैं क्या कर सकता हूँ···"

"कुछ नहीं···तुम मुझे छोड़ कर भाग जाओ···मेरे चारों ओर एक भयंकर जाल है···एक खतरनाक जाल···"

"बी० के० ने कहा—"तुम चाहो तो उसे तोड़ सकती हो···"

"खुद टूट जाऊँगी···तोड़ नहीं सकती···"

और तभी उस भद्दे कुरूप आदमी का हाथ ममता के कन्धे पर पड़ा था। एक राक्षसी हँसी के साथ वह बोला— "तू भाग जायगी? कहाँ जायेगी···तेरी अन्धी बहन और तेरा बूढ़ा बाप···दोनों को इसी समुद्र में फेंक दूँगा···"

बी० के० ने देखा, उसके चेहरे पर भयंकर प्रतिहिंसा की क्रूरता छाई हुई है। चारों ओर उसे अन्धकार ही अन्धकार दिखाई दिया। ममता के करुणार्द्र नेत्रों में जा आँसू ·थे वे शायद जरूरत से ज्यादा कोमल थे। ममता विवश-सी उसकी ओर देख रही थी। वह कहता जा रहा था— "यह शादी कल ही होगी···इसलिए नहीं कि तू बड़ी सुन्दर है, बल्कि इसलिये कि तुझे लोग मेरी बीबी समझें और यह पेटियाँ जिसे लेकर तुझे बम्बई से आगे अन्य प्रदेशों में जाना है उसमें कोई रोक-टोक न हो···"

बी० के० सन्न था। उसके सामने ममता की कोमलता और उस

पशु सरीखे आदमी की कठोरता दोनों थी। वह कहता जाता था—"औरत औरत होती है···वह न तो खूबसूरत होती है और न बद-सूरत···तू जो चाहे कर···जैसे चाहे रह···मुझे तेरा पति बनना है···वह भी काग़ज़ पर···समझी···कल फूलों से लदी हुई गाड़ी ख्वाजा बिल्डिंग्ज़ के सामने खड़ी होगी। विवाह के बाद ही तुझे मेरे साथ कलकत्ते चलना है···"

ममता ने अपना सिर हिला दिया। उसने अपनी भद्दी, मोटी उँगलियों से उसका झुका हुआ चेहरा ऊपर उठाया। ममता की पलकें भीगी थीं। उसकी आँखों में एक विवशता थी। वह कड़ककर बोला—"नई दुल्हन की ऐसी रोनी शक्ल नहीं होती"—वह हँस पड़ी। उसके सूखे होंठ खिच गये।

और दूसरे ही क्षण उस आदमी ने सौ-सौ के पाँच नोट बी० के० के सामने फेंक दिये। बोला—मैं तुम्हें नहीं जानता, लेकिन तुमने होटल में हम दोनों की जान बचाई है और सी-बीच पर भी···यह पाँच सौ रुपयें रख लो···ख्वाजा-बिल्डिंग्ज़ के पते से खत लिखना···५०० रुपये और मिलेंगे···"

बी० के० जानता था कि उन रुपयों से इन्कार करने का अर्थ मौत है। उसने उन्हें उठाकर जेब में रख लिया। धीरे-धीरे वह दूसरी ओर चला गया। थोड़ी देर में वह दोनों एक काली कार पर दूसरी ओर रवाना हो गये—

सहसा शराब पीते-पीते दूर होटल के एक कोने में उसे लगा ममता ही बैठी है। वह लड़खड़ाता हुआ उठा और उस ओर गया। एक नितान्त संभ्रान्त व्यक्ति के साथ बैठी ममता ही शराब पी रही थी। उसे ग़ौर से देखने केबद बी० के० बोला···"ममता तुम···"

आज छः साल बाद वह ममता को देख रहा था। उसकी आँखें धोखा नहीं दे सकती थीं। उसने फिर कहा "ममता" !

उस स्त्री ने बी० के० को ऊपर से नीचे तक देखा ! मेज़ पर पड़ी

घण्टी बजाई मैनेजर खुद उठा कर आया । वह बोली—"लगता है इस आदमी ने ज्यादा पी ली है···इसे मेरे पास से हटाओ···यह होश में नहीं है···"

बी० के० देख रहा था ! यह वही ममता थी । वह बोला—

"नहीं, ममता नहीं···मैं नशे में नहीं हूँ···"

वह महिला इसे देखकर हँस पड़ी । "बोली हर बेहोश आदमी यही कहता है ।"

और मैनेजर ने बी० के० का हाथ पकड़ लिया । उसे घसीट कर ले आया और उसकी मेज़ पर ज़बर्दस्ती बैठा दिया ! बी० के० खामोश होकर बैठ गया । उसने देखा वह ममता थी । ठीक वैसी ही···लेकिन अब भी उतनी ही खूबसूरत । ब्रोफेडर की सुनहली साड़ी में माँग में सिन्दूर, हाथों में चूड़ियाँ । शरीर में कुछ ज्यादा शिथिलता थी । अंगों में पिछले छः वर्षों के उतार-चढ़ाव अंकित थे । वह खामोश हो गया । शैराब पीकर बिल चुका कर वह जाने लगा । एक बार उसने फिर मुड़ कर देखा । ग़ौर से देखा । ममता ही थी । उसके वायें गाल का तिल ठीक वहीं था जहाँ उसने आज से छः साल पहले देखा था । वह कुछ नहीं बोला और एक परेशानी की हालत में घर चला आया ।

रात में मिसेज़ सैम्सन उसके कमरे में आई । एक अदालत की नोटिस थी । मिसेज़ सैम्सन के तलाक़ का मुक़दमा । बी० के० को गवाही देनी थी । काग़ज मेज पर रखकर वह चली गई !

सुबह नींद खुलते ही बी० के० ने वह काग़ज़ खोला और एक साँस में पढ़ गया । सिग्रेट के लिए जब उसने कोट की जेब में हाथ डाला, तो सहसा एक कार्ड नीचे गिरा उसने उसे उठा लिया । लिखा था—ममता सिहल, १४ मेट्रो होटल, चौरंगी कलकत्ता !

बी० के० की समझ में नहीं आया कि यह कार्ड उसकी जेब में कैसे और क्यों आ गया । उसे धीरे-धीरे विश्वास हो गया कि यह कार्ड कल रात उसी महिला ने डाला होगा जो मेट्रो होटल में बैठी थी । व०

चुप-चाप सिग्रेट जला कर कुछ सोचने लगा। सहसा उसके कमरे का दरवाज़ा खुला और मिसेज़ सैम्सन आकर खड़ी हो गई—

"आप चलेंगे न···"

बी० के० ने एक बार उसकी ओर देखा और फिर बोला—

"अगर तुम चाहोगी तो···"

"तुम्हें चलना ही है···" मिसेज़ सैम्सन ने फिर कहा···

"लेकिन मैं टिमिड और कावर्ड दोनों ही हूँ···मेरी गवाही तुम्हारे काम की होगी···" बी० के० ने पूछा।

मिसेज़ सैम्सन तिलमिला उठी। बोली—"आई विल टर्न मैड, बी० के० प्लीज़"

बी० के० ने उसके चेहरे की ओर देखा, फिर बोला—"नहीं-नहीं डाली···पागल मुझे होना चाहिये, लेकिन समझ में नहीं आता मैं········ चाहते हुए भी पागल हो क्यों नहीं जाता···?"

और तभी भीतर से बूढ़ी आया चाय लेकर आई। दोनों को बात करते देख वह हँस पड़ी। दो प्यालों में चाय ढालकर उसने दोनों को दी। चाय पीने के साथ-साथ वह कहता गया था···

"तुम अभी जानती नहीं हो डाली···मुझ जैसे आदमी को तो ज़िन्दा रहने का कोई हक ही नहीं है, लेकिन मेरी समझ में नहीं आता मैं ज़िन्दा क्यों हूँ, कैसे हूँ···फिर टिमिड और कावर्ड होना मेरे लिये स्वाभाविक है···"

कहते-कहते बी० के० रुक गया। उसने देखा मिसेज़ सैम्सन के चेहरे पर एक गहरी उदासी छाई हुई थी। उसकी आँखों में एक विचित्र प्रकार का रूखापन था। माथे पर कुछ शिकनें थीं, जिन्हें उसके मेकअप के पाऊडर और सारे साज भी छिपाने में असमर्थ थे। उसके साथ-साथ लगता था जैसे वह किसी गैरज़रूरी बेशर्मी में सराबोर-सी है। वह टूटना चाहती थी, लेकिन टूटते-टूटते ही रह जाती थी।

बी० के० ने उसकी मानसिक-दशा देखकर कोई प्रतिवाद नहीं किया।

वह एक दम चुपचाप बैठा रहा। चाय समाप्त करने के बाद अपनी उँगलियों के बीच वही विज़िटिंग-कार्ड नचा रहा था। थोड़ी देर तक मिसेज़ सैम्सन वहीं बैठी रही। फिर उठी और चली गई।

बी० के० काफ़ी देर तक बैठा रहा। फिर उसने आफ़िस के लिए एक दरख्वास्त लिखी, तैयारी की और ठीक दस बजे अदालत जाने के लिए अपने कमरे से निकला। उसने देखा मिसेज़ सैम्सन उससे पहले ही तैयार होकर नीचे प्रतीक्षा कर रही हैं। बी० के० ने पूछा —

"तुमने बुलाया नहीं…"

"मैं जानती थी तुम खुद ही आओगे…"

और तभी एक बस आकर खड़ी हो गई। दोनों उसी में बैठ गये।

शाम को जब बी० के० अदालत से लौटा, तो मिसेज़ सैम्सन भी उसके साथ थी। बी० के० को अपनी गवाही देनी थी सो उसने दे दी थी। सैम्सन के वकील ने कई तरह से यह साबित करना चाहा था कि बी० के० का और मिसेज़ सैम्सन का नाजायज़ सम्बन्ध है, लेकिन उसके बहुतेरी जिरहों के बावजूद भो जज इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा। उसने भरी अदालत में सैम्सन के वकील को डाँट दिया। लेकिन जब जज ने बी० के० से पूछा कि वह मिसेज़ सैम्सन की मदद क्यों करता है, तो जैसे बी० के० नर्वस हो गया। आज तक उसने यह प्रश्न स्वयं अपने से भी नहीं पूछा था। वह खुद भी जानना चाहता था कि वह मिसेज़ सैम्सन की इतनी ज्यादा मदद क्यों करता है। जज ने जब दुबारा पूछा, तो काँपती हुई आवाज़ में बी० के० ने कहा— "मैं खुद नहीं जानता…"

"लेकिन आपको जानना चाहिये……"

"जो कुछ भी होना चाहिए क्या वह होता है"

और तब जैसे जज का दिमाग़ पहले वकील की उस जिद्द पर गया, जिसमें उसने यह सिद्ध करना चाहा था कि संसार में बी० के० का कोई भी ऐसा नहीं जो सहानुभूति रखता हो। यह उसने बी० के० के माँ बाप न होने के कारण कहा था। बी० के० को पहली बार कुछ झेंप भी लगी।

वकील ने पूछा—"तुम्हारा नाम ? तुम्हारे बाप का नाम ? तुम्हारी मां का नाम ?" और उसके साथ-साथ उसने यह भी चेष्टा की कि यह सिद्ध कर दें कि इस प्रकार के व्यक्ति जब गवाह के रूप में पेश होते हैं तो उनकी गवाही का कोई भी महत्त्व नहीं होता। वकील ने कहा भी कि जिस व्यक्ति की माँ का पता न हो, बाप का पता न हो, वह समाज का प्रतिष्ठित व्यक्ति नहीं कहा जा सकता। बी० के० को उस समय क्रोध तो बड़ा आया लेकिन वह कर क्या सकता था। चुपचाप ख़ून का घूँट पी कर ख़ामोश हो गया। मुक़दमें में कोई और तारीख़ पड़ गई। मिसेज़ सैम्सन का पति एरिक सैम्सन इस प्रकार व्यंग्यात्मक ढंग से बी० के० को देख रहा था जैसे उसने बी० के० को परास्त कर दिया हो। बी० के० को भी लगा जैसे वह कहीं ग़लत जगह पर चोट खा गया है।

इसीलिये शाम को जब वह अदालत से निकला तो ज़रूरत से ज्यादा गंभीर और उदास था। सामने टैक्सी को बुला कर वह उसमें बैठा ही था कि मिसेज़ सैम्सन भी आकर उसी में बैठ गईं।

शाम हो रही थी। जाड़े के दिन थे। मिसेज़ सैम्सन ने नहा—"आज ईडेन गार्डेन नहीं जाओगे....?"

बी० के जैसे ऊँघते-ऊँघते उठा और बोला—"नहीं, तबीयत नहीं लगती।"

लेकिन मिसेज़ सैम्सन नहीं मानी। उसने टैक्सी वाले को इडेन गार्डेन ले चलने को कहा और और गाड़ी उधर ही चल पड़ी।

ईडेन गार्डेन में क़ाफ़ी भीड़ थी। पहले तो कहीं बैठने को जगह ही नहीं मिली लेकिन फिर बेंच खाली हुई और वह दोनों उस पर बैठ गये। मिसेज़ सैम्सन ने कहा—

"तुम इतने चुप क्यों हो ?"

"कुछ सोच रहा हूँ—"

"क्या ?" मिसेज़ सैम्सन ने दुबारा पूछा।

"यही, डाली कि....क्या आदमी बनने के लिये बाप की सिनाख्त इतनी ज़रूरी है...."

"छोड़ो भी इन बातों को" मिसेज़ सैम्सन ने कहा।

"लेकिन जिस समाज में हम रहते हैं। शायद उसमें इसकी बहुत बड़ी ज़रूरत होती है...."

"होगी....हमें नहीं चाहिये....हमें चाहिये ये फूल, यह नाजुक पंखुरिया, दि ट्रिव लाइट, दि रेन बो....लेट अस बी नोबुल डीयर लेट मैन बी नोबुल, हेल्प फ़ुल एण्ड गुड फ़ार दैट एलोन डिस्टिंग्विशेज़ हिम फ्राम आल बीइंग्स आफ़ ह्विच वी हैव नालेज...."

मिसेज़ सैम्सन आज शाम को जाने किस मूड में थी। बी० के० को लगा जैसे वह वास्तव में एक नितान्त संभ्रांत, शिष्ट और कोमल भावनाओं वाली है। उसने एक बार आवेश में आकर उसके गले में हाथ डाल दिया और उसने देखा कि मिसेज़ सैम्सन की आँखों में वैसे ही आँसू थे जैसे उसने आज से सालों पहले ममता की आँखों में देखे थे। उसे लगा कि ये आँसू ही उसे पागल बना देंगे। वह एक दम सिहर उठा और उठकर खड़ा हो गया। उसने अपनी जेब से रूमाल निकाला और उसकी आँखों के आँसू पोंछ दिये। मिसेज़ सैम्सन को लगा जैसे उसको वही स्नेह स्पर्श मिला है जो उसे बी० के० ने उस रात को दिया था जब उसने घर में घुसकर सैम्सन की प्रताड़नाओं से उसे मुक्त किया था। वह एक दम सिमिट सी गई। दोनों ईडेन गार्डेन से निकल आये। टैक्सी वैसी ही खड़ी थी। दोनों उस पर बैठ गये। टैक्सी क्लाइव स्ट्रीट की ओर चल पड़ी।

रास्ते में मिसेज़ सैम्सन बी० के० के बिल्कुल निकट बैठी थी। आज जाने क्या बात थी। स्वयम् बी० के० का हाथ ही उसे बिल्कुल अपने समीप खींच लाता था। उस अँधेरे में कई बार मिसेज़ सैम्सन ने बी० के० के कन्धे पर अपना सर रख कर सिसकना शुरू कर दिया था। बी० के० मौन स्थिर सा उसे अपने हाथों से पीठ पर थपकियाँ दे रहा था। मिसेज़ सैम्सन ने कहा—

"तुम इतने अच्छे क्यों हो ?"

बी० के० को कोई जवाब ही देते नहीं बना। घबरा कर उसने हाथ हटा लिया। मिसेज़ सैम्सन ने अबकी बार जैसे फिर समर्पण की मुद्रा में बी० के० की गोद में सो जाना चाहा। और तभी टैक्सी एक किनारे रुक गई। ड्राइवर आकर बाहर खड़ा हो गया। बोला—"सर क्लाइव स्ट्रीट आ गया।"

बी० के० ने देखा ठीक उसी के फ्लैट के सामने टैक्सी रुकी हुई है। वह उतरा। उसने टैक्सी वाले को पैसे दिये और हाथ का सहारा देकर मिसेज़ सैम्सन को टैक्सी से उतारने लगा। मिसेज़ सैम्सन बिल्कुल अस्त-व्यस्त थीं। सहारा देकर ऊपर उठाते हुये बोला—

"इट इज अवर होम डियर····लेट अस प्रोसीड"

दोनों लड़खड़ाते हुये से फ्लैट पर चढ़ने लगे। मिसेज़ सैम्सन ने बी० के० का सहारा ले रखा था। कुछ ज्यादा झुकी हुई लेकिन शान्त···आन्तरिक आन्दोलनों में ओत-प्रोत····बी० के० ने अपने फ्लैट का दरवाजा खोला और भीतर कुर्सी पर बैठ गया। मिसेज़ सैम्सन भी पास की ईज़ी चेयर पर बैठ गई। बी० के० ने कहा—"आई एम पेन्ड····डाली····आज जैसी असह्य वेदना तो मुझे कभी हुई ही नहीं····इस पीड़ा का अन्त कहाँ है ?"

"सहने में है····केवल सहना और बस····"

"लेकिन यह जो मुझ में विद्रोह उठता है····यह जो जी में आता है कि इन सब व्यवधानों को तोड़ कर निकल जाऊँ····"

अब तक मिसेज़ सैम्सन ने एक दियासलाई जला ली थी। उसकी लपट से वह अपनी हथेली जला रही थी। बी० के० आँखें बन्द किये बैठा था। उसे कुछ अनुभव ही नहीं हो रहा था। सहसा उसकी पलक खुली तो उसने देखा मिसेज़ सैम्सन के हाथ पर एक वृत्ताकार काला दाग था। बी० के० जैसे चौंक पड़ा—"यह क्या कर रही हो····"

"कुछ तो नहीं····" हँस कर उसने कहा

"सारा हाथ जल गया····दर्द नहीं हुआ"

"यही तो देख रही थी····तुमने रोक दिया····बर्दाश्त की हद कितनी है····मैं रोक नहीं पाई····इस दर्द की भी एक सीमा है····उसके आगे शायद सहन नहीं होता····मैं चीख़ पड़ती····"

"चीख़ ? आज तक कोशिश करके भी मैं चीख़ नहीं पाया····"

और उसने अपनी जली हुई सिग्रेट अपनी हथेली पर लगा ली। हथेली की मोटी चमड़ी सुलगने लगी। वह खामोश बैठा रहा····हाथ जलता गया लेकिन वह एक इंच भी न हिला, न डुला। कुछ देर बाद उसके चेहरे पर कुछ शिकनें पड़ने लगीं। वह अपने होंठ दबा कर बैठ गया। थोड़ी देर बाद उसने अपनी आँखें भींच लीं। फिर हाथ फैला दिया लेकिन भिंची हुई मुट्ठी और कस गई। बी० के० टस सेमस भी न हुआ लेकिन मिसेज़ सैम्सन चीख पड़ी। उसने ज़बर्दस्ती उसकी मुट्ठी खोली। बी० के० के हाथ की मुट्ठी में गहरा जख़म हो गया था। लाल और झुलसा हुआ मांस दिखने लगा। बी० के० ने आँखें खोलीं। जाड़े के दिनों में भी उसके माथे पर पसीने की बूँदें झलकने लगीं। आँखें लाल हो आईं। चेहरे पर जो रेखायें तनी थीं वे और भी गाढ़ी और काली हो गईं। लेकिन जब उसने अपने पिसे हुये होठ खोले तो उसके चेहरे पर एक हँसी की रेखा थी। वह हँस रहा था। शायद उस हँसी की गहराई में ही उसके ज़ख्मों का दर्द चमक आया था।

"यह तुम ने क्या किया····"

"याद कर रहा था उन जखमों को जो अबोध स्थिति में कूड़े पर फेंक दिये जाने के बाद मेरे शरीर में उगे होंगे····शायद उन्हीं के कारण मैं यह सारे व्यंग्य सह लेता हूँ—"

"व्यंग्य को सह लेना तो ठीक है लेकिन यह क्या है"

"मैं खुद नहीं जानता क्या है····सच मानो डाली····यह पूरा हाथ जल जाता तो भी मैं उफ़ नहीं करता····"

"लेकिन उफ़ तो तुम्हारे चेहरे की आकृति से झलकती थी····यह तुमने बुरा किया····मैं तो मज़ाक कर रही थी····यूँ ही····और तुम इतना

बड़ा जख़म ले बैठे····महीनों लगेंगे ठीक होने में····''

''मेरी याददाश्त बड़ी कमज़ोर है डाली····तुम जिसे महीनों कहती हो वे वह मुझे लगता है अभी-अभी यानी कल ठीक हो जायगा····कल भी क्यों····लो यह तो ठीक हो भी गया ?''

मिसेज़ सैम्सन कुछ नहीं बोली। उसे याद आया कि एक बार जब वह खाना बनाते-बनाते जल गई थी तो डाक्टर ने उसे बर्नाल लगाने के लिये कहा था। उसका पूरा ट्यूब उसके कमरे में कहीं रक्खा था। वह दौड़ी-दौड़ी गई और वह ट्यूब लेकर आई। उसने उसे बी० के० की हथेली पर लगा पट्टी बाँध दी। बी० के० को लग रहा था जैसे उसके जिस्म में उसकी आत्मा में एक ताजगी आ गई।

आया खाना ला चुकी थी।

दोनों फिर साथ खाने बैठे।

इस बार बी० के० ने मिसेज़ सैम्सन से खाने के लिये नहीं कहा। वह खुद ही परोस कर खाने लगा। मिसेज़ सैम्सन ने भी अपना खाना परोस लिया और खाने लगी। बी० के० को आज शोर्वे की तुर्शी भी भली लग रही थी। मिसेज़ सैम्सन को तो पहले ही ग्रास में शोर्वे की कड़वाहट जैसे गले लग गई। वह खाँसने लगी। बोली—''बड़ा कड़वा है''—और लगातार तीन गिलास पानी पी गई। बी० के० को अकस्मात हँसी आ गई। बोला—

''कड़वाहट को भी हज़म करने की क्षमता होनी चाहिये''

मिसेज़ सैम्सन चुप रहीं। खाना खाने के बाद दोनों बड़ी देर तक बैठे रहे। उसी कुर्सी पर जाने कब बी० के० को नींद आ गई। वह सो गया। लेकिन जब वह सुबह उठा तो उसे लगा जैसे उसने कोई सपना देखा है। उसके बिल्कुल पास पलंग पर मिसेज़ सैम्सन लेटी थी। वह कब उठकर पलंग पर आया था उसे जैसे याद ही नहीं थी। उसके सारे बदन में एक अजीब प्रकार का दर्द और आलस्य था। एक तन्द्रा थी जिससे उसे मुक्ति नहीं मिली थी। उसके हाथ पाँव में जैसे एक ऐठन थी

जो टूट कर मुक्त होना चाहती थी। लेकिन, उसे जैसे किसी ने बाँध रखा था। मिसेज़ सैम्सन जाने क्यों हंस रही थी।

उस दिन सुबह उठकर बी० के० आफ़िस नहीं गया। मिसेज़ सैम्सन के हाथ उसने उस दिन की छुट्टी की दरख्वास्त भिजवा दी। दस बजे ही वह उठकर मेट्रो होटल की ओर चल पड़ा। होटल में पहुँच कर उसने दिये हुये पते पर वेटर से कार्ड भिजवाया। काफ़ी देर तक तो कोई उत्तर ही नहीं आया फिर थोड़ी देर बाद वेटर ने आकर कहा—"अभी आप बैठें""मेम साहब अभी बुलवालेगी" बी० के० के मन में एक प्रकार का अधैर्य था। वह ममता से जल्दी से जल्दी मिलना चाहता था। लेकिन समय जैसे उसके वश में नहीं था। उसे प्रतीक्षा करनी ही पड़ी। उसने काफ़ी और कुछ खाने का आर्डर दिया। चुप-चाप बैठा वहीं ऊँघता रहा लेकिन कोई उत्तर नहीं आया।

लगभग डेढ़ घन्टे के बाद उसने देखा कि वह व्यक्ति जो पिछली रात ममता के साथ बैठा था, सीढ़ियों से उतर रहा है। निश्चय ही उसने बी० के० को नहीं देखा क्योंकि वह काफ़ी नीचे बैठा हुआ था लेकिन इस बार वह कुछ काम के झोक में था। चुप-चाप सीढ़ियों पर से नीचे उतरा और बाहर चला गया। बी० के० ने उसे इस समय फिर बड़े गौर से देखा। उसके दिमाग में आया जैसे उसने उसे कहीं देखा है।

अभी वह यही कुछ सोचने में ही व्यस्त था कि सहसा वेटर ने आकर से कहा—"मेम साहब ने बुलाया है...."

बी० के० ऊपर चला गया। कमरे में प्रवेश करते ही ममता ने कहा—

"मैं जानती थी कि तुम आज ज़रूर आओगे...."

बी० के० ने एक बार फिर उसे ऊपर से नीचे तक देखा। यह सत्य है कि ममता अब छः साल पहले जैसी नहीं थी लेकिन अब उसमें एक दूसरे प्रकार की सुन्दरता थी। उसे लगा कि आज से छः साल पहले जितना कुछ भी रूखा, अविस्मित सा लगता था वह सहसा प्रस्फुटित

होकर नितान्त प्रौढ रूप धारण कर चुका है। बी० के० को लगा कि वह उससे कोई बात न करे। ख़ामोश निरीह सा बैठा केवल उसे देखता रहे।

"और मि० मटियानी कहाँ है ?"

उसे भद्दे कुरूप आदमी की याद दिलाते हुये बी० के० ने पूछा।

"कौन भूटानी····ओह····वह·····"

कुछ याद करते हुये ममता ने कहा।

फिर थोड़ा मुस्करा कर बोली—

"एक ज़माना हुआ मिस्टर मटियानी से मिले हुये—"

बी० के० सुन कर सन्न रह गया। अभी आख़िरी दिन उसने ममता से शादी करने के बाद उसे ५०० रु० भेजे थे। एक साल बाद जब उसे अपने कलकत्ते के फर्म में नौकरी करने के लिये एक हज़ार नक़द की ज़मानत देनी थी तो उसने मि० मटियानी को ही ख़त लिखा था और १०००) तार से उसे मिल गये थे। उसके बाद से उसने जाने कितने ख़त लिखे लेकिन कोई जवाब नहीं आया। मि० मटियानी को बी० के० याद रक्खे हुये है, लेकिन ममता को जैसे याद ही नहीं है। ममता की बात से बी० के० को आश्चर्य तो अवश्य हुआ लेकिन फिर उसने पूछा—

"और तुम्हारी अच्छी बहन कहाँ है····वृद्ध पिता·····"

ममता जैसे एक दम से चौंक गई बोली—

"मैं नहीं जानती कहाँ हैं·····"

अब तो बी० के० और भी सन्न रह गया। ममता को उसने बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखा था। वह समझता था कि स्मगलिंग के पेशे से लेकर मि० मटियानी के तमाम अत्याचार केवल अपने वृद्ध पिता और अन्धी बहन के लिये सहा था। लेकिन ममता की बात सुन कर उसे एक दम विस्मित हो जाना पड़ा। कुछ सोच कर बोला—"उस दिन ख्वाजा-

बिल्डिंग में तुमने मुझे जिन लोगों से मिलाया था क्या वह तुम्हारे पिता और तुम्हारी बहन नहीं थी····"

"थी····"

"लेकिन फिर····फिर····तुम्हारे····"

"मेरे लिये उनका कोई मूल्य नहीं है····उन्होंने मुझे मि० मटियानी के हाथों सौंप दिया था····एक तरह से मुझे बेंच दिया था····सिर्फ जीने की सुविधा और शराब की सुविधा के लिये····उन्होंने मेरे जिस्म तक को बेच देना चाहा था····"

बी० के० सब चुप-चाप सुनता जा रहा था। फिर बोला—

"और अब····?"

"अब मैं मिसेज़ सिंघल हूँ····नागपूर हाईकोर्ट के ज्वाइंट बैरिस्टर की पत्नी····"

बी० के० को लगा जैसे उसके पैर के नीचे की ज़मीन खिसक गई है। उसने एक बार फिर ममता को ऊपर से नीचे तक देखा। ममता कहती जा रही थी····

"जिस फूलों से लदी मोटर पर मैं बम्बई से चली थी····वह नागपुर पहुँचते-पहुँचते फेल हो गई। मि० मटियानी को जाने कैसे पता चल गया था····वह नागपुर से पहले ही चालीस मील पर उतर कर भाग गया। मोटर में दुल्हन बनी महज़ मैं थी और मोटर ड्राइवर····और जब मोटर की तलाशी ली गई तो पूरा एक मन सोना उसमें से निकला····मोटर की छत के नीचे, सीट के बीच में····और मैं पकड़ ली गई····और जब मैं अदालत में पेश की गई तो मेरा मुक़दमा करने वाला कोई न निकला····सब ने मुँह बनाये। मि० सिंघल ने ही पैरवी भी की। मुक़दमा तीन साल तक चला····मेरी ख़बर तक लेने वाला कोई नहीं था। न वृद्ध पिता, न अन्धी बहन, न तथाकथित पति····"

"और तब····" बी० के० के मुँह से अकस्मात निकल गया,

"और तब····मैंने पहली बार आत्म समर्पण किया····बैरिस्टर

सिंघल ने मुझे एक बार ऊपर से नीचे तक देखा····फिर मोटर में बैठ कर अपने घर लिवा गये। सन्नाटा अकेला घर····मैं तो पहले डर गई लेकिन फिर वे बड़ी सहानुभूति के साथ मुझे एक कमरे में ले गये। उसमें बड़ी-बड़ी तस्वीरें लगी थीं। एक तस्वीर पर से उन्होंने पर्दा हटाया····मैं देख कर दंग रह गई····मेरी समझ में नहीं आया कि मेरी तस्वीर यहाँ कैसे है····लेकिन फिर उन्होंने कहा···· "पहचानती हो इस तस्वीर को ?"—मेरी समझ में नहीं आया मैं उनको क्या उत्तर दूँ। मेरी आँखों में आँसू के सिवा कुछ नहीं था। मुझे विह्वल देख कर उन्होंने कहा—"यह मेरी पत्नी की तस्वीर है····आज से एक वर्ष पूर्व यह मर गई थी ! उस दिन जब पुलिस तुम्हें हथकड़ियों में कैद कर के अदालत में ले आई तो मैं सन्न रह गया था। मैं नहीं जानता था कि तुम में इतना साम्य होगा। पहले मैंने संकोच किया लेकिन मैं नहीं जानता कि किस व्यक्ति ने तुम्हारा मुक़दमा करने के लिये मुझे विवश कर दिया····"
—और चार साल बाद जब मैं अदालत से बेदाग़ छूट गई तो मेरे सामने कोई चारा नहीं था। मैंने विवाह कर लिया····"

ममता की बात सुनते-सुनते बी० के० उठ खड़ा हुआ। वह कमरे में टहलने लगा। उसे विश्वास नहीं पड़ा कि ममता जो कुछ भी कह रही है वह सच है। उसने कई बार खिड़की के बाहर झाँक कर देखा। सारा शहर जैसे एक गोलाकार वृत्त में नाचता हुआ उसे दीख पड़ा। उसने एक बार ममता को देखा और उस होटल में टँगी मि० सिंघल की तस्वीर को। उसके मन में जाने कैसी श्रद्धा मि० सिंघल के प्रति उमण्ड आई। बी० के० को लगा जैसे दुनिया में अब भी कुछ ऐसे लोग हैं जो केवल मानव सहानुभूति और करुणा से द्रवित होकर मनुष्य का पक्ष ले सकते हैं—लेकिन उसकी समझ में यह नहीं आता था कि ममता इतनी आसानी से अपने पिता और बहन को भूल कैसे गई। उसने पूछा—

"और तब से तुम अपनी बहन से नहीं मिली ?"

न कहीं ममता समाज के प्रत्येक रिश्ते को केवल लाभ की दृष्टि से देखती है। उससे रहा नहीं गया। बोला—

"ममता ? क्या संसार के हर रिश्ते को तुम लाभ की दृष्टि से ही देखती हो ? तुम्हारे पास कोई दूसरी दृष्टि नहीं है ?...."

"न है नहीं थी....और न होगी...."

"ममता...." बी० के० चीख पड़ा। सहसा दरवाज़े पर किसी ने दस्तक थी। ध्यान दरवाज़े की तरफ़ चला गया। कोई और नही था। मिस्टर सिंघल एक दम नया सूट पहन कर आये थे। उनके पैरों की आवाज़ से ममता जैसे चौंक उठी। बड़ी मुश्किल से उसने अपनी दो चार बातें की थी। उसे डर था कहीं कमरे में आते ही मिस्टर सिंघल बी० के० को देख कर कुछ शुबहा न कर बैठें। लेकिन अब उसके सामने कोई दूसरा रास्ता नहीं था। पहले तो उसे घबराहट हुई लेकिन फिर उसने निर्णय कर लिया कि अब चाहे जो हो....अगर मि० सिंघल पूछेंगे भी तो.... तो....

अभी वह सोच ही रही थी कि मिस्टर सिंघल आ गये। बी० के० को देख कर उन्हें कुछ विस्मय अवश्य हुआ लेकिन फिर भी अपने को संभालते हुये उन्होंने पूछा—"आप की तारीफ़...."

"मि० बी० के०....मेरे बम्बई के साथी...."

"ओह...." कह कर वह दूसरे कमरे में चला गया।

बी० के० वहीं बैठा रहा।

ममता ने बताया कि वह कल नागपुर वापस जा रही है। कलकत्ता हाईकोर्ट में एक मुक़दमें में बहस करने के लिये मि० सिंघल आये थे। उन्हीं के साथ वह भी आई थी। मि० सिंघल मुक़दमा जीत गये हैं। आज शाम को एक पार्टी अटेण्ड करने के बाद दोनों चल देंगे।

बी० के० उठ खड़ा हुआ। लेकिन तभी मि० सिंघल आ गये। सोफे पर एक किनारे बैठ कर उन्होंने ने बी० के० को एक सिग्रेट आफ़र किया। बोले—

"आप यहाँ क्या करते हैं...."

"एक चाय कम्पनी में काम करता हूँ....."

मि० सिंघल चुप हो गये। फिर बोले—

"कल रात तो आप ही नीचे बार में मिले थे।"

"जी-मैं ही था..."

"ज्यादा पीली थी...इसीलिये मैंने इनको आपसे मिलने नहीं दिया... आखिर आप लोग इतना क्यों पी लेते हैं ?"

बी० के० एक दम से हँस पड़ा। बोला—

"गुनाह भी समय की माँग करता है क्या ?"

"शराब पीना आप भी गुनाह मानते हैं ?" मि० सिंघल ने कहा।

"गुनाह तो है ही..."

"तब ज़रूर आप गुनाह करते हैं..."

सिंघल के चेहरे पर कोई शिकन नहीं थी। बोला...

"यह गुनाह की कल्पना ही अमानुषिक है, मि० बी० के०। यह सारी कल्पनायें महज़ आदमी को जानवर की संज्ञा से बचाने के लिये की गई हैं...लेकिन असलियत यह है कि गुनाह की कल्पना ही से मनुष्य आज जानवरों से भी बदतर जिन्दगी जी रहा है...."

बी० के० मि० सिंघल की बात सुन कर सन्न रह गया। उसे लगा मि० सिंघल शायद एक बहुत बड़ी बात कह रहे हैं। वह एक दम उत्सुक सा मि० सिंघल का चेहरा देखने लगा। उसे लगा जैसे जीवन के उन पक्षों का उत्तर इसमें निहित है जिसके कारण वह नितान्त निरीह और अपमानित अनुभव करता है। वह मिस्टर सिंघल से कुछ और बातें करना चाहता था लेकिन वेटर ने आकर कहा—"सेठ साहब मिलना चाहते हैं...."

सेठ का नाम सुनते ही ममता चौंक पड़ी। उसने अपने अस्त-व्यस्त कपड़े संभाल लिये और गुम-सुम होकर बैठ गई। बी० के० को लगा जैसे वह इस बदलते प्रसंग में बेकार के लिये बैठेगा। वह उठा और नमस्कार

कर के जाने लगा। चलते समय मि० सिंघल ने उससे हाथ मिलाया। बी० के० को लगा जैसे उसके हाथ उससे ज्यादा गर्म हैं।

जब वही सीढ़ियों से उतर रहा था तो उसने देखा ग्रे सूट में एक सेठ तेजी से ऊपर चढ़ता आ रहा है। बीच सीढ़ी पर दोनों ने एक दूसरे को क्रास किया लेकिन दोनों ने कोई अभिवादन नहीं किया। हाँ इतना बी० के० ने अवश्य अनुभव किया कि सेठ के पीछे खानसामा जो बक्स ऊपर ला रहा है ज़रूर ही उसमें कोई उपहार भेंट होगा—भेंट जिसका अर्थ होता है—बख्शीश··· शुकराना···

●

दिन भर बी० के० कहीं नहीं गया। फ्लैट में अपने कमरे में ही लेटा रहा।

शाम को मिसेज़ सैम्सन आईं तो दोनों ने साथ चाय पी। फ़र्म के एक कर्मचारी की शादी थी। दोनों साथ-साथ गये। शादी विवाह के उस वातावरण ने कहीं बी० के० के मन को और ठेस लगाई···वहाँ भी उसने देखा कि वर की उतनी क़ीमत के पीछे बाप ही का नाम कार्य कर रहा था। उसके दिमाग़ में बार-बार यही प्रश्न उठता कि किसी भी आदमी के लिये बाप एक क़ीमत है जिसके आधार पर ही वह अपनी कीमत लगा सकता है अपना मूल्यांकन कर सकता है।

काफ़ी रात गये दोनों घर लौटे।

बी० के० का मूड ठीक नहीं था। वह थोड़ा चिन्तित था। उसके दिमाग़ में रह-रह कर एक ही बात गूँज रही थी। गुनाह-का मोह इतना आकर्षक क्यों होता है। उसने एक बार अपने कमरे की रोशनी में मिसेज़ सैम्सन को ग़ौर से देखा। उसके रूप रंग की आकृति में जो आकर्षण था वह उसे आज अपेक्षा कृत अधिक मोहक लग रहा था। उसके जी में आया वह उसे मुक्त होकर बाहों में कर ले···लेकिन फिर जाने क्यों दूसरे ही क्षण वह उदास हो गया···उसकी आँखों में एक प्रकार की काली निराशा तैर

गई। वह चुप-चाप कमरे में पड़ी ईज़ी, चेयर पर लेट गया। सिग्रेट जला कर उसके धुँये के छल्ले बनाने लगा।

मिसेज सैम्सन उसके कमरे को ठीक करने में लगी थी। इस अस्त-व्यस्त वातावरण में जैसे उसका जी नहीं लग रहा था। सारा कमरा ठीक करने के बाद वह बाथ रूम में गई। वहाँ उसने खुल कर शॉवर बाथ लिया। थोड़ी देर बाद जब वह निकली तो उसके धुले हुये अंग जैसे और भी उभर आये थे। बिजली के नीले प्रकाश में मिसेज सैम्सन एक नितान्त मोहक गुनाह सी लग रही थी!

मिसेज सैम्सन ने अपने कपड़े उठाये और चुपचाप कमरे के बाहर अपने फ्लैट पर चली गई। बी० के० अपने कमरे में बैठा उस नीली रोशनी में जीता जागता स्वप्न देख रहा था। उसकी आँखों में एक विचित्र प्रकार की तरलता थी। उसे लगता था उसके कमरे के सारे पर्दे किसी हवा महल के पर्दे के समान झिल-मिल कर रहे हैं। उसे अनुभव होता था जैसे वह पर्दे अभी खिसकेंगे और उसकी चारपाई के एकदम सफेद चादर पर अभी-अभी कोई अत्यन्त सुन्दर प्रतिमा आकर उसे एकदम निकट से आमन्त्रित कर देगी। उसने आँख बन्द कर ली। उसके सामने जैसे कभी ममता की प्रतिमा और कभी डाली की नाच जाती थी। दोनों ही दशाओं में उसका मन जैसे किसी अज्ञात् कल्पना से काँप जाता था लेकिन वह कम्पन भी एक सिहरती हुई अन्य गरिमा से ओत-प्रोत था।

सहसा मिसेज सैम्सन ने आवाज दी।

उसने काफी बना रक्खी थी। ऊपर से ही बोली—

"बी० के० काफी तैयार है"

बी० के० जड़वत सा खड़ा सुनता रहा। जैसे उसकी उठने की तबीयत ही नहीं हो रही थी। वह उसी तरह पड़ा रहना चाहता था।

थोड़ी देर बाद मिसेज सैम्मन खुद आई।

उसने बी० के० का हाथ पकड़ कर उठाया और सहारा देकर ऊपर लेकर चली गई ।

आज मिसेज सैम्सन (डाली) का कमरा बड़ा सजीव लग रहा था। सिरहाने वाली मेज पर रक्खी स्वयम् उसकी अपनी तस्वीर और भी आकर्षक लग रही थी। उसे लग रहा था जैसे सम्पूर्ण वातावरण उसे कोई मूक निमंत्रण दे रहा है। रह-रह कर सम्पूर्ण कमरे की हर एक चीज अलग-अलग उसे अपनी ओर खींच रही थी। कण-कण में एक उल्लसित लास था जो उसे एक मौन तन्द्रा में डुबो रही थी। वह काफी हल्की चुस्कियाँ ले रहा था और उसकी आँखों में एक विचित्र प्रकार का नशा जैसे छाया जा रहा था····

····················

····················

सुबह जब वह सीढ़ियों से उतर कर फ़्लैट नं० ४ से नं० ३ में जा रहा था तो फ़र्श पर अनायास ही उसकी दृष्टि पड़ गई। कुछ खुर्दुरा सा लगा। उसने अपनी कमीज पर देखा एक सुर्ख धब्बा था····दो होठों के निशान थे····उसकी उगलियों में पहली बार बरसों पहले की पुरानी नीलम की अगूंठी गड़ रही थी। उसके अंग-अंग में एक बोझिल-आलस्य था।

उसने अपना कमरा खोला और चारपाई पर मरीज़ सा लेट गया।

"जेल में सड़ने से क्या फ़ायदा है····वकील कर लो····लड़ो··"

"लड़ना मैंने छोड़ दिया है डाली····मैं लड़ भी कितना सकता हूँ····" थोड़ी देर चुप रहा। फिर बोला—"यह नागपुर का पता है····ममता के पति मि० सिंघल का····अच्छे बैरिस्टर हैं····तुम्हें अपने मुकदमें में ज़रूरत पड़ेगी मेरा यह पत्र उनके पास भेज देना····मेरा विश्वास है कि वह ज़रूर तुम्हारी पैरवी कर देंगे ····"

मिसेज़ सैम्सन थोड़ी देर तक चुप रही। उसने सोचा वह बी० के०

को कुछ न बताये लेकिन फिर बोली—"वही बैरिस्टर जो कभी कभी अकेले मेट्रो में आकर ठहरते थे। तुमसे मिलने भी आते थे····"

"हाँ वही····"

मिसेज़ सैम्सन का चेहरा उतर गया। लेकिन दूसरे ही क्षण उसने अपने चेहरे पर आने जाने वाले सभी भाव छिपा लिये। उसने सारी उत्सुकता को जैसे पी लेना चाहा।

बी० के० थोड़ा शंकित हो गया। घबरा कर बोला—"क्या हुआ ?"

"कुछ तो नहीं" मिसेज़ सैम्सन ने कहा।

"नहीं कुछ बात है जो तुम मुझसे छिपाती हो····"

मिसेज़ सैम्सन कुछ नहीं बोली। उसने कहा—

"तुम्हारी बिल्लियाँ कैसी हैं ?····"

"एक ही बिल्ली थी····महीने भर से आना बन्द कर दिया है···· अभी पिछले महीने तक वह मेरे वार्ड के पास आकर रोती थी। रात-रात भर रोती रहती थी। लेकिन इधर उसने वह रोना भी बन्द कर दिया है। लगता है वह भी स्थिर और ख़ामोश हो गई है !

"और उसके बच्चे ?····"

"सुना है जेलर के घर पल कर बड़े हो गये हैं····काफ़ी अच्छे हैं····मैंने एक महीने हुये देखा था। जेलर की पत्नी के साथ वह होली में यहाँ आई थी····"

बात कुछ बहक गई थी। मिसेज़ सैम्सन फिर भी उसे समझाना चाहती थी। चाहती थी कि वह एक वकील करके मुक़दमा लड़े लेकिन बी० के० को उसमें कोई भी दिलचस्पी नहीं थी—"एक गुनाह से उपजी हुई ज़िन्दगी को इतना भी जीने का हक़ नहीं है डाली····ज़रूरत से ज्यादा जी चुका हूँ····"

मिसेज़ सैम्सन निराश हो चुकी थीं। उसने उसकी बात छोड़ दी। जब बी० के० ने उसके मोक़दमें की बात उठाई तो वह बोली—

"जो वकील मेरा मुक़दमा कर रहा है····ठीक ही तो है····उसमें ख़राबी क्या है·····"

"अच्छा वकील अच्छी तरह से झूठ-सच बोल सकता है—"

मिसेज़ सैम्सन को लगा जैसे बी० के० का सारा आवेग स्थिर हो गया है। वह मौन था। मिसेज़ सैम्सन ने फिर कहा—"तुम ज़मानत पर छूट सकते हो····तुमने कतल तो किया नहीं है···· सिर्फ़ क़तल को करवाने के जुर्म में ही तुम पकड़े गये हो·····"

"पता नहीं····इस बारे में भी मैं कुछ नहीं जानता·····"

"तुम्हें भी नहीं मालूम·····"

"मुझे भी नहीं मालूम·····" एक व्यंग्य की हँसी हँसते हुये बी० के० ने उसको उत्तर दिया। फिर बोला– "सुना है जिस दिन मैं जेल में आया हूँ उसी दिन कोई मटियानी भी जेल में आया····मैंने लोगों से पूछा। जो होलिया लोगों ने बताया उससे तो वह वही मटियानी लगता है लेकिन·····"

"लेकिन क्या·····"

"लेकिन मैं जैसे उसे बिल्कुल भूल गया हूँ····लोग कहते हैं कि वह बैसाखियों पर चलता है····उसके दोनों पैर साबित हैं, लेकिन कुचले हुये हैं·····"

"वह मटियानी नहीं होगा·····"

"कौन जाने····एक लंगड़े क़िस्म का आदमी मुझसे तनहाई में हवालात में मिलने आता था। अन्धेरे में मैं उसकी शकल नहीं देख पाता था····पर वह कहता था····मेरे बच्चे को पिता की ज़रूरत है····तुम पिता हो जाओ·····"

"तुमने क्या कहा ?"

"मैं क्या कहता····मैं नहीं जानता था कि जेलख़ाने में पिता भी बिकते हैं·····"

मिसेज़ सैम्सन ने कोई उत्तर नहीं दिया।

चलते समय जब बी० के० ने फिर कहा कि वह एक अच्छा वकील कर

ले और दुबारा उसने सिंघल बैरिस्टर का नाम लिया। मिसेज़ सैम्सन ने कहा –

"मिस्टर सिंघल अब इस दुनिया में नहीं हैं—"

—बी० के० जैसे चौंक पड़ा। आवेश में बोला—

"डाली····"

"मैं सच कहती हूँ····" डाली ने उत्तर दिया।

"तुम झूठ बोलती हो···अभी पन्द्रह दिन पहले उनका खत मुझे जेल में मिला है····उन्होंने अपने को मेरा वकील बनाने के लिये लिखा था···· मैंने उन्हें भी वही जवाब दे दिया जो तुम्हें दिया वे····जिंदा हैं····"

मिसेज़ सैम्सन ने अपना वैनेटी बैग खोला। उसमें से एक अखबार की कटिंग निकाली और दिखा कर बोली—

"इसे पढ़ लो····"

बी० के० उसे पढ़ने लगा। लिखा था····

"मिस्टर सिंघल ने कल रात आत्म हत्या कर ली। कारण कुछ नहीं मालूम। उनकी मेज़ पर एक खत मिला है जिससे पता चला है कि आत्म हत्या उन्होंने अपने हाथों से की है··· घर में तलाशी लेने पर न तो मिसेज सिंघल का पता चला और न कोई प्रमाण ही मिला ··"

बी० के० के हाथ से अखबार की कटिंग छूट कर गिर गई। उसके सामने ममता की तस्वीर नाच गई। ममता जिसने सिंघल के साथ विवाह किया था। बी० के० की समझ में नहीं आता था कि आखिर वह उसे छोड़ कर कहाँ गई। लेकिन तभी उसके दिमाग़ में ममता से अन्तिम मुलाकात के समय के शब्द गूँज गये—उसे लगा ममता शायद किसी में दिलचस्पी नहीं रखती। वह सिर्फ़ क़ीमत पहचानती है····"

मिसेज़ सैम्सन ने कहा— "लेकिन आत्म हत्या क्यों की मिस्टर सिंघल ने ?"

"पता नहीं····शायद ऊब गये होंगे"

"किससे····?" मिसेज़ सैम्सन ने पूछा।

शायद इसका जवाब बी० के० के पास भी नहीं था।

बी० के० सिर्फ़ चुपचाप सुनता ही रहा। बोला—"अपने से डाली....कभी कभी आदमी अपने से भी ऊब जाता है....सब रोशनियाँ गुल हो जाती हैं....चारों ओर एक अन्धेरा होता है जिसका वृत्त फैलते फैलते इतना फैल जाता है कि सिर्फ़ एक विन्दु भर रह जाता है और गहरे ही गहरे उतरता जाता है....उतरता जाता है...."

अभी बी० के० ने अपना वाक्य भी नहीं ख़त्म किया था कि वार्डर ने आकर कहा—"वक्त हो गया है...."

बी० के० ने एक बार वार्डर को देखा और दूसरी बार मिसेज़ सैम्सन को। मिसेज़ सैम्सन की आँखों में आँसू थे। बी० के० बिल्कुल पत्थर सा दृढ़ था।

वह दूर तक मिसेज़ सैम्सन को ग़ौर से देखता रहा। जाने क्यों भीतर का अवसाद और गाढ़ा होता जाता था।

●

दूसरा ख़त : एक ज़रूरत से ज्यादा ख़ूब सूरत औरत के नाम

•

[मरने के बहुत पहले]

सुन्दरता में एक रोशनी होती है लेकिन वह रोशनी अन्धा बना देती है! अन्धा आदमी महसूस करता है, देखता नहीं! मैं सिर्फ़ ज़िन्दगी को महसूस करता हूँ, देख नहीं पाता।"

C/o फ्लैट न० १.
ख्वाजा बिल्डिंग्ज़
मेरीन ड्राईव
बम्बई

तुम जहाँ भी हो यह ख़त तुम्हें मरने के पहले लिख रहा हूँ। मेरा विश्वास है कि तुम अभी ज़िन्दा होगी क्योंकि मरती वह चीज़ है जो दुनिया में किसी के काम आती है। तुम न तो आज से दस साल पहले और न आज किसी के काम आई हो और न आ सकती हो। इसलिये मेरा यह विश्वास है कि तुम अब भी ज़िन्दा ही होगी।

आज से दस साल पुराना पता ही मुझे याद है इसलिये उसी पते पर तुम्हें यह खत लिख रहा हूँ। अगर तुम्हें यह मिल जाय तो इसे पढ़ कर

किसी अखबार वाले को छापने के लिये दे देना। अगर न मिले तो भी जिसके हाथ में यह खत पड़े वह इसे छपवा दे। इस से मेरी आत्मा को शान्ति मिलेगी।

मुझे तुम से शिकायत है। शिकायत इस बात की कि तुम ने कभी भी यह जानने की कोशिश नहीं की कि मैं तुम्हारे बारे में क्या सोचता हूँ और कितना अकाट्य प्रेम मेरे मन में तुम्हारे लिये है। आज भी मैं शायद तुम्हें उतना ही प्यार करता हूँ। तुम्हें याद होगा मेरी तुम्हारी पहली भेंट एक सी० बीच होटल में हुई थी। तुम अकेली बैठी किसी का इन्तजार कर रही थीं और मैं खामोश बैठा हुआ समुन्दर की लहरें देख रहा था। होटल का वह हिस्सा जो समुन्दर में आधा लटका हुआ था उसी के बुर्ज पर हम बैठे थे। समुन्दर जितना परेशान था तुम्हारे चेहरे पर उतनी ही शांति थी। तुमने मुझे देखा और खामोश बैठी रही। मैंने तुम्हें देखा और जैसे मेरे मन की बरसों पुरानी प्यास बुझ गई। लेकिन प्यास के बुझने का अनुभव भी एकदम से इतना जला देने वाला होगा, यह मुझे पहली बार अनुभव हुआ।

मैं बम्बई अपनी उस माँ की तलाश में गया था जो मुझे एकदम निराधार छोड़ कर वहाँ चली गई थी। किसी ने बताया था कि वह मैरीनड्राईव के पास रोज शाम को अकेले ही मिलती है। वह युवक जिसके साथ वह भाग कर बम्बई आई थी उसे छोड़कर चला गया है। वह निराश्रित चुपचाप वहीं आकर बैठ जाती है। आस पास से गुज़रने वाले वृद्ध उसके रूप में छिपे इतिहास को देखकर द्रवित हो जाते हैं और कुछ न कुछ दान दे जाते हैं। वही उसका आधार होता है।

आज एक महीना हो गया है। मैं रोज उसी की प्रतीक्षा में रहता हूँ और शाम रोशनी जलने के समय तक पूरी मैरीनड्राईव की सड़क पर उसको ही ढूँढ़ने की चेष्टा करता हूँ। हर अजीबो ग़रीब शक़ल को पहचानने की कोशिश करता हूँ। अक्सर लोग मेरे इस हठात् प्रयास को ग़लत समझने लगते हैं। मुझे इस तरह देखने लगते हैं जैसे मैं कोई उचक्का या उठाई-

गीर हूँ। दर्द भी मेरा ऐसा है जिसे मैं हर किसी से कह भी नहीं सकता। दुनिया मेरा ही मज़ाक़ उड़ाती अगर मैं कहता कि मैं अपनी माँ को ढूँढने आया हूँ....ऐसी माँ को जो अपनी अधेड़ उम्र में ही एक लौण्डे के साथ भाग गई है। मेरी माँ के इस आचरण से लोग मेरे भविष्य का भी फैसला दे देते। मुझे उस घोषणा से कोई डर नहीं था लेकिन में जानता हूँ कि इस से मेरी समस्या नहीं सुलझेगी। लोग, या तो मुझे पागल समझेगें या चोर।

और महीने भर बाद ऊबकर थक कर मैं उस दिन एकदम पराजित होकर उस होटल में गया था। गर्म चाय की एक प्याली मैंने पीकर समाप्त की कि सहसा ही तुम मुझे दीख पड़ी। मैंने इतना ज्यादा सौन्दर्य पहले कभी देखा ही नहीं था। एक अजीब रूप और आभा मण्डल था तुम्हारे चारों ओर····मैंने चाहा कि तुम से कुछ पूछूँ लेकिन जाने क्यों मेरा साहस नहीं हुआ।

सहसा होटल में आरकेस्ट्रा शुरू हो गया। अजीब कल्पना लोक की भव्य झिलमिलो से युक्त वाद्य संगीत.... स्वप्निल आभाओं से युक्त, लगता था जैसे मैं इस संसार में नहीं, किसी अनन्य कल्पना लोक में बैठा हुआ हूँ....कल्पना लोक जिसमें एक गन्ध-स्पर्श सहसा छू कर रोमांचित करके चला गया। एक अव्यक्त वेदना छू कर निकल गई— ऐसी वेदना जिसके मधुर स्पन्दन में जीवन की अनेक स्थितियाँ एक साथ मेरे मन के ऊपर से बिछल गईं और उस बिछलन में केवल एक ही आधार था और वह आधार तुम थीं····केवल तुम····। मैंने चाहा तुम स्वयम् मुझ से कहोगी लेकिन जब मैंने दुबारा काफ़ी मंगाई और प्याली तुम्हारी ओर बढ़ाई और तुमने केवल हँस कर पी लिया तो मेरी प्रसन्नता की कोई सीमा ही नहीं रही। मैंने उत्सुकता वश कुछ पूछना चाहा लेकिन फिर जैसे मुझे से बोला ही नहीं गया और तुम उठीं और चली गई।

दूसरे दिन मैं क्यों उसी होटल में गया, मैं आज तक नहीं समझ पाया। लेकिन तुम्हारा वहाँ पहले ही से होना मुझे जैसे रस दे गया।

तुम मुझे वहाँ अकस्मात मिल जाओगी, यह मैं नहीं जानता था। मुझे उसी दम लगा जैसे मैं एक दम छोटा नगण्य तत्वहीन अंश हूँ जिसका अस्तित्व तुम्हारे रूप के प्रकाश में विलय होता जा रहा है। तुमने अपनी पल्कें जब ऊपर उठाईं तो मैंने तुम्हारी पुतलियों में साफ़ साफ़ उस सागर की गम्भीरता देखी जो मुझे घण्टों से परीशान बनाये थी। मुझे लगा उसी गम्भीरता में, सागर के अनन्त विस्तार में एक बूँद सा कहीं मैं भी हूँ। पता नहीं यह मेरे मन की स्यात् कल्पना थी या तुम्हारे अपार सौन्दर्य का नितान्त मार्मिक प्रभाव, पता नहीं यह मेरी भावहीनता थी या तुम्हारी उदारता जो तुम उस सागर की हलचल को पृष्ठ भूमि बना कर उसके वातावरण में मुझे देखने का प्रयास कर रही थीं।

पता नहीं तुम मुझे देख रही थी या सागर को। लेकिन मैं इसको क्या करूँ---मैं तुम्हीं को देख रहा था। तुम्हें शायद नहीं मालूम मैं केवल तुम्हारे लिये ही महीनों उस होटल में जाता रहा था। तुम भी ठीक निश्चित समय पर वहाँ आती और फिर अकस्मात उस मोटे कुरूप भद्दे आदमी के आते ही उसे हँस कर मेज पर बैठाती थीं। चाय पीने के बाद उठती थी और फिर उसके साथ बाहर खड़ी मोटर में बैठ कर चली जाती थी।

मुझे उस व्यक्ति के बारे में उस समय तक कुछ भी नहीं मालूम हो सका जब तक कि उस दिन अनायास पुलिस वालों ने हमला नहीं किया और तुम एक दम मेरे निकट आकर बैठ नहीं गई। मुझे याद है मेरे चेस्टर में तुमने एक पैकेट डाल दिया था और हँस कर कहा था--"थैंक्यू"

मैं अवाक् सा तुम्हें देखता रह गया था। चाहते हुये भी मैं तुम्हारे उस उपहार को वापस नहीं लौटा पाया था। पुलिस वालों ने होटल में पहुँचते ही तुम्हारी और उस मोटे भद्दे आदमी की तलाशी ली थी। तुम्हारी कार भी पुलिस ने छान डाली थी और और फिर उदास होकर वापस चली गई थी।

तुम्हें शायद नहीं मालूम कि उस समय मेरी क्या दशा थी मैं।

जानता था कि वह भद्दा और कुरूप आदमी शायद उतना ही क्रूर और कठोर है जितना कि देखने में लगता था। मेरे जी में इस घटना के पहले भी कई बार यह आया था कि मैं तुमसे कहूँ कि तुम्हारा उसके साथ रहना शोभा नहीं देता। लेकिन मुझमें यह कहने का साहस भी कैसे होता क्योंकि उसके पहले तुमने मुझे कोई ऐसा संकेत नहीं दिया जिससे मैं यह अनुमान लगा पाता कि तुम किसी भी अंश में मुझसे या मेरे व्यक्तित्व से शतांश भी साम्य रखती हो। मुझे लगता था जैसे कि मैं सूर्य के चारों ओर वृत्ताकार में घूमने वाला वह लघुकण हूँ जिसकी अपनी कोई गति होती ही नहीं--जो केवल उस सौर ज्योति के सामने मात्र मुग्ध रहता है और बस।

तुम्हारे उस उदात्त सौन्दर्य के साथ सहज निरीह पर-पीड़ावादी प्रवृत्ति का परिचय पहली बार मुझे उस समय मिला था जब तुमने केवल अपने सुख के लिये अपनी मोटर से उस निरीह पिल्ले को कुचल दिया था जो सहज ही कुछ दानों के लालच से कोलाबा के पास सड़क पर आ गया था। चाहे तुम मानो या न मानो, उस पिल्ले के कुचल जाने के बाद भी तुम्हारे चेहरे पर कोई शिकन नहीं पड़ी थी। यह नहीं कि मैं कुत्ते-बिल्लियों को आदमी से ज्यादा महत्वपूर्ण समझता हूँ, पर मैं इसको क्या करूँ कि जहाँ तक दुर्घटना का प्रश्न है वह आदमी से लेकर कुत्ते तक पर समान रूप से गुज़र जाती है और कुत्ता जब दुर्घटना का शिकार होता है तो उसकी जगह केवल "मौत" को रख कर मैं अपनी और आदमी की कल्पना कर लेता हूँ। यह कल्पना-शक्ति ही मुझे एक प्रकार से इतनी पीड़ा जनक मालूम पड़ती है कि मैं इससे सदैव कतराना चाहता हूँ पर मैं अपनी इस कृत्रिम कल्पना से जानते हुये भी मुक्ति नहीं पा सकता। तुम्हें याद होगा जब कुलाबा से हम लोग स्वीमिंगपूल तक गये थे। तुमने अपने सारे कपड़े उतार दिये थे और केवल एक स्वीमिंग जर्सी पहन कर वहीं नहाने चली गई थी। मैं कार पर ही बैठा रहा था।

और जब मैंने तुम्हारा जिस्म--नङ्गा जिस्म--पहली बार उस

स्वीमिंग जर्सी में देखा था, तुम्हारे लहराते हुये बेलौस बाल हवा में कुछ इस तरह उड़ रहे थे जैसे वह संसार के तमाम बन्धन के रिश्तों को तोड़ कर अभी-अभी स्वतन्त्र हुये हों। लेकिन, डियर, इसको क्या करूँ, जब मैं तुम्हारे इस अबाध रूप और सौन्दर्य को देख रहा था तभी मुझे उस कुत्ते की चीख़ भी सुनाई पड़ी थी जिसकी निरीह लाश सड़क पर लावारिस की तरह पड़ी होगी और जिसकी सूचना शायद मेरे सिवा किसी और को न हो····

लेकिन यह सब कहीं बहुत बड़ा झूठ और मात्र सतही घटना ही है। मैं अगर आदमी और कुत्ते में कोई अन्तर नहीं जान पाता तो इसमें दोष मेरा ही है। कहीं कुछ कमी है मुझ में-- कहीं कुछ ग़लत है।

तुम्हें याद होगा, उसी दिन तुम मुझे मैरीन ड्राईव के ख्वाजा बिल्डिंग्ज में ले गई थी—उसी फ्लैट पर जिसपर तुम्हारी अन्धी बहन और रोगी पिता रहते थे। तुम्हारे पहुँचते ही वह दोनों सकते में आ गये थे। यह नहीं कि तुमने मेरे पहुँचते ही उनको कुछ कहा हो, समझाया या डाँटा हो। पर उस घुटन के वातावरण से मैंने यह निष्कर्ष तो निकाल ही लिया था कि तुम इनकी नसों में बहनेवाले ख़ून की एक-एक बूँद का हिसाब रखती हो और उनको हर समय यह याद भी दिलाती रहती हो कि तुम्हारा एक प्रकार का आभार उन पर है और इस नाते उन्हें कम से कम दिन में उतनी ही बार कृतज्ञ होना चाहिये जितनी बार कि तुम घर में आओ जाओ। शायद तुम्हें यह डर था कि कहीं तुम्हारी अन्धी बहन—जो निश्चिय ही तुमसे भी ज्यादा सुन्दर थी तुम्हारे अधिकारों को छीन न ले। आज जब मैं तटस्थ होकर उन सारी चीजों को देखता हूँ तो मुझे स्पष्ट दीख पड़ता है कि निश्चय ही तुम्हारी मनोवृत्ति में कहीं यह भाव ज़रूरत से ज्यादा गम्भीर रूप में वर्तमान था। शायद तुम्हारे पहले आत्म विश्वास की प्रतिछाया मुझे नितान्त खोखली और अर्थहीन लगी थी। मुझे लगा था कि तुममें मानवीय रिश्तों के प्रति कोई मोह और आग्रह नहीं है। ज़िन्दगी को तुम महज़ एक उक्ति के रूप

में जीना चाहती हो—ऐसी उक्ति जिसमें अनुभूति है ही नहीं।

और, इसका पहला प्रमाण मुझे उस दिन मिला था जब तुम्हारी अँधी बहन मेरे पास रोती हुई आई थी और उसने कहा था—"इस ज़िन्दगी में मरने की भी सुविधा आदमी को नहीं है...मैं क्या करूँ...दीदी समझती है कि मैं उस पर बोझ हूँ।"

और मैंने देखा था कि वह अनन्त पीड़ा से विक्षिप्त थी। उसके रोम-रोम से जैसे आत्म-वेदना फूटी पड़ रही थी। उसने मुझे यह भी बताया था कि उसके पेट में एक ट्यूमर जैसी चीज है जिसे लोग समझते हैं कि बच्चा है। चार महीने तक पिता और बहन ने मुझे घृणा किया है। कल मेरा आपरेशन है। उसके चेहरे पर एक प्रसन्नता थी। वह मना रही थी कि आपरेशन के साथ-साथ यदि उसकी मौत भी हो जाती तो क्या ही अच्छा होता। जब वह मौत की कामना कर रही थी तो लग रहा था जैसे उसकी आत्मा अत्यन्त उत्फुल्ल हो रही थी। उसने सहज हर्ष से कहा था—"मौत भी मुक्ति होती है क्या ?"

मैं चुप था। मेरे सामने इसकी पीड़ा का अधिक भयानक रूप उस समय प्रस्तुत हुआ जब वह बार-बार मौत की बात करती और फिर सिसकने लगती।

दूसरे दिन उसने मुझे अस्पताल में बुलाया था। तुमको शायद वहाँ आने का समय नहीं मिला। आपरेशन के बाद जब वह वार्ड में भेजी जा रही थी तो वह चीख़-चीख कर कह रही थी—"नहीं....नहीं....नहीं....मैं मरना चाहती हूँ....मैं मौत चाहती हूँ....मौत....मौत...."

और ममता वह मरी नहीं। पता नहीं वह आज भी ज़िन्दा है या नहीं। लेकिन, ममता तुम्हारे व्यक्तित्व की असली पहचान मुझे उस दिन मेट्रो होटल में मिली जब तुमने बिल्कुल उपेक्षा की भावना से कहा था—

"मैं नहीं जानती....वह लोग कहाँ हैं...."

सच मानो ममता मुझे लगा था कि जितना भी सौन्दर्य तुम्हें मिला है वह सब निरर्थक है। मैं समझ नहीं पाया कि तुम चाहती क्या हो ?

शायद तुम्हें अपनी ही रक्षा चाहिये थी····

और आज अभी-अभी मिसेज़ सैम्सन ने मि० सिंघल की सूचना पढ़वाई है। मैं नहीं जानता उन्होंने क्यों आत्म-हत्या की। लेकिन ममता, यह सच है कि उसमें तुम्हारी उपेक्षा और तुम्हारा विकृत व्यक्तित्व अवश्य मिला होगा। काश कि मैं यह कल्पना कर पाता कि सौन्दर्य में एक जन्म-जात विष होता है····उसमें एक हत्या करने की परपीड़ा पहुँचाने की प्रवृत्ति होती है····तुम शायद नहीं मानोगी····चूँकि मैं तुम्हें अत्यन्त सुन्दर व्यक्तित्व के रूप में देखता हूँ इसलिये सौन्दर्य की मेरी धारणा—सम्पूर्ण धारणा तुम में आरोपित करने में मुझे असफलता मिलती है—मैं पंगु हो जाता हूँ ममता····बिल्कुल पंगु।

मैं समझता था सौन्दर्य में केवल उदात्त और उत्सर्ग की भावना होती है। नारी का आज भी वही श्रद्धामय रूप मेरे सामने है। मैं नतशिर होकर उसे अपना समस्त समर्पित करने को आज भी तत्पर हूँ क्योंकि नारी—माँ है, सृजन की असीम पीड़ा को वहन करने वाली माँ, माँ जिसमें जीवन का स्नेह, जीवन का विकास, जीवन की समस्त संवेदनात्मक स्थितियाँ एक साथ सम्बद्ध होकर विकसित होती हैं····मैं तुम्हारे अपूर्व सौन्दर्य के प्रति इसीलिये श्रद्धावान था····मुझे लगता था मैं उस सौर आभा को देख रहा हूँ जिसके चारों ओर एक ब्रह्माण्ड, एक सम्पूर्ण सृष्टि ही गति मान है। लेकिन आज मुझे लगता है सृजन की यह कल्पना और उसमें निहित मानवीय संवेदना से शायद तुम वंचित हो—सच ममता मैं समझ नहीं पाता····कमी मुझ में है या तुम में····ग़लत मेरी धारणा है या तुम्हारा अस्तित्व····

मैं आज यह निश्चित रूप से जानता हूँ कि तुम आज जहाँ कहीं भी होगी केवल अपने सुख सुविधा के लिये ही जीवित होगी। शायद तुम्हें मालूम नहीं है ममता····उत्सर्ग में तपे हुये दर्द की भी एक सुन्दरता होती है····उसका भी एक आकर्षण होता है····उसकी आत्मा में पारदर्शिता होती है····जो एक दूसरे प्रकार का प्रभाव डालती है····।

और उस दिन जब अपनी 'माँ' को ढूँढते हुये मैंने उस होटल में तुम्हें देखा था तो लगा था जैसे मांसल सौन्दर्य में भी पवित्रता होती है····क्षण भर के लिये मैं कच्चे लोहे को फ़ोलाद समझ बैठा था····एक क्षणिक आकंषरण को जीवन की उपलब्धि समझ बैठा था····माँ से भी मेरी भेंट उसी मैरीन ड्राईव पर ही हुई। उनके साथ एक अजनबी आदमी था। मैं जब माँ की तरफ बढ़ा था तो एक साधारण जुगुप्सा के साथ उसने मुझे देख कर कहा था—"तुम····और यहाँ"—मैं श्रद्धानत था। तुम मेरे साथ थीं। माँ ने एक बार तुम्हें देखा था। फिर कुछ आवेश में बोली थीं—

"मेरा रास्ता रोक कर क्यों खड़े हो····"

शायद ममता तुम भी यही सोच रही होगी। लेकिन मैं कैसे बताता—मैं किसी के रास्ते में खड़ा नहीं हो सकता न तुम्हारे, न माँ के, न मिसेज़ सैम्सन के, न और किसी के। मैं तो केवल रास्ता ढूँढ़ने में लगा था। माँ के इस वाक्य ने जैसे मेरा उत्साह ठण्डा कर दिया था। मुझे लगा था कि जैसे एक बर्फ़ की सलाख सी मेरे छाती में चुभती जा रही है और वह आर पार बिंध कर मुझे ठण्डी बनाती चली जा रही है।

लेकिन आज मुझे सब से ज्यादा तकलीफ़ हुई है। मि० सिंघल की मौत ने जैसे मेरी आँखें खोल दी है—सच ममता इस दुनिया में शायद कोई भी अपना नहीं होता है। सब एक तेज़ गति से अपने ही इंगित पर चलने वाले हैं····आदमी और ज़िन्दगी दोनों में से कोई भी अपना नहीं होता—शायद सब अलग-अलग हैं····अकेले हैं···अपनी-अपनी यात्रा में लीन डूबे हुये, अकेले निर्मम, निरीह····

और तुम महज़ मौत का बहाना हो बस—

तुम्हारा
बी० के०।

मि० अनुज एक साँस में सारा सब कुछ पढ़ गये थे। उनकी आँखें

जैसे इतना पढ़ने के बाद कुछ चुन्धिया रही थीं। चेहरा उतरा हुआ था। उन्हें लगता था कि यह बी० के० का व्यक्तित्व नहीं है। इसमें बहुत कुछ कल्पना है। मीनाक्षी ने किसी के साथ न्याय नहीं किया है। ममता का व्यक्तित्व कभी ऐसा हो ही नहीं सकता। जो इतनी सुन्दर होगी उसमें इतना विष संभव ही नहीं है। यदि यह सच है तो बी० के० ने नारी को पहचाना नहीं। यदि यह गलत है तो मीनाक्षी ने ममता और बी० के० दोनों को छोटा दिखाया है।

अभी वह इसी उलझन में डूबे थे कि सहसा राज, सैम्यूअल और उनके साथ एक और महिला ने प्रवेश किया। मि० अनुज ने सबको बैठने का संकेत किया। सब लोग बैठ गये। नयी महिला को देखकर के मि० अनुज़ के मन पर का सारा बोझ जैसे उतर गया। चेहरे पर एक हल्की सी ताज़गी दौड़ गई। उन्होंने काफ़ी का आर्डर दिया और चुपचाप कनखियों से दमयन्ती के सौम्य और गंभीर चेहरे को देखने लगे। राज ने कहा—

"यह मिसेज़ लीला दमयन्ती हैं····मेरी बहुत पुरानी मित्र····इन दिनों इलाहाबाद में सहायक एम्पलायमेन्ट आफ़िसर होकर आई हैं····"

मि० अनुज को लगा जैसे कोई आशीर्वाद फलीभूत हो गया है। बोले—

"आप से मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई।"

"होप यू विल रिमेन सो····" सैम्यूअल ने कहा। मिसेज़ लीला दमयन्ती हँसकर रह गईं। राज बोला—

"बी० के० की एक डायरी आपके पास है····दर असल उस डायरी को इनके पति डा० दीना नाथ होमियोपाथ ने उनके इन्सौमनियां को ठीक करने के लिये लिया था। डायरी पढ़ने के बाद डा० दीना नाथ ने कह दिया था कि यह इन्सौमनियां नहीं यह आत्म-हत्या के लक्षणों का संग्रह है····"

मि० अनुज को पहले राज की इस बात का विश्वास ही नहीं हुआ।

थोड़े खिन्न होकर बोले—"पहले लोग नब्ज़ देखकर यह तक बता देते थे कि मरीज़ ने एक महीने पहले क्या खाया था; और अब ऐसे भी डाक्टर हैं जो किसी की डायरी पढ़कर बता दे सकते हैं कि मरीज़ रोग की मौत मरेगा या आत्म-हत्या करके मरेगा····"

"जी हाँ होमियोपैथी में मर्ज़ नहीं मर्ज़ों की दार्शनिक व्याख्या की जाती है····उस दार्शनिक व्याख्या से ही रोग का उपचार होता है····" श्रीमती लीला दमयन्ती ने कहा ।

"सर्टेनली ? ह्वाई नाट····ए डिज़ीज़ मस्ट हैव ए काज़ ऐण्ड टु नो ए काज़ सिस्टेमेटेकेली एण्ड मेथाडेकिली इज़ फिलास्फी····।"

मि० अनुज को यह बात सुनकर थोड़ी खीझ हो गई । आवेश में बोले—"आप लोगों को बी० के० के बारे में खाक़ पत्थर भी नहीं मालूम है ? आप जानते हैं उसके प्रसंगों को ?"

"मैं बी० के० के बारे में सब कुछ जानती हूँ····और उसकी निराशा का कारण भी जानती हूँ····नो वोमेन उड हैव लाईक-यू ह्वैय····ही वाज़ एक़ेज्ही वीईंग····।"

मि० अनुज को दमयन्ती की बात कुछ बुरी लगी । लेकिन वह उस से बहस इसलिये नहीं कर सकते थे क्योंकि उन्हें भय था कि कहीं वह बुरा न मान जाय । फिर भी उन्होंने पूछा—"आप जानती है यह ममता नाम की महिला कौन थी····।"

दमयन्ती मि० अनुज की बात सुनकर थोड़ा मुस्कराई । बोली—

"आप ममता को नहीं जानते हैं····मुझ से जानना चाहते हैं उसके बारे में····उससे ज्यादा सुन्दर और शरीफ़ औरत आपको मिलेगी नहीं···· जितनी ही रूपवती उतनी ही····।"

" उतनी ख़ून की प्यासी, माँ, बाप, बहन का तिरस्कार करने वाली, मिस्टर सिंवल जैसे पति को आत्म हत्या पर वाध्य करने वाली और बी० के० जैसे भावुक को सदैव ग़लत ससझने वाली····।"

"बस आपकी सारी उदारता का पता चल गया मि० अनुज....आप

कहीं से एक इंच भी आधुनिक नहीं हैं····वही दक़ियानूसी ख्याल हैं आपके····वही माँ, बाप, बहन, पति····आखिर यह रिश्ते हैं क्या ?"

"ये रिश्ते मानवीय हैं दमयन्ती जी····।"

"मानवीय ? क्या होता है····यह भी मुझे बड़ा ही खोखला शब्द लगता है····उतना ही खोखला जितना माँ, बाप, बहन पति····।"

अब तो मि० अनुज जैसे चक्कर में पड़ गये।

राज भी थोड़ा कुनमुनाया। उसने पाईप जलाया। मि० सैम्यूअल ने सिगार की गर्द झाड़ी और फिर स्थिर होकर बैठ गये। उनके भी समझ में नहीं आता था कि दमयन्ती कहना क्या चाहती है।

बात को काटते हुये मि० सैम्यूअल ने कहा—

"इफ़ यू एकस्ट्रीमिनेट दीज़ रिलेशन्स ह्वाट रिमेन्स देन।"

"विशुद्धता बचेगी, पक्षधरीय जीवन समाप्त होना चाहिये।"

"विशुद्धता का क्या मतलब" मि० अनुज ने पूछा।

"डेस्ट्यूरेटी कैन नेवर ब्रीड प्योरीटी" सैमुअल बोला।

"देयर इज़ नथिंग लाईक इम्प्योर····" दमयन्ती ने कहा।

राज जैसे इस प्रकार के सूत्रों को बकवास समझ रहा था। व्यंग्य की हँसी हसते हुये बोला - "दमयन्ती जी मुझे आप की परिभाषा से कोई शिकायत नहीं है लेकिन मुझे लगता है आप लोगों का आन्दोलन ऐन्टी लाण्ड्री डिमान्स्ट्रेशन में बदल जायगा····क्योंकि वही इम्प्रापार प्यार होता है।"

मि० अनुज की समझ में यह मज़ाक़ नहीं आया। अपना फ्लैट सा चेहरा लिये वह खामोश बैठे रहे। कभी उन्होंने मि० सैमुअल की ओर देखा और कभी मि० राज की ओर। परकीयावाद का वह सिद्धान्त जिसके अनुसार श्री अनुज ने प्रेमिका और पत्नी का बारीक अन्तर निकाला था उसके पीछे जो पत्नी को सम्पत्ति के रूप में केवल अपने लिये सुरक्षित रखने की भावना थी, वह तो दमयन्ती के विवेचन से खण्डित हो ही गई, साथ ही उनकी वह आधुनिकता जिसे वह वज्र देहाती

सिद्धान्त को नये कलेवर में रखना चाहते थे वह भी खण्डित हो गया। उन्हें लगा पति पत्नी का रिश्ता भी खटाई में पड़ा जा रहा है । बहुत सोचकर नितान्त मार्मिक मुद्रा में बोले—"आप व्यावहारिक नहीं हो पा रही हैं दमयन्ती जी"

"व्यावहारिक होने का अर्थ क्या सुविधा जनक होता है। मैं उस किसी भी आदर्श को मानने के लिये तैयार नहीं हूँ जो केवल सुविधा के लिये बनाया जाता है····यह सारे रिश्ते व्यवहार के लिये बनाये जाते हैं और फिर वे लदते-लदते लद जाते हैं····"

दमयन्ती का यह प्रहार भी मि० अनुज की पकड़ के बाहर था। भीतर भीतर वह तिलमिला रहे थे और अगर कामायनी का श्रद्धा सर्ग वह न पढ़े होते, उनका ज्ञान केवल "क़िस्सा तोता मैंना" तक होता तो वह तड़प कर कहते—

"तू डायन है, चुड़ैयल है, अरी पिशाचनी तेरी जीभ खीच लेनी चाहिये····ढोल गँवार शूद्र पशु नारी—तुलसी दास जो ने ठीक ही कहा था····"

लेकिन यदि वह एक बार भी दमयन्ती से क्रुद्ध होकर बोलते तो प्रो० राज उन्हें सचमुच चबा जाता। ललकार कर कहता—"कहिये महाशय जी आप की वह आन्तरिक सुकुमारता अब कहाँ है।" शायद सैम्यूअल भी उसी तीव्रता के साथ उन पर टूट पड़ता। उनसे कहता "जेन्टेलमैन, व्हेयर इज़ योर शिवरलस करेज।"

दमयन्ती के लिये अधिक कहने की कोई आवश्यकता नहीं थी। वह जानती थी कि उसकी यह कटु आलोचना न तो राज को ही अच्छी लगीव होगी और न सैम्यूअल ही को रुचिकर लगा होगा। सैम्यूअल को वास्त में अच्छा नहीं लगा था। वह कुछ नम्र हो कर ही बोला—

"लेकिन अगर यह रिश्ते एक दम से खत्म कर दिये जायँगे तो यह दुनिया चलेगी कैसे ?"

"दुनिया के चलने के लिये क्या रिश्ते ज़रूरी है ?" राज ने यह प्रश्न महज़ शरारत भरी मुस्कान से पूछा ।

"रिश्ते तो रहेंगे ही....हो सकता है उनकी प्रकृति नितान्त क्षणिक हों....उसमें कोई गहन सार न हो....वन हैज टु एक्ट ऐज़ हसबैण्ड एण्ड द अदर एन् वाइफ़ इफ़ नाट ऐज एडम एण्ड ईव...."

मि० अनुज को जैसे कुछ साँस लेने को आधार मिल गया । उन्होंने कहा—"बी० के० के जीवन की सब से बड़ी ट्रेजेडी यही थी....शायद उसे क्षण भर के लिये भी इन रिश्तों का ममत्व नहीं मिल सका"

"ममत्व न सही, ममता तो उसे मिल ही गई थी....समह्वेयर ही वाज़ राँग...."मिस्टर राज ने कहा !

"लेकिन वह ममता को क्षण भर के लिये नहीं वह तो शाश्वत रूप से श्रद्धा की ही प्रतिमा बना कर रखना चाहता था...."

दमयन्ती ने यह वाक्य व्यंग्यपूर्ण मुद्रा में कहा ।

सैम्यूअल चुपचाप सुनता रहा । काफ़ी का दूसरा दौर भी चल पड़ा । लोगों ने उस जाड़े की रात में काफ़ी का आनन्द तो लिया ही साथ ही इस कागगोष्ठी का भी रस और गहरा होने लगा ! सैम्यूअल ने कहा—

"बी० के० की डायरी में क्या यही नाते रिश्ते की बाते हैं या कुछ और...."

"कुछ और गहरी और तीखी बातें हैं" दमयन्ती ने कहा ।

"लेकिन वह आप के पक्ष में है या मि० अनुज के ?"

"शायद मि० अनुज ही के पक्ष में जायँ लेकिन तटस्थ होने पर उसमें से वही निष्कर्ष निकले गा जो मैं कहती हूँ...." श्रीमती दमयन्ती ने कहा !

मि० अनुज परास्त हो चुके थे । उनके सामने जैसे इस कथन का प्रतिवाद करने का कोई आधार ही नहीं शेष था । उनका दृढ़ मत अब भी यही था कि पत्नी पत्नी ही है और प्रेमिका परकीया ही हो सकती

थी। वह यह मानने के लिये शायद कभी तैयार ही नहीं थे कि कभी स्वकीया भी परकीया हो सकती है। साथ ही वह कभी यह भी नहीं मान सकते थे कि नारी का रूप कभी भी श्रद्धा के अतिरिक्त भी कुछ हो सकता है। चलते चलते उन्होंने एक मार्मिक वाक्य कहा—

"बी० के० जिन भी स्त्रियों के सम्पर्क में आया होगा उन्हें पत्नी ही बनाने की बात उसने सोची होगी····इसलिये उसे इतना विषाद भोगना पड़ा····"

राज मि० अनुज के इस वाक्य को सुनकर हँस पड़ा। कुछ विस्मित मुद्रा में बोला—"बातें चाहे जो हों, काम मि० अनुज का ही फ़ार्मूला आयेगा····"

सब लोग हँस पड़े। धीरे-धीरे काफ़ी हाऊस की बत्तियाँ गुल होने लगीं। सब लोग काफ़ी हाउस से निकल पड़े।

काफ़ी हाउस
की तीसरी शाम



"मैं भी इन्सानियत में विश्वास करता हूँ इसलिये मैं इन जाली दवाओं की फ़ैक्टरी का पक्ष लेता हूँ अगर इनका पक्ष न लूँ तो न जाने कितने भूखों मर जायँ···मरने वालों का क्या ? वह तो हर हालत में मरेंगे ही।"

"फलेर आसा करै नासा,
फूलेर मधुमान करे से
सेई रसिकजना"

•

बुध : २६ अगस्त १६६२

•

मिस्टर भल्ला, चतुर्वेदी और मि० खन्ना आज काफ़ी हाउस पहले ही आ गये थे। अनुज शर्मा को आने में देर हुई। आ तो समय ही से जाते बेचारे लेकिन रास्ते में ठीक ह्विवेट रोड और जान्सेन गंज की क्रासिंग पर दो बिल्लियों के लगातार लड़ने से ट्राफिक जाम हो गया था। एक कार में संभ्रान्त महिला की कार से कूद कर एक बिल्ली बाहर चलीगई थी। दूसरी बिल्ली जो वाच—कम्पनी से निकल कर सड़क पार करके बाहर जाना चाहती थी उसने कार से निकलते इस बिल्लो को देख लिया था। शायद शहजादियों की तरह उसका रहना उसे पसन्द नहीं आया। वह देखते ही उस पर टूट पड़ी! दोनों की लड़ाई का परिणाम था ट्राफिक जाम। मि० अनुज शर्मा की साईकिल भी इसी में रुकी थी। मि० अनुज खड़े-खड़े साईकिल पर टँगी हुई दशा में उस चिकनी रोओं वाली कबरी बिल्ली की कोमलता और कार में बैठी हुई इस नव-यौवना युवती की की बोटनिक जैसे मेक-अप को देखने में मुग्ध थे। उन्हें बी० के० का वह पत्र भी याद आ रहा था जो उसने आगरा जेल में रहने वाली बिल्ली के नाम लिखा था। घटना अभी ताजी थी इसलिये बिम्ब भी नया था।

यह सत्य है कि उस जंगली स्वतन्त्र बिल्ली ने नाजों में पली खाट वाली बिल्ली को मार डाला लेकिन उसकी मानसिक स्थिति उन समस्त चित्रों से ओत प्रोत था।

काफो हाउस पहुँचते ही मि० भल्ला ने कहा—"आज आपकी मेज़ को हम लोगों ने कब्जा करके अपना बना लिया है"

"आपकी यह मेज़ हो ही नहीं सकती....यही अकेली मेज़ ऐसी है कि जिस पर जिस क्षण मैं पहुँचता हूँ उस क्षण से ही वह मेरी ही हो जाती है...." मि० अनुज ने कहा।

"यह तो आपकी ज्यादती है....हम अब जो यहाँ इतनी देर से बैठे हैं, उन सब का अस्तित्व ही आप मिटाये दे रहे हैं...."

"मैं सत्य कह रहा हूँ जिस किसी भी चीज़ को मैं जीवन में स्वीकार कर लेता हूँ उसे अन्त तक अपनी ही बनाकर रखता हूँ....यह मेज़ भी उन्हीं में से एक है...."

"यानी आप मेज़ से भी इश्क़ फ़र्माते हैं...."

"अगर आप इसे इश्क़ कहते हैं तो कहिये मुझे कोई आपत्ति नहीं है...."

मि० भल्ला को इस चीज के विरोध में भी कुछ नहीं कहना था। वह कुछ सोचने लगे। इतने में मि० अनुज ने कहा "यह बात केवल मेज़ ही तक सीमित नहीं है....इसका सम्बन्ध हर चीज से है....मैं हमेशा इसी को स्वीकार करता हूँ....मैं अपनी जिन्दगी में पहली बार अपर इण्डिया से दिल्ली गया था। तब से आज बीस साल हो गये हैं मैं अपर इण्डिया ही से दिल्ली जाता हूँ।"

जितने लोग बैठे थे सब चकित होकर मि० अनुज को देख रहे थे। परकीयावाद के मतावलम्बी धीरोद्धात्त नायक के विरोध में खलनायक जैसे लगने वाले मि० अनुज का यह 'पतिव्रता' रूप जैसे सब को विस्मित करने में पर्याप्त था।

नित्य की भाँति आज भी मीनाक्षी के आने में देर हुई थी। अकेली

कार ड्राइव करते हुये मीनाक्षी ने काफी हाउस में प्रवेश किया और अन्दर मि० अनुज की मेज़ पर बैठ गई। एक लम्बी सांस लेकर, मेज़ पर एक कापी रखते हुये बोली—"यह रही बी० के० की डायरी। मेरी मित्र दमयन्ती के पास यह डायरी थी। जेल जाने के पहले तक की मानसिक स्थिति का परिचय तो मात्र इससे मिल जाता है....."

मि० खन्ना उलट पलट कर उस डायरी के पृष्ठों को देखने लगे। अभी थोड़ा ही पढ़ा होगा कि उनके चेहरे पर कई रंग आने जाने लगे। कापी को मेज पर रख कर मि० खन्ना कुछ सोचने लगे। तभी मि० चतुर्वेदी ने कहा—

"मेरा ख्याल है मि० अनुज को भी एक गवाह के रूप में हमें रखना चाहिये और इनका भी बयान ले लेना चाहिये....."

मि० खन्ना हंस पड़े। बोले—"प्रेम के दर्शन पर हमें कोई नई थीसिस नहीं लिखनी है मि० चतुर्वेदी....हमें केवल इतना ही साबित करना है कि बी० के० का दिमाग़ ख़राब था....वह पागल था उसने फाँसी लगाने वाले की हत्या की और खुद भी आत्म-हत्या करके मर गया....."

"इससे यह बात कैसे साबित होगी कि फाँसी की सज़ा कार आमद करने वाले अफ़सरों की कोई ज़िम्मेदारी नहीं है....."

"यह मेरे ऊपर छोड़ दीजिये....आगे मैं साबित कर ले जाऊँगा.... लेकिन....."

" लेकिन क्या....?" मिस्टर भल्ला ने कहा।

" लेकिन इस डायरी से जो बात हम साबित करना चाहते हैं वह नहीं साबित होगी....."—मि० खन्ना ने कहा।

"आप का मतलब यह है कि यह डायरी एक्ज़हिबिट के रूप में न पेश की जाय....."

"जी....."मि० खन्ना ने दुहराया।

मि० अनुज जो अभी तक ख़ामोश बैठे-बैठे उस डायरी को नितान्त ललचाई दृष्टि से देख रहे थे सहसा चौंक पड़े। बोले—

"आप मुझे इस डायरी को पढ़ने के लिये दीजिये....."

"जी नहीं....यह डायरी आप को उस समय तक पढ़ने को नहीं मिलेगी जब तक कि मोक़दमें का फ़ैसला नहीं हो जायेगा।"

"मुझको भी नहीं ?" मीनाक्षी ने पूछा।

"जी आप को भी नहीं....." मि० खन्ना ने उत्तर दिया।

मि० खन्ना के इस वाक्य से सब की दिलचस्पी उस डायरी के प्रति बढ़ गई। हर एक के चेहरे पर उत्सुकता की रेखायें अकस्मात उभर आईं। सब ने जैसे एक साथ उस डायरी के रहस्य को जान लेना चहा। मीनाक्षी ने कहा—"अगर यह डायरी आप के काम की नहीं है तो इसे दमयन्ती को वापस कर देना चाहिये....."

"अभी नहीं....इस डायरी का सही इस्तेमाल हो सकता है और अगर किसी ने कर दिया तो फिर मि० भल्ला, मि० चतुर्वेदी की नौकरी नहीं बच सकती....."

कहते-कहते मि० खन्ना उठ खड़े हुये। डायरी उन्होंने अपने काले कोट की जेब में रख लिया और कुछ टाईप किये हुये काग़ज़ों की फ़ाईल को मि० अनुज की ओर बढ़ाते हुये बोले—"यह आज की किश्त है"

मि० अनुज ने उत्सुकता से उसे ले लिया। वे लोग काफ़ी हाउस के के बाहर चले गये। मीनाक्षी भी उनके साथ बाहर तक गई लेकिन फिर वापस चली आई और मि० अनुज की टेबुल पर आकर बैठ गई।

"आप नहीं गईं....."मि० अनुज ने पूछा।

"जी नहीं....मुझे राज से मिलना है"

मि० अनुज के भावुक हृदय को इससे एक हल्का सा धक्का लगा। उन्होंने समझा था कोई नितान्त व्यक्तिगत बात करने के लिये मीनाक्षी उन लोगों का साथ छोड़ कर मि० अनुज के टेबुल पर बैठी थी। यह जानकर कि वह मि० अनुज में नहीं मि० राज में दिलचस्पी रखती है थोड़ा सा मीठा-मीठा दर्द वहीं अनुज शर्मा को हुआ लेकिन सारी तिक्तता को पीते हुये उन्होंने कहा—

"राज को आप कैसे जानती हैं...."

"हम दोनों क्लास फेलोज हैं....एम० ए० में साथ साथ पढ़ते थे"

"और दमयन्ती...."मि० शर्मा ने पूछा।

"वह भी...." मीनाक्षी ने संक्षेप में उत्तर दिया।

"आप बी० के० को कैसे जानती थीं...."

"रामी धोबिन के माध्यम से...."

"रामी धोबिन...."

"जी हाँ....रामी धोबिन....जिन दिनों बी० के० इलाहाबाद में रहता था तो वह उसका कपड़ा धोया करती थी....बी० के० ने पड़ोस ही में मकान ले रक्खा था और हमारे घर के कपड़े भी वही धोबिन धोया करती थी....अक्सर वह बी० के० की बड़ी प्रशंसा किया करती थी....धीरे-धीरे मेरा भी परिचय हो गया....रामी धोबिन पागल हो गई है....अब भी ज़िन्दा है....लेकिन बिल्कुल पागल की हालत में...."

मि० अनुज शर्मा जो पिछले चार साल से इलाहाबाद में ही रहते थे कभी भी इस मार्मिक कथा को नहीं जान पाये थे। इलाहाबाद में भी कोई ऐसी धोबिन हो सकती है जो चण्डीदास की रजकमी के समान भावुक एवम प्रतिभा सम्पन्न होगी, उसकी कल्पना भी मि० अनुज शर्मा के लिये कठिन थी।

"कभी आप मुझे उससे मिलायेंगी ?" मि० अनुज ने पूछा।

"लेकिन लाभ क्या होगा....वह बिल्कुल पागल है....होश में रहती ही नहीं.... शायद बी० के० का नाम लेने पर भी वह कुछ न याद कर सकेगी...."

"फिर भी....मैं मिलना चाहता हूँ...."

"ठीक है कभी आप को मिला दूँगी...."कहकर मीनाक्षी चुप हो गई। काफ़ी का एक दौर और चला। मि० अनुज ने स्पेशल काफ़ी मँगवाई। अभी पहली घूँट गले के नीचे उतरी भी नहीं थी कि बेयरे ने आकर मीनाक्षी से कहा—"बीबी जी आप के नाम का फ़ोन है"

सूचना मिलते ही मीनाक्षी उठी और काऊन्टर पर फ़ोन सुनने के लिये

चली गई। थोड़ी देर बात करती रही फिर मि० अनुज के साथ आकर बैठ गई। काफ़ी पीते हुये बताया कि आज राज कुछ देर से काफ़ी हाउस आयेगा। फ़ोन की इस सूचना को सुनकर मि० अनुज जैसे आश्वस्त हो गये। उन्होंने फ़ाईल उलटनी शुरू कर दी और मीनाक्षी काफ़ी का प्याला समाप्त करने की दृष्टि से कुछ जल्दी-जल्दी काफ़ी पीने लगी।

काफ़ी पी चुकने के बाद उसने कहा—

"कल आप काफ़ी हाउस आयेंगे····"

"जी ज़रूर आऊँगा····मैं तो आदतन यहाँ रोज़ पाँच बजे आ जाता हूँ और नौ बजे जाता हूँ····"

मीनाक्षी एक दम सन्न होकर उनकी बात सुनने लगी। मि० अनुज के प्रति सहानुभूति पूर्ण दृष्टि से उसने एक बार देखा तो उन्हें लगा जैसे जीवन में पहली बार उनको वह नैसर्गिक सिहरन मिल पाई है जिसके लिये उनकी आत्मा वर्षों से तड़पती रहती थी। एक बार अपने मन में ही उन्होंने बी० के० को धन्यवाद दिया—कितना भाग्यवान था वह जो इस प्रकार की सिहरन उत्पन्न करने वाली सौंदर्य प्रतिमाओं के साथ वह रहता था। मि० अनुज ने अत्यन्त तृष्णा भरी दृष्टि से एक बार मीनाक्षी की ओर देखा। मीनाक्षी जैसे संकुचित सी हो गई।

काफ़ी समाप्त हो चुकी थी इसलिये वह उठ खड़ी हुई। अभ्यासानुसार मि० अनुज भी उठ खड़े हुये। उन्हों ने विनम्रता पूर्वक उन्हें नमस्कार किया। मीनाक्षी धीरे-धीरे काफ़ी हाउस के बाहर तक चली गई। उसने कार स्टार्ट की और चली गई। मि० अनुज मंत्र विमुग्ध से उस कार की ध्वनि उस समय तक सुनते रहे जब तक वह एकदम अन्तरिक्ष में विलीन नहीं हो गई।

सहसा उनकी तन्द्रा टूटी। एक स्पेशल काफ़ी का आर्डर देकर वह मि० खन्ना की दी हुई फ़ाइल उलटने लगे। सौभाग्य से या दुर्भाग्य से फ़ाईल के पहले पृष्ठ पर ही लिखा था—रामी धोबिन।

वह उत्सुकता से उसे पढ़ने लगे।

तीसरी कहानी

●

जेल में सहसा एक दिन बड़ा शोर हुआ। कैदियों ने बताया कि इलाहाबाद से कोई पागल औरत पकड़ कर लाई गई है और वह इसी जेल की हवालात में बन्द है। ज्यादा खोज बीन से पता चला कि वह औरत और कोई नहीं है– एक धोबिन है जो पागल हो गई है और उसी पागल पन में वह आत्म-हत्या करना चाहती थी। कुएँ में कूद पड़ी। पुलिस ने उसे बचाया और उसे लाकर आगरे जेल में कैद किया है। आगरे वह इसलिये लाई गई है क्योंकि डाक्टर विशेषज्ञों की एक बैठक आगरे होने वाली है। मेडिकल बोर्ड की मीटिंग के बाद ही यह निर्णय लिया जायगा कि उसे पागल क़रार देकर छोड़ दिया जाय या उस पर जान-बूझ कर आत्म हत्या करने के आरोप में मोक़दमा चलाया जाय।

यह ख़बर जब बी० के० को मिली तो वह थोड़ा बेचैन सा हुआ। पता लगाना चाहा लेकिन कोई विशेष पता भी नहीं लग सका। केवल इतना और पता चला कि कुछ दिन हुये उसका पति उससे मिलने आया था लेकिन डाक्टरों की राय के हिसाब से उसे पति से मिलने नहीं दिया गया। वह वापस चला गया। धोबी और जेल अधिकारियों से बात चीत करने से जो कुछ भी तथ्य मालूम हो सका था वह यह था कि इलाहाबाद में ही इस धोबिन की आशनाई कुछ जिन्नों हो गई थी। उसी आरोप में यह पागल हो गई है।

लेकिन यह ख़बर भी पूरी तरह से बी० के० को उस समय मालूम

हुई जब उसके वार्डर के छुट्टियों के दिन का हिसाब करके बी० के० ने उसे बता दिया था कि अब उसके छूटने में केवल दो महीने रह गये हैं। वार्डर डकैती के मोक़दमें में जेल आया था और उस हिसाब के बाद जब उसकी मुक्ति का समय निश्चित हो गया तो उसने उसके विषय में पूरी कहानी बताई। बोला धोबी कह रहा था—"कुछ दिनों के लिये उसके मोहल्ले में एक जिन्न आकर बस गया था। दिन में उसके मकान में ताला बन्द रहता था। केवल रात में ही वह ताला खुलता था। बारह से चार बजे सुबह तक ही मकान खुलता था। ठीक चार बजे सुबह उस मकान के किवाड़ खुलते थे और जिन्न गायब हो जाते थे और सिर्फ़ ख़ाली मकान ही रह जाता था।"

"एक दिन जाने कैसे वह उस जिन्न के घर धोने के कपड़े लेने गई। दोपहर को गई और शाम को लौटी। उस दिन से जाने क्या उसकी धोबिन को हो गया कि फिर वह अच्छी ही नहीं हुई। बहुत दिनों तक तो मुझे इसका रहस्य मालूम नहीं हुआ। रामी रोज़ रात को आधी रात गुज़रे वहां चली जाती थी और सुबह पाँच बजते-बजते वह वापस चली आती थी। यह स्थिति मुझे किस दिन मालुम हुई जब एक रोज घर के काम में वह फँसी रह गई और खुद न जा सकी। उसी रात को चार बजे के करीब मैंने खुद देखा। मुझे लगा जैसे कोई मेरे पैरों को जबर्दस्ती बाँधे हुये हैं। और वह उसके साथ घर के बाहर चली जा रही है"

वार्डर इस कथा प्रसंग को नितान्त रोचक ढङ्ग से सुना रहा था। बी० के० को वह सारी घटनाएँ याद आ रही थीं। उस बूढ़े धोबी की तीन पत्नियाँ थीं और तीन घरों में रहती थीं। वह खुद धोबियों का चौधरी था। कुछ काम नहीं करता था। इन्हीं तीनों घरों में घूम-घूम कर रहता था। उसकी तीनों पत्नियाँ घूम-घूम कर ग्राहकों के यहाँ से कपड़े लातीं। घाट पर धोने के लिये ले जातीं और वह जब जहाँ रहता तो वहाँ कपड़ों पर स्त्री करता था। घर से बाहर वह निकलता ही नहीं था। खाना खा के सोना और शाम को दारू पीकर लौटना और फिर सो जाना

यही उसका काम था। कभी कभी साथ संगत पड़ जाने पर वह जुआ भी खेल लेता था। बी० के० को याद है कि एक दिन रात को उसे पुलिस पकड़ कर ले गई थी और आधी रात को रामी धोबिन उससे दस रुपये लेने आई थी। पुलिस को दस रुपये देकर उसने धोबी को हवालात से छुड़ाया था और जब वह रात में छूट कर आया था तो मुश्किल से रात भर रहा। सुबह होते ही वह फिर अपनी दूसरी पत्नी के यहाँ चला गया था। फिर महीनों बाद वह रामी के घर आया था।

बी० के० को तब भी यह कुछ अजीब सा लगता था। इसलिये नहीं कि जो कुछ रामी धोबिन पर बीतती थी मानों उसी से उसकी सहानुभूति थी वरन् वह पूरी व्यवस्था के प्रति क्रोधित हो उठता था। उसे लगता था कि जैसे रामी धोबिन का जीवन उस वैश्या के समान है जो अपनी सड़ी गली व्यवस्था में महज़ इसलिये रहती है क्योंकि उसके सामने कोई दूसरा चारा नहीं है। रामी धोबिन भी इसीलिये इस तरह का जीवन व्यतीत करती है, क्योंकि शायद उसके पास भी कोई चारा नहीं था। बात-बात में उसने एक दिन कहा भी था—"मैं चौधरी की बेटी हूँ और मेरा पति भी चौधरी है····सारी जाति उनके चरणों पर शीश झुकाती है—अपने पति को छोड़ भी नहीं सकती।" एक को छोड़ कर दूसरा खसम करने वाली औरतों को उसने बड़ी गाली सुनाई थी। मोहल्ले के लोग उससे कपड़े इसलिये धुलाते थे क्योंकि वह साफ़ कपड़ा धोती थी, समय से कपड़े ले जाती थी और दे जाती थी। हिसाब भी बिल्कुल साफ़ रखती थी और ऐसा रहती थी कि उसे देख कर एक सहज आकर्षण हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी।

बी० के० को लगता था जैसे बात चाहे जो हो, रामी धोबिन का जीवन झूठी मर्यादाओं की यातना भोग रहा है। बी० के० के लिये किसी दया से दुखित हो जाने में कुछ समय या मेहनत नहीं लगती थी। वह उसकी प्रकृति थी इसलिये वह प्रायः सहज रूप में ही उसके भीतर से प्रवाहित होकर प्रस्फुटित हो जाती थी। उसी प्रकार का आभास उसे

रामी धोबिन के प्रति भी हुआ। उसकी सहज दया उसके अन्तर तम से प्रस्फुटित हुई और प्रवाहित होकर रामी धोबिन के प्रति फूट पड़ी। जब भी रामी धोबिन कपड़ा लेकर आती तो बी० के० का दुखित मन उस पर अकस्मात बरस पड़ता। उसे लगता यह धोबी रूपी जो मनु है वह रामी धोबिन जो कि श्रद्धा के समान है, दूसरी तीसरी धोबिनें जो इड़ा के समान हैं उनके चक्कर में पड़ कर कष्ट दे रहा है। उसने कहा—"तुम्हारी जाति में जब विवाह का कोई प्रतिबन्ध है ही नहीं तो इस बूढ़े को छोड़ कर कोई दूसरा पति क्यों नहीं कर लेती।"

बस इसी पर तो रामी धोबिन उस पर बरस पड़ी थी। बी० के० की सहज दया भावना को एक कठोर आधात लगा था। उन्हें लगा कि रामी धोबिन उस पर अनायास ही बिगड़ गई है। उसने तो एक सुविधाजनक बात कही थी। चाहा था कि उसके जीवन से यह विषम स्थिति दूर हो जाय। उस दिन से बी० के० ने रामी धोबिन से कुछ भी नहीं कहा। वह केवल कपड़ा लेने आती, गिन कर ले जाती और दे जाती। बी० के० को जब पैसा भी देना होता तो वह चुपके से कपड़े के साथ दे देता। उससे कुछ भी नहीं बोलता। बिल्कुल चुप चाप रहता।

काफ़ी दिनों बाद एक दिन रामी धोबिन ने बी० के० को एक खत दिया। वह खत किसी महिला का था। उसमें सिर्फ़ इतनी बात पूछी गई थी कि क्या आपकी लाईब्रेरी में गौरी चन्द हीरा चन्द ओझा की विख्यात पुस्तक भारतीय लिपि है। सर्व प्रथम बी० के० को यह अनुभव हुआ कि पब्लिक लाईब्रेरी का लाईब्रेरियन होना भी महत्वपूर्ण होता है। उसने रामी धोबिन से पूछा—"यह मीनाक्षी देवी कौन है?"

"पास वाले मकान में रहती है" उसने उत्तर दिया।

बी० के० चुप रह गया। बोला—"कल आकर किताब ले जाना"

दूसरे दिन पुस्तक लेकर जैसे ही बी० के० शाम को घर पहुँचा तो सहसा रामी धोबिन आकर खड़ी हो गई। पुस्तक उठा कर उन्होंने रामी धोबिन को दे दिया। वह लेकर चली गई और उसने उन्हें वह दे दिया।

थी। बी० के० जैसे उसे पहचानता था और उसे देख कर उसका जी धक से हो गया क्योंकि आज पहली बार उसके माँग में उसने सिन्दूर देखा था। थोड़ा सा ग़ौर करने पर उसे लगा कि वह दूसरी लड़की कोई और नहीं दमयन्ती थी। दमयन्ती की शादी हो गई है यह देख कर उसे बड़ी प्रसन्नता भी हुई। वह अब छत पर अधिक देर तक खड़ा नहीं रह सका। चुपके से नीचे उतर कर अपने कमरे में पंखा खोल कर बैठ गया। अभी बैठा ही था कि नीचे से किसी ने आवाज़ दी। देखा तो एक बड़ा ही सुन्दर व्यक्ति नीचे खड़ा हुआ बुला रहा था। उतर कर पूछा तो पता चला कि वह सज्जन मीनाक्षी के यहाँ से आये हैं और उन्हें चाय पर बुलाने के लिये समय की याद दिलाना चाहते हैं। बी० के० कमरे में ताला बन्द करके नीचे उतर गया। उनके साथ मीनाक्षी के कमरे में भी चला गया। कमरे की सजावट देखकर थोड़ा सा उसका जी ललचाया लेकिन तभी आतिथ्य की दृष्टि से मीनाक्षी और दमयन्ती दोनों ही आ कर खड़ी हो गई। दमयन्ती को अच्छी तरह बी० के० पहचान ही रहा था कि दूसरे महाशय बोले—"मिसेज दीना नाथ"—और बी० के० हत-प्रभ से दीना नाथ और दमयन्ती को देखते ही रह गये।

ऊपर जाने पर वृद्ध महिला मिली जिसे दमयन्ती ने बताया कि वह मीनाक्षी की माता है। वृद्ध महिला ने एक बार बी० के० की ओर देखा और फिर उठ कर नीचे चली गई। बी० के० कुछ समझ नहीं सका लेकिन उसका जाना उसे खला अवश्य। उसे लगा कि उतने लोगों में केवल उसी को उसका आना बुरा लगा। संकोच वश वह कुछ कह नहीं पाया। बैठा रहा। दमयन्ती ने चाय बनाई। नाश्ते का सामान आगे बढ़ाया। बी० के० ने ज़रा सा टूँगा और फिर चाय पीने लगा। कुछ न कुछ बात होनी चाहिये इसलिये डा० दीना नाथ ने ही बात छेड़ी—"तुम इतने दिनों तक ग़ायब कहाँ थे बी० के०"

"यूहीं बम्बई, नागपूर की ठोकरें खाता रहा....."

"इलाहाबाद कैसे वापस आये....."

"जाता कहाँ ? यहीं रहना था। सोचा यहीं बसें...."

"मकान तो तुमको अच्छा मिल गया है...."

"हाँ" मीनाक्षी की ओर देख कर बोला—"पड़ोसी भी अच्छे मिले हैं"

मीनाक्षी के चेहरे पर एक हल्की सी हँसी सी दौड़ गई। बोली—

"आपने लाईब्रेरी की ही नौकरी क्यों पसन्द की...."

"मैंने यूनिवर्सिटी भी ज्वाइन कर लिया है....एम० ए० करना चाहता था...."

मीनाक्षी को पहली बार मालूम हुआ कि यह यूनिवर्सिटी के विद्यार्थी भी हैं। एक बार बी० के० को ऊपर से नीचे तक देख कर बोली—"क्या विषय है"

"पोलिटिकल साईन्स...." बी० के० ने कहा।

मीनाक्षी चुप हो गई। डा० दीना नाथ ने बिल्कुल अनजान की तरह पूछा—

"आप के पिता क्या करते हैं"

बी० के० यह प्रश्न सुनकर ही सन्न हो गया। उसके हाथ से प्याली छूट पड़ी। गिरी और चकना-चूर हो गई। उसका कपड़ा भी ख़राब हो गया। दमयन्ती दौड़ी गई। भीतर से तौलिया ले आई। उसने उसके कपड़े पोंछे लेकिन बी० के० का मूड जैसे उखड़ सा गया। उसे डर था कि कहीं डा० दीना नाथ उससे यह प्रश्न फिर न पूछ लें। शायद इसी आशंका से वह एक दम ख़ामोश ही बैठे रहे। मीनाक्षी ने कई बार कुछ और प्रश्न किये लेकिन वह हाँ नहीं में उत्तर देकर कतरा गया। थोड़ी देर बाद जब वृद्ध माता आई तो फिर बात शुरू हुई। पहले तो उन्होंने बी० के० की इस हिम्मत की प्रशंसा की कि वह बिना घर से एक पैसा लिये नौकरी करके एम० ए० की भी परीक्षा दे रहा है। बात-बात में उन्होंने यह भी पूछ लिया कि वह करना क्या चाहता है। बी० के० के पास कोई निश्चित प्रोग्राम तो था नहीं। बोला—

"कुछ न कुछ करूँगा ही....."

"डिप्टी कलेक्टरी के इम्तीहान में बैठोगे....."

"वह तो बी० ए० पास करके भी बैठ सकता था....."

"कलेक्टरी के इम्तिहान में बैठोगे"

"क्या कलेक्टरी इतनी बड़ी चीज़ है ?" बी० के० ने प्रश्न किया। वृद्धा को कुछ संकोच का अनुभव हुआ। वृद्धा की समझ में नहीं आया कि आख़िर बी० के० कहना क्या चाहता है। एम० ए० पास करके अगर इन नौकरियों के लिये वह कोशिश नहीं करेगा तो फिर इतना पढ़ने से फ़ायदा भी क्या होगा। वह चकित सी बी० के० की ओर देखने लगी। बी० के० कुर्सी पर से उठ खड़ा हुआ और छत ही पर टहलने लगा। थोड़ी देर सोच कर बोला—"कोई सरकारी नौकरी करने का मेरा विचार नहीं है। दुनिया बड़ी लम्बी चौड़ी है....कही न कहीं कुछ न कुछ तो करना ही होगा।"

दमयन्ती ने बीच में ही उसकी बात को काट कर कहा—

"वैसे आप लाईब्रेरी में काम करते ही हैं। रिसर्च भी कर सकते हैं।"

बी० के० कुछ नहीं बोला वह चुप चाप मौन रूप में बैठा ही रहा। वृद्ध माता जी जैसे कुछ अधिक असंतुष्ट हो गई। शायद उन्हें लगा कि यह लड़का और कुछ हो या न हो किन्तु कहीं न कहीं सनकी अवश्य है। वह एक बार फिर उठी और नीचे चली गई। काफ़ी समय वैसे भी हो गया था। बात भी कुछ इतनी नीरस ढंग की होने लगी थी कि बी० के० की तबियत उचट गई थी। यद्यपि कुछ अकेलापन मिलता तो वह मीनाक्षी से बातें करता लेकिन डा० दीना नाथ और दमयन्ती के मौजूद होने से वह वहाँ भी कुछ बात नहीं कर सका। चुपके सा उठा और चलने का बहाना बनाकर नीचे आया और अपने मकान का ताला खोल कर कमरे में जा बैठा। काफ़ी देर बाद जब वह ऊपर छत पर सोने गया तो उसने देखा मीनाक्षी अपने छत पर कुछ लिखने में व्यस्त थी। पहले तो वह काफ़ी देर तक मीनाक्षी को उस बल्ब की रोशनी में देखता

रहा। उसके रूखे बाल और एक दम सादे कपड़ों में अत्यन्त सौम्य सुन्दरता उसे बड़ी भली लगती थी। बैठे-बैठे वह जाने कब कुर्सी पर सो गया। काफ़ी रात गये जब उसकी नींद खुली तो देखा—छत की रोशनी गुल हो चुकी थी और वह सो गई थी। बी० के० भी अनमना सा बिस्तर पर जा पड़ रहा।

दूसरे दिन की बात है। बी० के० लाईब्रेरी में पं० इलाचन्द्र जोशी का विख्यात उपन्यास जिप्सी पढ़ रहा था। जिस लड़की की कल्पना उसमें की गई थी उसे लगा वह बिल्कुल सत्य है। कोई भी चीज संसार में असंभव नहीं है। शिक्षा से संस्कार बदले जा सकते हैं, कर्म से जाति बदली जा सकती है। फिर रोना किस बात का। संसार में क्या नहीं हो सकता। किताब बन्द करके वह यही कुछ सोचने लगा। यदि छः महीने में एक जिप्सी लड़की अँग्रेजी बोल सकती है, पढ़ सकती है तो फिर संसार में क्या नहीं हो सकता? उसके जी में आया कि वह अभी उठे और रामी धोबिन के पास जा कर कहे—"अरी ओ रामी तू उठ····यदि प्राचीन काल में चण्डी दास की रजवंती अपने अनन्त प्रेम सौन्दर्य से चण्डी दास को संसार का सबसे बड़ा संत बना सकती है तो तू भी छः महीने में नितान्त क्रान्तिकारी, समाज की अग्रणी महिला हो सकती है।" उसके सामने रामी धोबिन का नितान्त आधुनिक रूप सजीव हो उठा। उसे लगा जैसे रामी धोबिन नितान्त आधुनिक वेश भूषा में हाथ में वैनिटी वेग लेकर ज़रा सा कान्वेन्ट एक्सेन्ट के साथ हिन्दी बोलने लगी तो वह भी उस जिप्सी कन्या के समान जिधर जायगी, जहाँ भी, जिस समाज में भी सम्मिलित होगी तो निस्सन्देह एक आफ़िसर की बीबी लगेगी····बी० के० ने सोचते-सोचते अपनी आँखे बन्द कर ली और जैसे स्वप्न विभोर सा हो गया····

और तभी किसी ने कहा—"मि० बी० के०"

बी० के० की आँखे खुल गईं।

देखा तो सामने मीनाक्षी खड़ी थी। वह हड़बड़ा कर उठ खड़ा

हुआ। मीनाक्षी ने मुस्करा कर एक सादा सा कागज़ बढ़ाया जिसपर कौहन की केलियाग्रेफ़ी की किताब का नाम लिखा था। बी० के० ने किसी बुक लिफ्टर को नहीं बुलाया। खुद मीनाक्षी के साथ अलमारियों में किताब ढूँढने लगा। बीच में अवसर पाकर मीनाक्षी ने कहा—

"ममी की बातें कल आप को बुरी लग गईं...."

"नहीं तो...."

"नहीं अगर लगी हों तो मैं क्षमा मांगती हूँ"

"लेकिन मेरे मन में तो ऐसी कोई बात नहीं थी...."

"बात यह है कि ममी पुराने विचारों की है....मेरे जन्म लेने ही के बाद विधवा हो गई। इसलिये...." कहते कहते मीनाक्षी का गला भर आया।

बी० के० के लिये इतना गला भर आना दया के स्रोत तोड़ने के लिये पर्याप्त था। बी० के० की आँखों में भी आँसू भर आये। छल-छलाये नेत्रों से उसने कहा—

"मेरी मन्शा यह नहीं थी....आप को दुख पहुँचा इसका हमें अफ़सोस है हम खुद ही बहुत दुखी हैं....कभी कभी अनजाने में कुछ ऐसा हो जाता है कि उससे कोई बुरा मान जाय...."

अब तक लाईब्रेरी में पढ़ने वालों के बीच कुछ बातें होने लगी थी। सहसा मीनाक्षी का ध्यान उधर गया। बी० के० के हाथ से किताब लेकर वह एक खिड़की के पास लगी मेज़ पर बैठ कर पढ़ने लगी। बी० के० फिर भी उसी आलमारी के पास काफ़ी देर तक खड़ा रहा और फिर आँसू पोछता हुआ बाहर चला आया। चुप चाप वह अपनी कुर्सी पर जिप्सी को खोल कर पढ़ने लगा। उसे सब कुछ बड़ा सुन्दर लग रहा था। उसे लगता था जैसे उस पुस्तक के माध्यम से जीवन के नये रहस्यों का उद्घाटन करने में वह सफल हो जायेगा। उसने यह भी सोचा कि चाहे जो हो वह अपने जीवन में कभी न कभी इसका प्रयोग करेगा और

समाज में वैसी ही क्रान्ति करेगा जैसी क्रान्ति कि जिप्सी उपन्यास के नायक ने कर के दिखा दिया है ।

बीच-बीच में वह एक बार मीनाक्षी की ओर भी देख लेता था । मीनाक्षी भी दबी-दबी नज़र से उसकी ओर देख लेती लेकिन इस मौन सम्भाषण को लाईब्रेरी में बैठ कर पढ़ने वाले जागरूक पाठकों की दृष्टि भी ताड़ रही थी । मीनाक्षी के भी क्लास के कई विद्यार्थी बैठ कर पढ़ रहे थे । अधिकाँश लड़के बी० के० को भी जानते थे । ऐसा लगा जैसे सब ने इस बात को नोट कर लिया है । बी० के० आँसू पोछते हुये अल्मारी के पास से लौटा था तो उसकी इस दीन दशा के व्यंग्य को प्राय: सब ने भली प्रकार नोट कर लिया था । लेकिन बी० के० ने शायद अन्त तक इस घटना के मार्मिक पक्ष को नहीं समझा । दो घण्टे के बीच वह कम से कम तीन चार बार घूम-घूम कर मीनाक्षी के मेज़ के पास गया । मीनाक्षी उसे देख कर उठकर खड़ी हो जाती और जब वह चला जाता तो फिर बैठ कर लिखने लगती !

ठीक छ: बजे मीनाक्षी बी० के० के मेज़ पर किताब रख कर जाने लगी तो बी० के० भी उठ कर उसे लाईब्रेरी के गेट तक पहुँचाने आया । मीनाक्षी ने कई बार कहा कि वह अपना काम करे लेकिन बी० के० की भावुकता शायद ऐसे समय में मौन रह ही नहीं सकती थी । उसने काफ़ी दूर तक उससे पिछली शाम की घटना के लिये क्षमा माँगा । अपने भरसक हर प्रकार से उसने अपनी बात स्पष्ट करनी चाही । मीनाक्षी को प्रथम परिचय में ही यह पता चल गया कि बी० के० कितना भावुक व्यक्ति है । वह उसकी भावुकता पर आवश्यकता से अधिक मुग्ध हो गई । बड़े गद-गद स्वरों में उसने आभार प्रकट किया और रिक्शे पर बैठ कर चली गई । एक घण्टे बाद लाईब्रेरी बन्द कर के जब बी० के० घर लौटने लगा तो उसका मन एक अज्ञात अवसाद से घिरा हुआ था । उसके मन में रह-रह कर प्रसाद के आँसू उमण्ड आते :

जो घनीभूत पीड़ा थी, मस्तक में स्मृति सी छाई

दुर्दिन में आँसू बनकर, वह आज बरसने आई !

कहते हैं अफ़वाह और हवा में कोई अन्तर नहीं। दोनों की गति तेज़ होती है।

लाईब्रेरी की यह छोटी सी घटना यूनिवर्सिटी में निजन वन की अग्नि की तरह फैल गई। दूसरे ही दिन जब बी० के० यूनिवर्सिटी गया तो उसे उसके कई साथियों ने व्यंग्यात्मक ढंग से उस विरह अग्नि के विषय में पूछा जो कल यूनिवर्सिटी लाईब्रेरी में घटित हुई थी। बी० के० को लगा यह ज़रा सी बात बिल्कुल तीर की तरह फैल गई है। उसने किसी को कोई और उत्तर नहीं दिया। यूनिवर्सिटी में आते जाते उसकी भेंट मीनाक्षी से हुई लेकिन उसने कोई सम्बोधन या अभिवादन नहीं किया।

शाम को बी० के० को फिर एक पत्र मिला। बी० के० मीनाक्षी के घर गया। पता चला कि कल लाईब्रेरी की बात मीनाक्षी को सहेलियों को भी मालूम है। मीनाक्षी थोड़ा घबराई हुई थी। बी० के० ने कहा—"कौन सी बात ?"

"वही जो हम दोनों में बात हो रही थी····"

"लेकिन बात तो कुछ थीं हीं नहीं····" बी० के० के कहा।

"मुझे आप से बात नहीं करनी चाहिये थी····और आप को····" कहते कहते मीनाक्षी रुक गई। शायद संकोच वश वह कुछ बोल नही सकी। बी० के० चुप रहा लेकिन फिर बोला—"मुझे क्या नहीं करना चाहिये था····"

"आप के आँखों में आँसू नहीं आने चाहिये थे····"

"आँसू ?"—एक प्रश्न वाचक उत्तर देकर बी० के० मौन हो गया और संकोच वश कुछ आगे न कह सका।

वृद्धा माँ ने चाय बना लिया था। दो प्याली चाय लेकर वह कमरे में आई। एक उसने बी० के० को दिया और दूसरा मीनाक्षी को। चाय देते हुये उसने कहा—"कल की बात का तुम बुरा मत मानना····अकेली

हूँ····घर के काम में फँसा रहना पड़ता है इसलिये ज्यादा देर बैठ नहीं पाती·····''

''लेकिन मैंने तो किसी बात का बुरा नहीं माना है''

''दमयन्ती, दीना नाथ, मीनाक्षी सभी तो कह रहे थे कल·····''

बी० के० को लगा कि उससे कल की ज़रा सी बात छिपाते नहीं बनी। अनायास ही वह भावुक हो गया था। मीनाक्षी की मां ख़राब नहीं है। उसने ज़बर्दस्ती उसे कल ग़लत समझ लिया था। बी० के० ने मां से बहुत-बहुत माफ़ी माँगी और थोड़ी देर बैठ कर चला गया।

बात धीरे-धीरे बढ़ती ही गई। यद्यपि बी० के० के मन में मीनाक्षी के प्रति केवल सहज सहानुभूति थी लेकिन शायद मीनाक्षी ही उसे आवश्यकता से अधिक महत्व देती जा रही थी। इधर रामी धोबिन भी जब आती तो बी० के० की बड़ी तारीफ करती। मीनाक्षी की समझ में नहीं आता कि और तो और यह रामी धोबिन उसकी इतनी प्रशंसा क्यों कर रही है। मीनाक्षी ने कई बार रामी से पूछा भी। रामी ने केवल यही कहा—''बाबू आदमी नहीं देवता है, क्या ग़रीब क्या अमीर सब के काम आते हैं।''

मीनाक्षी को उसके इस वक्तव्य में कुछ और नहीं दीख पड़ा वह भी केवल मुस्कुरा कर रह गई।

अप्रैल में ही इम्तहान ख़त्म हो जाते हैं। पहला हफ्ता समाप्त होते-होते परीक्षा भी समाप्त हो गई। लेकिन इम्तहान के आख़िरी दिन बी० के० की तबियत कुछ ख़राब हुई और लग-भग एक महीने तक वह बीमार रहा। बी० के० की अच्छी ख़ासी अंग्रेजी दवा चल रही थी लेकिन दमयन्ती के कहने से मीनाक्षी ने डा० दीना नाथ की दवा शुरू की। महीने भर तक दवा चलती रही। बी० के० मन मार कर सरसों के बराबर आठ-आठ गोलियाँ खाकर लग-भग बीस दिन तक उपवास पर रहा। इक्कीसवें दिन उसका बुख़ार उतरा। मुह फ़ीका-फ़ीका था। शरीर भी दुबला हो गया। इक्कीसवें दिन डा० दीना नाथ ने उसे

परवल के दो टुकड़े खाने को दिये। मीनाक्षी जब उन्हें लेकर आई तो बी० के० को जैसे थोड़ी राहत मिली। मीनाक्षी के प्रति कृतज्ञता की दृष्टि से देखते हुये बी० के० ने कहा—"इस बीमारी के दिनों में तुमने मुझे नया जीवन दिया है....."

"मैं किसी को जीवन भी दे सकती हूँ क्या....."

"सहानुभूति ही तो जीवन है....मैं अब तक इससे वंचित रहा हूँ मुझे केवल सहानुभूति ही नहीं मिली है....."

"यदि परवल की दो उबली हुई फांकों में सहानुभूति और जीवन आप देखते हैं तो ठीक है, वैसे मैंने तो कुछ नहीं किया है....."

बी० के० ने समझा कि यह मीनाक्षी शीलवश कह रही है। इक्कीस दिन तक वास्तव में जो उसने सेवायें की हैं उनका कोई भी उपकार भूला नहीं जा सकता। वह कृतज्ञता के साथ-साथ कहीं कुछ नये संदर्भों के दर्द का भी अनुभव कर रहा था।

एक ही हफ्ते में बी० के० का स्वास्थ्य ठीक हो गया। वह लाईब्रेरी भी जाने लगा। उसका अधिकाँश समय मीनाक्षी के घर पर बीतता और वहीं वह भोजन भी करता। मीनाक्षी के जीवन में यह पहला अवसर था कि उसे अपने घर में एक पुरुष की छाया दीख पड़ी थी नहीं तो केवल वह और उसकी माँ इसके सिवा कौन था जो उसको जीवन देता, उसकी सहानुभूति को समझता।

लेकिन यह बात केवल दो व्यक्तियों को अच्छी नहीं लगती थी। रामी धोबिन को बी० के० का इतना परिवर्तन पसन्द नहीं था। साथ ही मीनाक्षी की माँ को भी जैसे अब डर लगने लगा। मीनाक्षी भी इसको अनुभव करती थी लेकिन चाहते हुये भी कह नहीं पाती थी। बी० के० के लिये इसमें से कुछ भी समझ सकना कठिन ही नहीं असंभव था। वह इन बातों की भनक तक नहीं अनुभव कर पाता था।

एक दिन बी० के० को मीनाक्षी का एक पत्र मिला। पत्र पढ़ते ही बी० के० को लगा उसे उसकी मनोवांछित जीवन दृष्टि मिल गई है।

मीनाक्षी के प्रति वह आकृष्ट तो नहीं था लेकिन उसकी सहज सहानुभूति ने जैसे वशीभूत कर लिया था। पत्र पढ़ते-पढ़ते उसे एक दम ममता की याद आ गई। उसे लगा कि जीवन में प्रथम आकर्षण तो उसने वहीं अनुभव किया था....उसी समुद्र के किनारे....सागर के गर्जनों के बीच होटल में....नितान्त निरीह, वेसुध सा जब ममता के सौम्य रूप को देख रहा था....तब से आज तक जब कभी भी उसके जीवन में किसी भी नारी ने कोई भी रेखा छोड़ा तो जैसे ममता की रूप रेखा ही उसके सामने उभर आई। उन्हीं छायाओं में उसका बेबस मन जैसे तड़प उठता। वह एक दम आत्म विस्मृत हो जाता। आज भी जब वह मीनाक्षी का पत्र पढ़ रहा था तो उसके जी में यह भाव आ रहे थे। एक रजत रेखा के दो छोर—एक सिरे पर मीनाक्षी और दूसरे पर ममता। ममता की क्रूरता और कठोरता के लिये उसने जैसे उसे छोड़ दिया था। वह एक तृष्णापूर्ण मरीचिका के समान उससे दूर ही दूर रही और वह समस्त सुख दुख से वंचित एक नितान्त नैसर्गिक अनुभूति में डूबा एक सजीव, सचेष्ट प्राणी के रूप में मौन बैठा रहा....

मीनाक्षी की माँ इधर सतर्क रहने लगी थी। एक दिन जब दमयन्ती मीनाक्षी के घर आई तो माँ ने उस से सारी बातें कह डालीं। उसने यह भी कह दिया कि यदि मीनाक्षी मां की मर्ज़ी के ख़िलाफ़ कुछ भी कर बैठी तो वह आत्म हत्या कर लेगी। दमयन्ती ने मीनाक्षी से भी सारी बातें कह दीं। मीनाक्षी को अपनी माँ पर बड़ा क्रोध आया। उसके लिये माँ का महत्त्व ही जैसे घट गया। उसने दमयन्ती से कहा—

"लेकिन मेरे विषय में माँ ने यह सब सोचा कैसे ?"

"तुम्हारा और बी० के० का साथ देख कर...."

"तो क्या साथ कोई बुरी चीज है....?"

"बुरी हो या न हो उसका प्रभाव तो बुरा पड़ता ही है...."

मीनाक्षी सन्न रह गई। उसके लिये यह सारी कल्पनायें ही थोथी और अर्थहीन लगने लगीं। निरर्थक शब्दों के जाल में वह उलझना नहीं

चाहती थी लेकिन उसके मन पर दमयन्ती की इन बातों से इतना आवेश आ गया कि उसने दमयन्ती की तस्वीर जिसे बड़ी स्नेह भावना से वह दमयन्ती के घर से लाई थी उठा कर फेंक दिया। आँगन में वह चकनाचूर होकर बिखर पड़ी। काँच के छोटे-छोटे टुकड़े आँगन में सूरज की रोशनी में चमक उठे। मीनाक्षी की माँ जो चौके में खाना बना रही थी देख कर एक दम बाहर आ गई। देखा मीनाक्षी की आँखों में आँसू हैं, दमयन्ती बेतहाशा हँस रही है और उसकी तस्वीर बीच आँगन में टूटी बिखरी पड़ी है। उनकी समझ में तो बात आ गई लेकिन दमयन्ती के हँसने से उन्होंने अन्दाज लगाया कि यह सारी घटना किसी मज़ाक के फल-स्वरूप घटित हुई है। वह वापस चौके में चलीगई।

दमयन्ती को हँसते देख कर मीनाक्षी ने कहा—

"तुमको शर्म नहीं आती····तुम हंसती हो····"

"मैंने तो जिन्दगी में सिर्फ इतना ही सीखा है····"

"लेकिन तुम्हें रोना चाहिये····" मीनाक्षी ने कहा

"रोना ?" दमयन्ती फिर हंस पड़ी—"तुम तो रोना ऐसा कह रही हो डियर जैसे सच बोलना चाहिये····"

"तुम और सब कुछ कर सकती हो किन्तु सच न तो बोल सकती हो और न समझ सकती हो।"

"अच्छा भई झूठ ही सही····लेकिन मेरी बात मान जाओ। बी० के० का ध्यान छोड़ दो····न जाने कितने राजकुमार तुम्हारे लिये बैठे हैं फिर बी० के० क्या है।"

जाने कहाँ से और किस काम के लिये ठीक उसी समय बी० के० भी वहीं आ पहुँचा। चुप चाप बाहर दरवाजे पर खड़ा हो गया और भीतर दमयन्ती और मीनाक्षी की बातें सुनने लगा। दमयन्ती कह रही थी—"तुम बी० के० को नहीं जानती ?"

"बी० के० को जानने का क्या मतलब ?"

"बी० के० कौन है, कहाँ का रहने वाला है, कौन उसका बाप है, कौन उसकी माँ है····यह सब तुम्हें मालूम है····?"

"आदमी का आदमी होना ज़रूरी है, बेटा होना नहीं····बी० के० आदमी है, उसका कोई न कोई बाप भी होगा ही····।"

"लेकिन यह इस समाज में नहीं चल सकता····तुम जो सपने बी० के० के बारे में बना रही हो वह ग़लत है····।"

"मैं कोई सपने नहीं बना रही हूँ····मैं सहज़ आदमी होने के नाते बी० के० के साथ आदमीयत का व्यवहार करती हूँ बस····।"

अब तक बी० के० दरवाज़े पर खड़ा-खड़ा चुप चाप भीतर की बात सुन रहा था। वह एक दम मुड़ा और चला आया। उसे देखकर मीनाक्षी और दमयन्ती दोनों ही चौंक गईं। पहले तो ठिठकी सी खड़ी रही फिर दमयन्ती ने कहा—"आ गये तुम?"

"हाँ आ गया हूँ शायद तुम लोगों को मेरी ज़रूरत भी थी।"

"जरूरत नहीं शिकायत थी····।"

"शिकायत ?" बी० के० हँस पड़ा। बोला—"शिकायत मुझे भी है लेकिन शायद मेरी शिकायत सुनने वाला कोई है नहीं····।"

इतनी बात कह कर बी० के० वहीं कुर्सी पर बैठ गया। अब तक मीनाक्षी की माँ भी आ गई थी। बी० के० को देखकर उनके भी तेवर चढ़े हुये थे। जी में आ रहा था कि वह बी० के० से कह दें कि वह घर से निकल जाय लेकिन जाने किस संकोच से वह कह नहीं पा रही थी। बी० के० पांच सात मिनट चुप चाप बैठा रहा फिर बोला—"मैं नहीं जानता कि मैं किसका पुत्र हूँ? कौन मेरी माँ है, बाप कौन है। इसमें मेरा दोष नहीं। लोग कहते हैं कि इसी खुशहाल पर्वत पर मैं आज से बीस साल पहले कूड़े में पड़ा हुआ पाया गया था····शायद मेरे माँ बाप को मुझ से नहीं मेरी छाया से नफ़रत थी। मालती नाम की एक विधवा ने, और नसीमन नाम की एक क़साईन ने मुझे पाला था। मैं आज दो साल से इस मोहल्ले में महज़ इसलिये रह रहा हूँ ताकि मुझे

कुछ तो अपने आस्तित्व का पता चले। लेकिन आज दो साल हो गये। मुझे कुछ भी पता नहीं चला। मैं शायद आज भी वही हूँ किसी की वासना का उच्छिष्ट····।"

यह कहते-कहते बी० के० कमरे के बाहर जाने का प्रयास करने लगा। तभी भीतर से एक चीखने की आवाज़ आई। शायद मीनाक्षी थी। बी० के० ने पीछे मुड़ कर देखा तो मीनाक्षी दरवाज़े से लगी खड़ी थी। बी० के० को देखते ही एक दम हिचक सी गई। बड़े रूँधी हुई आवाज़ में बोली—"ममी बेहोश हो गई है····उन्हें दिल का दौरा हो गया है।"

मीनाक्षी उस घबराहट में और कुछ नहीं कह सकी। बी० के० रूका नहीं चला गया। उसके जी में आया वह अपने घर में जाकर बैठे लेकिन घर के दरवाज़े तक पहुँचते-पहुँचते वह जाने क्यों वापस लौट आया। शाम का वक्त था। वह पास वाले डाक्टर सेठी को लेकर पहुँचा। पहले तो डाक्टर सेठी ने जाने से आना कानी की थी लेकिन फिर बी० के० के बहुत कहने सुनने पर वह अपना बैग लेकर आये। रास्ते में डा० सेठी इतने गंभीर और खामोश थे कि बस कुछ बोले भी नहीं। जब घर में प्रवेश करने लगे तो जाने क्यों उन्हें दो ठोकरें लगीं लेकिन फिर संभल गये। वृद्धा के पास जाकर उसका नब्ज़ देखा। एस्थिस्टिस्कोप लगाया। ब्लड प्रेशर देखा और फिर चुप चाप सूईयाँ लगाकर चले गये। दरवाज़े पर बी० के० ने पूछा क्या है डाक्टर—"कार्नेरी थ्राम्बोसिम"—बिल्कुल तटस्थ भाव से डाक्टर सेठी ने बताया और बिना फ़ीस लिये वह उल्टे पाँव वापस जाने लगे। बी० के० ने उन्हें चार रुपये फ़ीस देने चाहे लेकिन मिस्टर सेठी ने एक पैसा भी नहीं लिया। चुप चाप वह अपनी दूकान की ओर बढ़ गये। दूसरे दिन से माँ की तबियत ठीक होने लगी। एक हफ्ते तक दिन में दोबार रोज़ बी० के० जाता। डाक्टर सेठी के यहाँ से दवा लाता और फिर दवा

देकर वापस चला जाता। दो एक बार मीनाक्षी ने रोकना भी चाहा लेकिन वह रूका नहीं।

इस बीमारी के सिलसिले में ही बी० के० को यह पता चला कि बी०के० के बारे में दमयन्ती के माध्यम से सबको यह पता चल गया था कि वह सड़क पर फेंका हुआ पाया गया था और उसके वंश माता या पिता में से किसी का पता नहीं है। स्वयम् मीनाक्षी भी इस बात को जानती थी लेकिन उसे जैसे विश्वास ही नहीं होता था। वह इसी बात को एक बार अकेले में बी० के० से भी पूछना चाहती थी साथ ही उसे यह भी बताना चाहती थी कि उसकी माँ की प्रकृति पिता के मरने के बाद से ही कटु हो गयी है। घर में किसी से पटी नहीं। पिता के मरने के बाद वह खुशहाल पर्वत इलाहाबाद में अपनी विधवा माता के साथ रहने लगी। यह खुशहाल पर्वत उसका ननिहाल है....।

लेकिन वह कहती किस से। बी० के० उस दिन के बाद से किसी से बोला ही नहीं। एक दिन उसने यह अवश्य सुना था कि मीनाक्षी की माँ को जब यह पता चला कि यह दवा डा० सेठी के यहाँ से आ रही है तो उस दिन से उसने दवा खाना बन्द कर दिया था। वही आख़िरी दिन था जब बी० के० मीनाक्षी के यहाँ गया था। उसके बाद वह वहाँ गया ही नहीं। अकेले अपने घर में बैठा, पढ़ता या लिखता, न किसी के यहाँ जाता न आता। केवल रामी धोबिन ही हफ्ते में दो बार आती और बी० के० कपड़े धोने के लिये ले जाती। कई बार मीनाक्षी ने बी० के० को बुलाने का सन्देश भी भेजा लेकिन बी० के० ने उस सन्देश का कोई उत्तर नहीं दिया।

•

ख़ाली समय में आदमी के दिमाग़ में विचित्र-विचित्र बातें आती हैं। जिप्सी उपन्यास का प्रभाव बी० के० पर इतना गहरा पड़ा कि उसकी भी मन्शा एक अजीब व ग़रीब क्रान्ति करने की हुई। उसने सोचा यदि वह

जिप्सी गर्ल छः महीने में इतनी क्रान्तिकारी हो सकती है तो रामी धोबिन जो बिना पढ़े लिखे, शिक्षा-दीक्षा के, इतनी सुन्दर, सभ्य, सुशील और संभ्रान्त व्यवहार करती है तो यदि इसको शिक्षा देकर इसमें ही क्रान्ति पैदा की जाय तो एक सर्वथा नयी बात पैदा हो सकती है।

यद्यपि इसके पहले कई बार सर्वथा नई बात कहने पर रामी धोबिन ने बी० के० को बड़ो जोर से डाँटा था लेकिन फिर भी इस समय बी० के० जिप्सी के आदर्श से इतना प्रभावित था कि उसने रामी धोबिन का उद्धार करने का प्रण कर लिया था। हुआ भी यही। चार महीने की लगातार परिश्रम का परिणाम यह हुआ कि रामी धोबिन को काफ़ी पढ़ना लिखना आ गया। यह बात उसके पति को पता नहीं चला क्योंकि जब से रामी धोबिन ने पिछली बार उसे हवालात से छुड़ाया था तब से वह रामी धोबिन के यहाँ आया ही नहीं था। मोहल्ले वाले धीरे-धीरे करके रामी धोबिन में होने वाले परिवर्तन को आँकने लगे और उस दिन तो मोहल्ले में आग सी लग गई जब उलटे पल्ले की साड़ी पहन कर रामी धोबिन विद्या विनोदनी का इम्तहान देने जाने लगी। सब लोग बी० के० को निन्दा करने लगे। किसी ने कहा कि वह तो बी० के० की रखेल है। किसी ने कहा वह तो रामी धोबिन ने ही बी के० को फाँस लिया है। मोहल्ले के दो चार मन चले लोग जिन्होंने कभी रामी धोबिन को राह चलते छेड़ा था अब ज़रूरत से ज्यादा बेचैन हो उठे थे। उनके क्रोध की कोई सीमा भी नहीं थीं।

बी० के० एम० ए० की परीक्षा के बाद वकालत पढ़ने लगा था। लाईब्रेरी की नौकरी और यूनिवर्सिटी की पढ़ाई दोनों साथ-साथ चल रही थी। बी० के० ने शेष समय में इस क्रान्ति के कार्य को संभाल लिया था। दो साल के बीच उसने रामी धोबिन को विद्या विनोदनी की परीक्षा तो पास ही करवा दिया, साथ हो उसे नर्स के काम में दक्ष करा के उसे नर्स की नौकरी दिला दी। रामी धोबिन ने कपड़े धोने का काम छोड़ दिया और अब वह अकेले रहने लगी। उसका पति जब दो साल बाद घर लौटा

और उसने रामी धोबिन का यह नक़शा देखा तो पहले तो विस्मित हो गया लेकिन फिर नौकरी की बात सुनकर उसने सोचा रामी ऐसी भी क्या नौकरी करेगी कोई लाट साहब तो होगी नहीं। जितना धुलाई में मिलता था उतना ही तो नौकरी में मिलेगा हमें कपड़ों पर लोहा करने से भी छुट्टी मिल जायगी। रोज़ दारु के पैसे के लिये झींकना पड़ता था अब माहवारी हिसाब हो जायगा। सब कुछ सोच विचार कर उसने यह निर्णय कर लिया कि वह उन दोनों पत्नियों के पास नहीं जायगा। यहीं रामी के पास स्थाई रूप से रहेगा। शाम को दारू पियेगा और सुबह मौका मिल जायगा तो कहीं कौड़ी भी फेंक आयेगा। हर बार पुलिस कहाँ तक पकड़ लेगी। अब तो ऐसी नाल पर खेलूँगा जहाँ से पुलिस वालों को रक़म बन्धी रहती है। कौन साला पकड़ेगा।

और उसने यही किया। इधर रामी धोबिन नर्स हुई और उधर उसका पति उसके घर पर आ डटा। रोज़ शाम को वह रामी से दारू के पैसे माँगना शुरू किया और रामी पहले तो विरोध करती रही फिर उसे रोज़ उसके दारू के लिये पैसा दे देती और वह शराब पीकर वेहोश घर में सो जाता। रामी कभी अस्पताल और कभी घर पर रहती लेकिन वेहोश बूढ़ा धोबी अपने रङ्ग में डूबा पड़ा रहता।

इस परिवर्तन और मथंन के बीच दो चीजें स्पष्ट थीं और वह यह कि अब रामी के मन में वह संतोष नहीं रहा। रात को जब दारू पीकर उसका पति वेहोश सा सो जाता तो वह उठती और आकर बी० के० के घर का दरवाज़ा खटखटाती। प्राय: दरवाज़ खुला ही रहता। रात के चार बजे तक वह बी० के० के घर में रहती और फिर अपने घर वापस चली जाती। लोगों का कहना था कि रामी बी० के० से प्रेम करती है लेकिन रामी का कहना था कि वह बी० के० को अपना गुरु मानती है। लोग कहते कि बी० के० ने रामी को महज़ इसलिये पढ़ा लिखा कर इतना प्रतिष्ठित बना दिया ताकि वह उसकी अपनी निजी बन सके। बी० के० भी इन बातों को कभी उड़ता हुआ सुन लिया करता है। उसके ऊपर कोई प्रति-

क्रिया नहीं होती। वह महज़ हँस देता है और उन व्यंग्यों को मौन पी जाता है।

एक रात रामी जब बी० के० के घर आई तो बारह बज चुके थे। बी० के० रामी की प्रतीक्षा ही कर रहा था। पहुँचते ही रामी ने कहा—"हमें इलाहाबाद को छोड़ कर कहीं बाहर चला जाना चाहिये"

"क्यों ?" बी० के ने पूछा।

"लोग क्या-क्या कहते हैं····उनकी बातें सुनी नहीं जाती" "लेकिन इलाहाबाद से चले जाने से लोगों का कहना तो बन्द होगा नहीं····"

"यह तो मैं भी जानती हूँ"

"फिर जाने से फ़ायदा····" बी० के० ने कहा !

उस दिन जाने क्या बात थी कि इतनी सी बात कहने के बाद बी० के० कुछ भावुक हो गया। उसने रामी को बिल्कुल अपने समीप बैठा कर समझाना शुरू किया और रामी अपनी गीली पलकों से एक दम नत मस्तक अपने पैर के अँगूठे देखती रही। बी० के० नितान्त संवेदन शील क्षणों में उसका चिबुक अपने हाथों से उठा कर उसकी आँखों में आँखें डाल कर देखने लगा। शायद उन गीली पलकों का अर्थ वह समझ नहीं पा रहा था। वह समझता था कि यह महज़ उपहास पीड़ित है लेकिन जब उसने देखा कि उसके इस सहज स्पर्श से रामी बिल्कुल आत्मविभोर हो उठी है और एक दम उसकी गोद में सिर डाल कर सिसकने लगी है तो उसे लगा जैसे उसके रन्ध्र-रन्ध्र से एक अनजानी उष्णता बह रही है। उसका मन, उसकी आत्मा कहीं आवश्यकता से अधिक गले जा रहे हैं, और वह एक दम विवश सा हुआ जा रहा है। वह तुरंत रामी को बगल में ही लेकर खड़ा हो गया और उसे पास वाली कुर्सी पर बिठा कर खुद खिड़की के पास खड़ा-खड़ा बाहर का दृश्य देखने लगा। बाहर इतना कुहरा था कि वहाँ सब कुछ अन्धा हुआ जाता था। उसे लगा कि वह बाहर की बिजलियों में भी नहीं

देख पा रहा है। वह चुप चाप ज़ीने से उतर कर नीचे चला गया। आर पार गलियों के बीच से होता हुआ बीच शहर में आ खड़ा हुआ। चौक के बीचो-बीच गोल चबूतरे पर कुछ क्षण बैठा। रिक्शे वालों के लिये रात में चाय बेचने वालों से उसने लगातार दो कुल्हड़ चाय ली। पीकर उसे लगा जैसे उसके गलते पाँव, गलते जिस्म में एक नये प्रकार की हरारत आ रही है। वह वहाँ से भी आगे बढ़ गया। स्टेशन के वेटिंग हाल में जाकर काफ़ी देर तक एक बेंच पर बैठा रहा। बहुत दिनों बाद उसने एक पैकेट सिग्रेट और दियासलाई ली। देहाती मुसाफ़िरों के बीच बैठ कर उसने आधी से ज्यादा सिग्रेट पी डाली। वहाँ से फिर उठा। प्लेटफ़ार्म टिकट लिया। प्लेटफ़ार्म पर टहलने लगा। एक जोड़ा जो शायद विवाह के बाद ही कहीं बाहर जा रहा था और जो उस सन्नाटे प्लेटफ़ार्म पर संसार से अलग एक दूसरे को अपनी अपनी गाथायें सुना रहे थे या जाने कौन-कौन सी फ़ाश एवम् नंगी बातें कर रहे थे सहसा उसको देख कर सतर्क हो गये। उसे लगा जैसे वह नहीं उन दोनों के बीच संसार का अस्तित्व आकर खड़ा हो गया है—संसार जो शायद इतना क्रूर सत्य है कि पचाया नहीं जा सकता, या जिसमें जीने से लेकर मरने तक की स्वतंत्रता नहीं, नियम है, औपचारिक विशिष्टतायें हैं और जीवन, चाहे वह जिसका भी हो वह केवल उन्हीं औपचारिक विशिष्टताओं का एक रिहर्सल मात्र रह गया है।

सहसा सिगनल डाउन हुआ। बत्तियाँ जलगईं। स्टेशन पर भीड़ आनी शुरू हो गई। कुछ मोटी भद्दी औरतें, कुछ नितान्त शुष्क सूखी औरतें, कुछ ऊँघती बहुयें, कुछ अलसाई आँखों में नींद लिये तरुणियाँ, कुछ चपरासी, कुछ साहब, कुछ कुली और कुछ पान सिग्रेट बीड़ी की घोषणा करने वाले नये पुराने, जवान बूढ़े नौकर····

तेज़ स्पीड से सारे वातावरण में एक कम्पन और गूँज पैदा करती हुई तूफ़ान मेल गाड़ी आई। कुछ लोग उतरे, कुछ चढ़े, कुछ आये कुछ खीझे यात्री उतरे और एक लक्ष्य होकर सीधे फाटक की ओर जाने

लगे। बी० के० खड़ा-खड़ा सोचता रहा उसे किधर जाना है, उसकी दिशा कौन सी है, उसकी यात्रा या उसकी मंजिल कौन सी है। वह गाड़ी की भीड़ को ही देखता रहा—ऊँघते हुये लोग, रात की सर्दी में ठिठुरे हुये यात्री—ख़ामोश मौन····उसे लगा वह कितना अजनबी है। चाहते हुये भी किसी का नहीं है····इस दुनिया में वह बिल्कुल एक प्लेटफ़ार्म पर चलने वाले यात्री के समान है—जो इतने असंख्य आदमियों से अपरचित होने के बाद चलने, उतरने और यात्रा में एक होते हैं।

गाड़ी चली गई। लग-भग चार या पाँच बजे का समय था। वह उस सन्नाटे प्लेटफ़ार्म पर हाड़-हाड़ को गला देने वाली हवा के बावजूद भी चलता रहा। घर पहुँचते-पहुँचते सुबह हो गई थी। घर के दरवाज़े उढ़काये हुये थे। रामी घर में नहीं थी वह चारपाई पर लेट गया। काफ़ी देर तक करवटें बदलता रहा फिर जाने कैसे नींद आ गई। वह सो गया।

इस घटना को घटित हुये कई दिन बीत गये थे।

एक दिन रात में जब वह लौटा तो उसने देखा मीनाक्षी उसके कमरे में बैठी हुई है। बी० के० मीनाक्षी को देख कर सन्न रह गया। कुछ बोला नहीं। पास वाली कुर्सी पर बैठ गया। नौकर को चाय की आवाज़ दी और जिप्सी के पन्ने उलटने लगा। मीनाक्षी ने कहा—"मेरा यहाँ आना आपको बुरा तो नहीं लगा····"

"बिल्कुल नहीं····"

"बुरा तो आपको कुछ भी नहीं लगता····"

"हूँ··· नहीं ही लगता। क्यों ?"

मीनाक्षी जैसे भरी बैठी थी। बी० के० की इतनी सी बात पर वह टूट पड़ी। मीनाक्षी के भावों में जो आवेश सा था वह सहज ही प्रस्फुटित हो गया। बोली—

"आप ने यह रामी धोबिन को क्यों मुँह लगा रक्खा है"

"क्यों ? क्या हुआ····?"

"मोहल्ले में सभी लोग आप को बुरा भला कहते हैं।"

"क्यों...."

मीनाक्षी चुप हो गई। वह जानती थी कि सारी बातों को जानने के बावजूद भी बी० के० इस समय जान बूझ कर अनजान बन रहा है। उसने कहा—

"माँ कहती थी कि बी० के० से कह दो वह अपना रहन-सहन ठीक करे नहीं तो...."

"नहीं तो वह मुझे मोहल्ले से निकाल देंगी...."

मीनाक्षी को बी० के० का यह व्यग्यं कुछ बहुत अच्छा नहीं लगा। वह ख़ामोश हो गई। बी० के० ने आगे कहा—"मैं जो कुछ भी करता हूँ उसे सोच समझ कर करता हूँ उसकी अच्छाई बुराई को भी भलो भाँति जानता हूँ....मुझे किसी की सलाह की ज़रूरत नहीं है...."

मीनाक्षी चुप हो गई। थोड़ी देर तक मौन रहने के बाद बी० के० ने पूछा—"तुम्हारी ममी की तबियत कैसी है ? वह ठीक हैं न...."

"जी हाँ....अब तो ठीक ही हैं...."

"अजीब हैं तुम्हारी ममी भी। मैं तो उनकी हालत ख़राब देख कर जल्दी से जल्दी डाक्टर लेने गया। मि० सेठी को लाया। उनकी दवा कराई और जब अच्छी होने लगीं तो सहसा सेठी को अपमानित कर दिया। आख़िर ऐसा क्यों किया उन्होंने....?"

मीनाक्षी चुप हो गई। शायद इसका मुख्य कारण उसे मालूम भी नहीं था। वह केवल इतना जानती थी कि बचपन से ही उसे कुछ घरों में न जाने का आदेश दिया गया था। कुछ लोगों के विषय में बताया गया था कि इन लोगों का साथ नहीं देना चाहिये। श्री सेठी उन आदमियों में से थे जिनके विषय में मीनाक्षी की माँ ने यह बिल्कुल दृढ़ता पूर्वक बता दिया था कि चाहे अन्न जल के बिना वह मर भी क्यों न जाय लेकिन यों ही सहज रूप में भी दी हुई कोई भी चीज़ उनके

घर की या उनकी वह न स्वीकार करें। कई बार उसने माँ से कारण भी पूछा था लेकिन उसका उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया था।

और आज जब उसी प्रश्न को बी० के० ने पूछा तो मीनाक्षी समझ नहीं सकी कि उसका क्या उत्तर दे। वह उठी और चुप चाप चली गई। बी० के० ने फिर जिप्सी पुस्तक उठाई और पढ़ने लगा।

●

उस दिन के बाद कई हफ्ते तक रामी धोबिन नहीं आई। बी० के० रोज़ देखता कि वह सुबह शाम सफ़ेद साड़ी पहन कर अस्पताल जाती। आती कब इसके विषय में उसको ज्ञान नहीं था।

एक रोज़ आधी रात के क़रीब सहसा रामी धोबिन के घर को पुलिस ने घेर लिया। सारे मोहल्ले में शोर मच गया। कुछ लोग दौड़े-दौड़े बी० के० के पास भी आये। बी० के० ने कहीं जाने से इन्कार कर दिया। वह अपने कमरे में पड़ा लिखता-पढ़ता रहा।

दूसरे दिन मालूम हुआ कि इधर महीने भर से रामी धोबिन ने कुछ नाजायज़ काम शुरू कर दिया था। कोई लड़की थी जिसे उसने कुछ दवा दी थी। उसकी हालत ख़राब हो गई। घर वालों को पता चला। अस्पताल ले गये। डाक्टर ने उसे पुलिस केस बना दिया। रामी का बयान लिया गया। वह पकड़ कर जेल भेज दी गई। मोक़दमा चलाया। फिर क्या हुआ यह तो बी० के० को नहीं मालूम लेकिन उसे खुद मालूम था कि उस जुर्म के लिये तीन से सात साल तक की सज़ा है। बहुत लोगों ने इस बात की बड़ी कोशिश की कि रामी के साथ-साथ बी० के० का भी नाम जुड़ जाय लेकिन ऐसा नहीं हुआ। बी० के० को किसी भी प्रकार से उस मोक़दमे में नहीं शामिल किया गया। लेकिन उसी के साथ जो अजीब घटना घटी वह यह कि डा० सेठी पकड़े गये। उनका भी बयान लिया गया और मोक़दमा चलने लगा।

एक दिन जब बी० के० लाईब्रेरी से लौट रहा था तो डा० सेठी

रास्ते में ही पैदल आते हुये मिल गये। बी० के० ने उनके और उनके अस्पताल के बारे में फैली हुई अफ़वाह का शंका समाधान करना चाहा। डा० सेठी ने सारी बात तो बताई लेकिन यह ज़रूर बताया कि मोहल्ले में कुछ लोग उनसे दुशमनी मानते हैं इसलिये उनको जबंदस्ती रामी धोबिन के अपराध से जोड़ दिया गया है। उन्होंने यह भी बताया कि इसी बार उनके ऊपर एक जाली मोक़दमे में गवाही और जाली मेडिकेल सार्टीफ़िकेट देने का भी अभियोग लगाया गया था। दोनों मोक़दमों में वह छूट गये थे। इस मोक़दमें में भी छूट जायेगें।

बी० के० ने ऊपर से नीचे तक मिस्टर सेठी को देखा। उसे लगा कि जो कुछ भी मि० सेठी कह रहे हैं उसमें सत्य का अंश मात्र नहीं है। उसने कोई प्रति-उत्तर करना उचित नहीं समझा। केवल इतना ही पूछा—"मि० सेठी! आखिर बात क्या है। मुझे भी तीन साल इस मोहल्ले में रहते हो गये....आपकी तारीफ़ करने वाला कोई मिला ही नहीं...."

मि० सेठी हँस पड़े। उन्होंने कहा इसका बहुत बड़ा क़िस्सा है। सब जान कर तुम क्या करोगे। बस इतना ही समझ लो कि कुछ अच्छे लोगों की किस्मत में यश नहीं लिखा होता। वह केवल अपयश के लिये ही पैदा होते हैं। मुझे भी यश नहीं महज़ अपयश ही मिलता रहा है। ग़लती मैंने कोई नहीं की लेकिन तुम जानते हो मर्द ज़ात का होने के नाते जहाँ मर्द को गलतियों से उबर जाने की सुविधा होती है वहीं उसके सिर अधिक से अधिक आरोपों के लगने की संभावना भी होती है।

थोड़ी देर कुछ सोचकर बोले—"तुम अपनी ही बात लो...लोग जाने क्या-क्या कहते हैं रामी धोबिन को लेकर अगर वह धोबिन न होती तो तुम्हारी वही दशा होती जो मेरी है"

बी० के० डा० सेठी से इस प्रश्नोत्तर की आशा नहीं करता था लेकिन जैसे ही उन्होंने ऐसी बात की तो बी० के० ने कहा—"तो आप ने भी कभी किसी से प्रेम किया था"

"प्रेम क्या बला है यह तो मैं नहीं जानता, पर अफ़वाह का शिकार हुआ था...जवानी के दिन में। कौन ऐसा होगा जो किसी सौन्दर्य को देखकर उसकी ओर आकर्षित न हो ? मैं भी उसी प्रकार आकर्षित हो गया था। उस आकर्षण के कुछ नतीजे निकलने थे। लोग मुझे दोषी बनाकर चाहते थे मैं विवाह कर लूँ लेकिन मैं स्वतंत्र रहना चाहता था--बस इतनी बात है..."

बी० के० ने पूछना चाहा कि अब उस लड़की की क्या दशा है लेकिन जान बूझ कर नहीं पूछा। चुप चाप उनके साथ चलने लगा। चौरस्ते पर पहुँच कर डा० सेठी अपने घर की ओर मुड़ गये और बी० के० सड़क ही पर आगे पान वाली दुकान से सिग्रेट लेने के लिये खड़ा हो गया। बूढ़ा पान वाला जो काफ़ी दूर से दोनों को साथ बातें करते हुये देख रहा था बी० के० से बोला—"इस दुष्ट के साथ आप आज कहाँ फंस गये"

बी० के० ने कहा—"क्यों क्या यह डाक्टर इतना ख़राब आदमी है"

"जी...और आप क्या समझते थे..."

"एक डाक्टर..."

बूढ़ा पान वाला हंस पड़ा। बोला—"पता नहीं सरकार लोग कहते हैं इसकी डाक्टरी सनद भी जाली है..."

"डाक्टरी सनद कैसे जाली होगी...तुम लोग महज़ अफ़वाह को सच मानते हो बस...ग़ैर ज़िम्मेदारी की बात करते हो..."

पान वाला चुप हो गया। बी० के० अपने घर वापस चला गया।

●

वार्डर ने पूछा—"फिर उस रामी धोबिन का क्या हुआ ?"

"उसे तीन साल की क़ैद हुई। लोग कहते हैं कि जब वह जेल से आई तो उसकी शक्ल ख़राब थी। उसने मेरी तलाश की। जब मैं नहीं मिला तो वह पागल हो गई। उसने नर्स का काम भी छोड़ दिया। अब वह दिन रात इधर-उधर भटकती है। कुछ दिनों तक तो वह डा० सेठी

के घर रही लेकिन बाद में उन्होंने भी उसे निकाल दिया। अब पता नहीं कैसे वह फिर जेल में आ गई है।"

"सुना है इसने फिर कोई इसी प्रकार का कार्य किया है। लेकिन डाक्टरों का कहना है यह पागल है, इसलिये इसको उस जुर्म में सज़ा नहीं मिल सकती…"

बी० के० वार्डर की बात सुन कर मौन हो गया। वह सिर्फ अपने जंगले के लोहे के छड़ पकड़ कर बड़ी देर तक मौन खड़ा रहा।

आज जाने कहाँ से वह बिल्ला जिसने बिल्ली के चार बच्चे काट डाले थे फिर जेल की छत पर दीख पड़ा था। बी० के० ने उस बिल्ले को देखकर आँखे बन्द कर ली।

तीसरा ख़त : रामी धोबिन के नाम

●

मार्फ़त:
मीनाक्षी देवी
खुशहाल पर्वत
इलाहाबाद /:

प्रिय रामी,

उस दिन जब मैं इलाहाबाद में तीन साल रहने के बाद उस नगर से विदा ले रहा था तो चलते समय मैंने तुम्हारे उजड़े हुये घर की ओर देखा था और मुझे बड़ा ही अफ़सोस हुआ था। तुम्हारा पति जिसने मेरे घर को जिन्नात का घर बता कर अदालत में यह साबित करना चाहा था कि शादी के बाद से ही वह जिन्नों की प्रेयसि हो गई थी मेरे पास बार-बार आता रहा। कह रहा था कि उसने वह बयान सिर्फ़ मुझे बचाने के लिये दिया था। जब तब शाम को दारू पीने के लिये वह मुझ से पैसा ले ले जाता था। उस दिन जब मैं कलकत्ते जाने के लिये सामान नीचे उतार रहा था तो वह आया, बोला—"कल मैं रामी से मिलने जाऊँगा · क्या कह दूँगा उस से · "

मैंने उसे कोई उत्तर नहीं दिया। केवल उसके हाथ पर दो रुपया रख दिया। एहसान की क़ीमत इससे ज्यादा हो ही क्या सकती है। आदमी को अपने नशे की कीमत चाहिये। चाहे वह जिप्सी गर्ल का

का सुधारक हीरो हो, चाहे वह नेता हो, चाहे वह नेता न हो, चाहे वह मैं होऊँ या चाहे वह तुम्हारा पति हो। दारू के नशे में और उन सब नशों में कोई अन्तर नहीं होता। वह मेरा एक नशा ही तो था जो मैंने तुम्हें रामी धोबिन से रामो देवी मिडवाइफ़ तक की यात्रा में झेला था। इस नशे की हालत में आदमी को कुछ नहीं दीख पड़ता। वह महज़ एक यंत्र के समान किसी शक्ति द्वारा चलाया जाता है। बस।

जिस दिन से मैंने इलाहाबाद छोड़ा आज तक तुम्हारा कोई पत्र या पता नहीं चला। कुछ दिन हुये मुझे मेरे वार्डर ने बताया कि एक रामी धोबिन इलाहाबाद से यहाँ आई है। उसने यह भी बताया कि वह पागल हो गई है। रामी मैं जानता था कि तू पागल हो जायगी। प्रतिक्रियाओं के आघात सहना कठिन होता है। तुझे मैंने शिक्षित तो किया था किन्तु ज्ञान जब संस्कार के बिना प्राप्त होता है तो उसका दुरुपयोग होना स्वभाविक होता है। तूने भी उसका दुरुपयोग ही किया है और डाक्टर सेठी....वह तो उन सभ्य हत्यारों में से है जो केवल अपने स्वार्थ के लिये ही सब कुछ कर सकता है। आदमी का माँस तक बेच सकता है वह। उसकी हड्डी-हड्डी में केवल लोलुपता और कामुकता भरी पड़ी है।

पिछली बार कलकत्ते में जब वह मिला था तो उसने तुम्हारी सूचना मुझे दी थी। एक चीनी होटल में बैठा वह शराब पी रहा था और तुम्हारे रूप सौन्दर्य की प्रशंसा कर रहा था। मुझसे बोला "तुम मूर्ख थे जो तुमने उसके सहज रूप को नही स्वीकारा—" बोला—"अब मेरी समझ में आता है कि चण्डी दास जैसे भक्त ने धोबिन ही को अपनी परकीया क्यों बनाया....साँवले रङ्ग में भी इतना रस हो सकता है यह मैंने पहली बार अनुभव किया .."

मैं अवाक सा उसे देख रहा था। यह वही था न जिसने खुद अपने को तो बचा लिया था लेकिन तुमको तीन साल की सजा दिलवा दी थी। पहले मैं बहुत दिनों तक सोचता रहा कि तुमने कैसे उसकी नौकरी स्वीकार कर ली लेकिन आज मेरे सामने यह बात स्पष्ट हो गई है। शायद तुम्हारे पास

कोई चारा नहीं था। कोई डाक्टर तुम्हें अपने साथ रख नहीं सकता था। शायद तुम्हारी यही सब से बड़ी मजबूरी थी। मैं जानता हूँ रामी डा० सेठी दुनिया के उन आदमियों में से है जिसे आदमी या आदमियत से सरोकार नहीं है, जो केवल मांस को भोगता है और अपने प्रत्येक गुण की क़ीमत चाहता है। गुण भी उसमें विशेष नहीं है—वह केवल जीवन के हर खाने से अपने रस की सिद्धि ले लेना जानता है।

उस दिन होटल में भी वह मुझसे कुछ इसी तरह की बातें करता था। बोला - "यहाँ अकेले क्या करते हो····मुझे तुम्हारी तरकीब सब से ज्यादा पसन्द आई। सुनते हैं पुराने ज़माने में जटाधारी साधू भी यही किया करते थे। धन, सन्तान और लक्ष्मी के लिये इसी प्रकार योगनी सिद्ध करवाते थे। ज़माने की बात है। आज तुम्हारे जैसे सन्तों के लिये समाज सुधार का काम मिल गया है····"

सच रामी, उसकी बात सुनकर जी में आता था कि उसे दो लात मार कर होटल से निकाल बाहर करवा दूँ लेकिन शायद मैं इतने नीचे उतर नहीं सकता था। इस दुनिया की दो तस्वीरें मेरे सामने हैं—एक तो है उस बूढ़े का जो तुम्हें अपनी पत्नी घोषित करता था और चाहता था कि तुम्हारे बहाने उसे दारू पीने का रुपया मिलता जाय और दूसरा यह जो दुनिया के हर अच्छे काम में एक पहलू ऐसा भी निकाल लेता है कि जिसकी कल्पना मात्र किसी भी बड़ी से बड़ी नैतिक शक्ति को डिगाने में समर्थ हो जाती है।

अभी वह मुझसे बातें कर ही रहा था कि सहसा होटल में एक हंगामा खड़ा होगया। चारों तरफ़ से पुलिस ने पूरे होटल को घेर लिया। डा० सेठी का बैग जो सामने होटल के काऊन्टर पर रक्खा था उसे पुलिस ने ले लिया। उस बैग की तलाशी ली तो हज़ारों रुपये की दवायें थीं उसमें। पुलिस ने सब को जब्त कर लिया और फिर डा० सेठी के पास आकर बोले—"आप को क़ैद किया जाता है"

"लेकिन क्यों···?"

"आप को थाने में बताया जायगा।" पुलिस आफ़िसर ने कहा।

डा० सेठी ने कुछ जवाब सवाल नहीं किया। चला गया। मैं थोड़ा चकित था। मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि यह सब क्यों हुआ कैसे हुआ। होटल में जब हंगामा शान्त हुआ तो पता चला कि डाक्टर सेठी के पास सब जाली दवायें थीं। उसी होटल के मैनेजर ने बताया कि दूसरी लड़ाई के बाद से जाली दवाओं की कम्पनियाँ अनगिनत रूप में फैली हुई हैं। दवायें बिकती हैं किन्तु कोई भी उन जाली दवाओं की फ़ैक्ट्री नहीं जान पाता। आज यह डाक्टर पकड़ा गया है। कल तक वह फ़ैक्ट्री भी मालूम हो जायगी। सच रामी मैं महीनों इन्तज़ार करता रहा लेकिन न तो अखबार और न और कहीं, यह पता ही नहीं चला कि डाक्टर सेठी का आखिर हुआ क्या?

और जब इस संदर्भ में मैं तुम्हें देखता हूँ तो लगता है जो कुछ भी परिवर्तन तुम्हारी गति में हुई वह होनी ही थी। तुम्हें समाज में इज्ज़त चाहिये थी और तुमने सोचा वह इज्जत तुम्हें पैसे से ही मिलेगी। तुमने वही किया जो प्रायः दुस्साहसी लोग करते हैं। मैं यह नहीं कहता कि मान प्रतिष्ठा की प्यास बुरी है लेकिन मैं मान प्रतिष्ठा की भूख को भी उस दारू पीने वाले नशे बाज की कोटि में रखता हूँ। एक गिलास दूध और एक पैग शराब में कोई अन्तर नहीं है। एक शराबी सन्त हो सकता है और एक गिलास दूध पीने वाला एक भयंकर अपराधी। समाज सुधार के नाम पर ग़बन करने में और डाका डालने वाले में बहुत थोड़ा अन्तर है। तुमने भी लोगों की जान लेकर पैसा पैदा करना चाहा। अस्पताल की नौकरी छोड़ कर डा० सेठी का साथ देना चाहा। तुम्हें तो पागल होना ही था। पागल होने से तुम्हें रोक भी कौन सकता था।

खैर छोड़ो इन बातों को।

पिछले दिनों मैं अपनी कम्पनी के काम से देहरादून कालेज गया था। एक रोज़ यों ही टहलते घूमते मीनाक्षी से भेंट हो गई थी। वह वहाँ की एक महिला डिग्री कालेज में अब प्रिंस्पिल हो गई है। माल रोड

पर वह कार से कहीं जा रही थी। मुझे देखकर रुक गई। ज़बर्दस्ती कार में बिठा कर अपने घर ले गई। बड़ा अच्छा सा बँगला है—छोटा और सुन्दर। अभी तक उसने विवाह नहीं किया है। बोली उसे इसकी ज़रूरत भी नहीं है। मैंने पूछा—"क्या तुम्हारे जीवन में कोई आया ही नहीं....?"

बोली—"क्यों क्या मैं कोई पत्थर हूँ?"

"फिर यह असाधारण जीवन क्यों?"

"इसलिये कि मैं उन मंजिलों से गुज़र चुकी हूँ जहाँ दिवा स्वप्न की झिलमिली रहती है।"

मैं चुप हो गया रामी, लेकिन वह कहती गई। उसने कहा कि जब वह पढ़ती थी तब किसी के प्रति उसकी सहज श्रद्धा जागी थी "लेकिन वह इतना कायर निकल गया कि...." कहते कहते वह एक तीखी व्यंग्य-पूर्ण हँसी हँस कर मौन हो गई। मैं समझ गया लेकिन रामी मैं सच कहता हूँ....मैं इतने अपूर्व सौन्दर्य का साक्षी रहा हूँ कि फिर उसके बाद मुझे कोई सुन्दर लगा ही नहीं। बिल्कुल वैसी ही जैसी श्रद्धा की रूप-रेखा मैंने अपने मन में कभी बनाई थी लेकिन यदि मैं कहूँ कि उसकी उस अलौकिक सौन्दर्य के समक्ष मैं उसके जघन्य अपराधों को भी क्षमा कर सकता हूँ तो शायद लोग बात ही नहीं करेंगे। लेकिन वास्तविकता यही है। मैंने इसे मीनाक्षी से भी कह दिया। मैंने देखा उसके चेहरे पर न जाने कितने रंग आये और गये लेकिन मेरी इस स्पष्टवादिता से मीनाक्षी बड़ी प्रसन्न हुई थी। वह मुझे अपना घर दिखाने लगी। यह ड्राइङ्ग रूम, यह बेड रूम, यह किचन और वह स्टोर है। प्रत्येक कमरे को उसने बड़े सुरुचिपूर्ण ढङ्ग से सजा रक्खा था। खाने का समय था इसलिये वह बिना खाना खाये मुझे जाने ही नहीं देती थी। मीनाक्षी का सरल आग्रह मैं नहीं टाल सका। इस बीच उसने अपनी कई किताबें भी छपवा ली थीं। उसने मुझे अपने तीन चार उपन्यास दिये। उनमें से एक पुस्तक तो मेरे नाम समर्पित भी थी। बोली—"तुम्हारा पता ही नहीं मालूम था नहीं तो मैं यह किताब भेजती"

मैंने उसका कोई प्रतिवाद नहीं किया। मैं साहित्य की विशेषता क्या जानूँ। मैंने तो कभी इसकी कल्पना भी नहीं की थी। मैं तो पुस्तक ही देख कर हत-प्रभ रह गया। उसने अपनी एक दूसरी किताब भी उठाई। तुम मानों या मानों वह किताब तुम्हें समर्पित थी। मैं यह सब देख कर इतना हत-प्रभ हो गया था कि मुझे जैसे धन्यवाद के भी शब्द नहीं मिल रहे थे। मीनाक्षी ने कहा—"तुम लोगों ने मुझे भुला दिया लेकिन मैं तुम्हारी और रामी की सहायता कभी भूल नहीं सकती। रामी ने मुझे तुमसे मिलाया था और तुम यदि मुझे लाईब्रेरी में किताबों की सहायता न देते तो मैं एम० ए० नहीं पास कर सकती थी।"

रामी। उसी ने मुझे बताया था कि तुम डा० सेठी के साथ रह रही हो। सच रामी। वैसे तो मेरे जीवन में कई महत्वपूर्ण घटनाएँ घटित हुई हैं लेकिन इतनी महत्वपूर्ण घटना शायद ही कोई और घटित हुई हो। मुझ जैसे व्यक्ति को जिसका संसार में कोई और है ही नहीं, इतना भी स्नेह मिल जाना कम नहीं है। मैं तो मीनाक्षी से कभी उऋण हो ही नहीं सकता। एक बार जी में आया कि मीनाक्षी के हाथों को चूम लूँ, उसके सूने उन्नत ललाट को बर्बस तिलक रंजित कर दूँ लेकिन तुम सच मानों मेरा जी रुक ही गया। मेरी आँखों में आँसू आ गया। मुझे लगा मैं एक बहुत बड़े सैलाब में महज एक तिनके सा बहता चला जा रहा हूँ। सहसा मीनाक्षी डाइनिंग टेबुल पर जाकर बैठ गई। खाना लग चुका था। मीनाक्षी ने मुझे बुलाया और मैं यंत्रवत जाकर खाने की मेज पर बैठ गया। खाना खाते-खाते मैंने पूछा—

"और तुम्हारी ममी कहाँ है....."

"वह तो इलाहाबाद ही में है....मैंने बहुत कहा लेकिन वह आती ही नहीं। कहती है मैं लड़की की कमाई नहीं खाऊँगी"

चलते समय मीनाक्षी ने मुझे एक-एक प्रति अपनी पुस्तकों को दी। मुझे सामान लेकर सीधे स्टेशन जाना था इसलिये वह खुद अपनी मैरून रङ्ग की गाड़ी में बैठ कर मेरे साथ आई। गाड़ी छूटने के समय तक रही

और फिर गाड़ी छूटने के बाद चली गई। बाहर रेलवे लाइन के ठीक समानान्तर एक सड़क गई है। मैं अपने कम्पार्टमेन्ट में बैठा मीनाक्षी की गाड़ी की बत्ती बड़ी देर तक देखता रहा। सड़क थोड़ी दूर लाइन के साथ चलकर दूर और दूर होती जाती है। मुझे लग रहा था कि बर्सों बाद मिलने के कारण जो दूरी सिमट आई थी वह अब फैलती जा रही है।

अगले स्टेशन पर एक अजीब घटना हुई।

मैंने देखा कि जो आदमी ठीक मेरे ऊपर बर्थ पर बिस्तर बिछाये सो रहा था वह डाक्टर सेठी थे। मैंने उन्हें देखकर आश्चर्य प्रकट किया तो वह स्वयम् चक्कर में पड़ गये। मैंने स्पष्ट रूप से पूछा—"आप तो जेल में थे।"

"क्यों?" कुछ आश्चर्यजनक मुद्रा बना कर वह बोले।

"क्यों उस जाली दवाओं के मोक़दमे में क्या हुआ"

मेरी इस छोटी सी जिज्ञासा को सुनकर डा० सेठी ठहाका मार के हँस पड़े बोले—"बस इतनी सी बात पर तुम परेशान हो····तब से मुझे पुलिस ने सात बार पकड़ा है लेकिन वह कुछ कर नहीं पाई"

"क्यों?" मैंने पूछा

"इसलिये कि पुलिस यह साबित नहीं कर पाई कि वह दवाओं का थैला मेरा था।"

"वह तो आप का था ही।"

"मैंने जब इन्कार कर दिया तब तो पुलिस के हाथ पैर फूल गये····

मैं उन्हें टक-टक-टक, टक देखता रहा—और वह हँस रहे थे।

सच मानो रामी मेरी समझ में नहीं आया कि डा० सेठी क्या कह रहा था। थैला उसका, दवाएँ उसकी, सारा होटल देख रहा था कि थैला उसका है लेकिन उसने उससे साफ़ इन्कार कर दिया। पुलिस मोक़दमे में यह साबित नहीं कर सकी कि वह जाली दवाओं का थैला उसका ही है और वह छूट गया।

"आप इस तरह सफ़ेद झूठ कैसे बोल लेते हैं····"

"मैं नहीं बोलता····बोलना पड़ जाता है।"

मैं उसे एक टक देखते रहने के सिवा कुछ कह नहीं पा रहा था। वह कहता जा रहा था—

"मैं भी इन्सानियत में विश्वास करता हूँ····इसलिये मैं उन जाली दवाओं की फ़ैक्टरी का पक्ष लेता हूँ····अगर इनका पक्ष न लूँ तो न जाने कितने भूखों मर जायँ····आप को क्या आप लोग तो कमा खा लेते ही हैं।"

गाड़ी तेज़ गति से चली जा रही थी। सेठी तरह-तरह की बातें करता जा रहा था। मैंने बीच में फिर पूछा—"और रामी कहाँ है ?" —मेरे इस प्रश्न से ही वह कुछ बेचैन हो गया। बोला—"कहीं होगी····"

"कहाँ होगी····?"

"उसी शहर में होगी····?"

"अब आप के यहाँ नहीं रहती····?"

"मेरे यहाँ क्या करेगी रह कर····?"

"आप तो उससे शादी करना चाहते थे····?"

मेरी इस छोटी सी जिज्ञासा से वह चिढ़ उठा। बोला—

"शेर का कोई मुँह नहीं धोता····मैंने आज तक कभी भी यह बन्धन नहीं स्वीकार किया"—और फिर बोला—

"मैंने उसे पेन्शन दिया है····अब उसके लिये मेरे पास कोई इलाज नहीं है ?"

सच रामी मैं उस वृद्ध डाक्टर की बात सुनता रहा। अगला स्टेशन आया। मि० सेठी ने बिस्तर लपेटा और बाई-बाई करते नीचे उतर गया।

और आज जब मैं यह सोचता हूँ कि ऐसे पतित व्यक्ति के साथ तुमने अपना जीवन बिताया है तो मुझे बड़ा क्षोभ होता है। लगता है

लाख चेष्टा की जाय जिप्सी की लड़की जिप्सी ही रहेगी····रामी धोबिन रामी धोबिन ही रहेगी कभी मुझे ऐसा भी लगता है कि चण्डी दास की रामी धोबिन धोबिन नहीं थी····वह कोई और थी····सहज शायद कभी भी परिष्कृत नहीं होता सरल को कभी भी दृष्टि नहीं मिलती। लोग मुझसे कहते हैं कि तुम्हारे जीवन को मैंने ही नष्ट किया लेकिन रामी मैंने केवल एक क्रान्ति करनी चाही थी। मुझे और कुछ नहीं चाहिये था। मैं किसी भी प्रकार की फल की आशा नहीं करता था क्योंकि—

फलेर आशा करे नासा फूलेर मधुपान करे से
सेई त रसिक जाना

लेकिन रामी मुझे दुख है मैं रसिक नहीं हो सका। सारा जीवन बिना रस के ही बीत गया। यदि होता तो निश्चय ही तुम्हारी यह दशा नहीं होती। आज जब मेरे मरने में केवल चौबीस घण्टे बाक़ी हैं तब मैं अपनी यह निरीहता अनुभव कर रहा हूँ। सोचा था किसी तरह तुम्हें एक बार देख लेता लेकिन वह सम्भव नहीं है इसलिये यह पत्र लिख रहा हूँ। मेरा विश्वास है कि इस से तुम्हारी मानसिक वेदना ठीक हो जायगी।

तुम्हारा
बी० के०

श्री अनुज शर्मा अब तक मीनाक्षी की तीसरी कहानी पढ़ चुके थे।

बी० के० के विषय में एक नयी जानकारी मिली। जिप्सी नामक उपन्यास उन्होंने पढ़ा ही नहीं था। उनके मन में सहज जिज्ञासा उठी। बगल में कई किताब की दुकानें थी उन्होंने जल्दी-जल्दी जाकर वहाँ से जिप्सी की एक प्रति खरीद ली और काफ़ी हाऊस में आकर बैठ गये। आठ बज चुके थे। राज के आने का समय हो गया था। उसकी आँखें दरवाजे पर एक टक लगी हुई थीं कि सहसा प्रो० राज ने प्रवेश किया। अनुज के हाथ में जिप्सी देख कर बोले—"आज कल आप बहुत पढ़ रहे हैं।"

"कहाँ पढ़ पाता हूँ वह तो इस अध्याय को समझने के लिये मैंने जिप्सी खरीदी है ··"

"क्या जिप्सी कोई कोष है ··?"

श्री अनुज शर्मा ने कोई उत्तर नहीं दिया। मुस्करा कर रह गये। राज ने पूछा—"क्या मीनाक्षी आई थी····?"

"आई तो थी लेकिन काफ़ी देर तक प्रतीक्षा करने के बाद चली गई ··"

राज का चेहरा उतर गया। उसे लगा आज की शाम बिलकुल बेकार चली गई। वह कुछ अनमना होकर बेयरे को देखने लगा कि सहसा डा० सैम्युअल भी आ गये। उनकी चिर-आक्रान्त पाइप सुलग रही थी और चेहरे पर वैसी ही हल्की-फुल्की सम्पन्नता विराजमान थी। बोले—

"मि० अनुज आज आपकी कहानी कहाँ तक बढ़ी····?"

"तीसरे अध्याय तक पहुँची है·····"

"क्या है तीसरे अध्याय में····?"

"एक बहुत बड़ी खोज·····"

"कौन सी विशेषता ?"

"यही कि इस देश में सुधार नहीं हो सकता"

"तो क्या हुआ उद्धार तो हो सकता है ?"

राज सैम्युअल की बात सुन कर हँस पड़ा। मि० अनुज कुछ भी नहीं बोले। उनके दिमाग़ में रामी धोबिन, मीनाक्षी, डा० सेठी यही आकृतियाँ घूम रही थीं। वह प्रायः मौन रहे।

राज और सैम्युअल ने भी उन्हें ज्यादा परेशान नहीं किया। लोग निश्चित समय से पन्द्रह मिनट पहले ही उठ गये। मि० अनुज भी उन्हीं के साथ उठे। रास्ते भर उनके दिमाग़ में चण्डी दास के भजन गूँजते रहे।

●

काफ़ी हाऊस की चौथी शाम



आज मलयानिल मृदु-मृदु बहत निर्मल चाँद प्रकासा
भाव भरे गद-गद चामर डुलाईयत पासे रहे चण्डी दासा

हूँ यह पुरुषोत्तम भूटानी के नशे में डूबे हुये शब्दों का भग्नावशेष यह दाग़ है उस अन्धी रात का जब नागपुर में पुलिस मुझे पकड़ कर ले गई थी और यह है एक निशान जो मिस्टर खरे के प्रणय में दाग बन कर रह गया है

एक होटल का गिलास
एक प्लेट सासर कप
एक आँधी तूफान में घायल हुये फल
एक संघर्ष में टूटा हुआ जिस्म
....
....
....

शायद यही मुख्य कारण था। इसीलिये वह घर से कुछ जल्दी भी चल पड़े। रास्ते में एक मित्र के यहाँ बैठ गये। कुछ गप-शप की और फिर सीधे काफी हाऊस पहुँच गये। देखा पूरी पार्टी आज भी उनसे पहले ही आकर बैठ गई है। हाँफते हुये उन्होंने काफी हाउस में प्रवेश किया। अपनी मेज़ के चारों ओर लोगों को बैठे देख कर उनके मन में वही प्रसन्नता हुई जो किसी राजनैतिक नेता को अपने अनुयाइयों को बैठे देख कर होती है। रूमाल से पसीना पोछते और अपनी क़मीज़ की बाँह सरकाते वह खाली कुर्सी पर आकर बैठ गये। उन्हें लगा जैसे उस मेज पर बैठे सभी लोग किसी गंभीर चिन्ता में मग्न हैं। थोड़ी देर उन्हें वातावरण को समझने में लगना ज़रूरी था। इसी बीच मि० खन्ना ने कहा—"इस मोक़दमें में अपनी जीत के लिये यह साबित करना ज़रूरी है कि बी० के० एक अपराधी प्रकृति का व्यक्ति है....उसे परपीड़ा में ही आनन्द मिलता है....."

"लेकिन इसके लिये सबूत कहाँ मिलेगा...." भल्ला ने कहा

"सबूत है—"

"कहो—कैसे—"मि० चतुर्वेदी ने पूछा।

"पहला तो रामी धोबिन का किस्सा है। उसको पागल बनाने में बी० के० को परपीड़ा वादी सुख मिला है—वह उसे बचा सकता था। उसे स्वीकार करके उसके जीवन के समस्त्त अभावों और प्रतिष्ठा की भूख को शान्त कर सकता था लेकिन उसने उसे मजबूर कर दिया कि वह एक दम अपराधी हो जाय—हत्या, व्यभिचार और अपवाद का जीवन बिताये—"

मि० अनुज को मि० खन्ना का यह तर्क सुनकर एक दम आवेश आ गया। उनके ओठ फड़कने लगे। आँखें नम हो गई। दांत पीसने लगे और वह अपनी साधारण हकलाहट के साथ कुछ कहने ही वाले थे कि बीच में मि० भल्ला ने कहा—

"और दूसरा—"

"और दूसरा क़िस्सा है उस ज़रूरत से ज्यादा खूबसूरत औरत का जिसे वह बराबर परपीड़ा की भावना से ही प्रेम करता रहा—"

"आज की बहस में क्या आपने इसीलिये उसके नाम लिखे गये पत्र का हवाला देते हुये मीनाक्षी की कहानी के उदाहरण प्रस्तुत किये थे—"

"जी—कल मुझे यही सिद्ध करना है—"

"लेकिन यह मृतात्मा के साथ अन्याय होगा—"

मीनाक्षी ने प्रतिवाद करते हुये कहा। मि० खन्ना ने एक विचित्र प्रकार की मुद्रा में हँसते हुये मीनाक्षी की ओर देखा और बोले—

"कानून, न्याय, अन्याय, और सबूत पर आधारित होता है। मुझे सबूत चाहिये—ऐसा सबूत जो मि० भल्ला को बचा सके, मि० चतुर्वेदी की नौकरी बहाल करा सके और मि० दास की सर्विस बुक के इन्दराज को रद्द करा सके—"

अब तो मि० अनुज का धीरज जैसे छूट चुका था। उन्होंने अपने उद्दात—धीर मन का आश्रय लेते हुये कहा—"सत्य छिपाया नहीं जा सकता। आप लोगों का यह षड़यंत्र खुल कर रहेगा—"

"सत्य क्या होता है मि० अनुज—" मि० खन्नाने पूछा।

"सत्य शाश्वत होता है—उसे कोई भी स्वार्थ दबा नहीं सकता—"

"क्या स्वार्थ सत्य नहीं है?"

अब तो मि० अनुज जैसे सटपटा गये। दूसरी ओर से मि० भल्ला ने कहा—"रोशनी ही सत्य नहीं है मि० अनुज अन्धकार भी सत्य ही है—"

"अन्धकार को सत्य मानने वाले राक्षस होते हैं—"

"राक्षस भी तो सत्य होते हैं न—"

मि० अनुज अब गड़बड़ा गये। क्या उत्तर दें उनकी समझ में नहीं आया। वह चुप हो गये। मेज़ पर एक ठहाके की हँसी हुई और मिस्टर अनुज का चेहरा उतर गया।

बेयरा अब तक काफ़ी दे गया था। साथ में नाशता भी। दिन भर

के भूखे लोग उस पर टूटे पड़े। लगभग दस मिनट तक केवल छूरी काँटे की ही आवाज़ सुनाई देती रही। सब लोग भूख रस में डूबे हुये थे।

सहसा मौन भंग करते हुये मि० खन्ना ने कहा—

"कहानी या उपन्यास की दृष्टि से भले ही आप बी० के० के साथ दया या करूणा दिखलाईये लेकिन मोक़दमे की दृष्टि से मुझे तो नितान्त कठोर होना पड़ेगा····मैं साबित करूँगा कि बी० के० ख़ूनी और नितान्त जाबिर क़िस्म का आदमी था····अपनी ही करनियों से वह इतना ऊब चुका था कि उसने यह आत्म हत्या की घटना फाँसी देने वाले के नाम लगा कर खुद मर गया····।"

"यह तो उसके मरने की पुष्टि हुई लेकिन हम लोगों की लापरवाही जायज़ थी यह आप कैसे सिद्ध करेंगे····।"

"इसी बात से आपकी लापरवाही भी सिद्ध हो जायगी।"

"लेकिन आज के बयान में जज ने जो रूख़ लिया वह तो बड़ा खतरनाक था····।"

"क्या ख़तरनाक था ?" मि० खन्ना ने कहा····।

"यही कि उसके दिमाग़ में यह बात बैठ गई है कि फाँसी लगते समय हम लोगों में से कोई भी फाँसी घर में नहीं था····" मि० चतुर्वेदी बोले।

"और अगर मैं यह कहूँ कि····हम लोग वहाँ मौजूद थे····फाँसो घर के भीतर कोई आदमी पहले से मौजूद था····" मि० भल्ला बोले।

मि० भल्ला की बात सुनकर मि० खन्ना थोड़े मुस्कराये। कुछ देर तक तो मौन रूप से बैठे रहे फिर बोले–"यह भी संभव हो सकता है लेकिन हम इस स्थिति को भी नहीं स्वीकार करेंगे क्योंकि किसी भी गैर ज़िम्मेदार आदमी का वहाँ होना भी आफ़िसर्स की लापरवाही ही साबित करेगा····।"

"फिर जुर्म आयेगा किस पर····।"

"यही तो मैं सोच रहा हूँ····फाँसी लगाने वाला आदमी भी अगर ज़िन्दा होता तो भी आप लोग बच सकते थे लेकिन वह भी तो नहीं रहा····।"

मीनाक्षी अभी तक चुप थी। मि० खन्ना की बात सुनकर बोली—"बी० के० की डायरी भी तो मैंने आपको दी है····क्या उसमें कुछ इस विषय से सम्बन्धित बात नहीं कही गई है!"

मि० खन्ना जैसे बड़ी देर से मीनाक्षी से यह वाक्य सुनने के लिये उत्सुक थे। जैसे ही मीनाक्षी ने यह कहा वैसे ही छूटते हुये बोले—

"उस डायरी में दूसरों के लिये बहुत कुछ कहा गया है। स्वयम् लेखक ने अपने विषय में कुछ लिखा ही नहीं है—"

"जिन्हें आप दूसरा कहते हैं वह भी तो बी० के० के ही मित्रों और परिचितों में से होंगे····उनके माध्यम से भी तो बी० के० ने अपने विषय में कुछ न कुछ कहा होगा····"

मि० खन्ना चुप हो गये। थोड़ी देर तक हाथ में लिये मोक़दमे की फ़ाइल उलटते रहे फिर बोले—"कहाँ तक काग़ज़ी घोड़ा दौड़ाएँ····सीधा सबूत तो कहीं मिलता नहीं घुमा फिराकर मतलब की बात निकलवानी पड़ती है।"

अब तक मि० अनुज खामोश बैठे थे। सहसा चीखकर बोले—

"मि० भल्ला आप लोग अदालत से न्याय लेते हैं या उसे धोखे और चकमे में डालकर जो कुछ सत्य है उस पर पर्दा डालते हैं····"

मि० खन्ना ने फिर व्यंग्य भरी मुद्रा बनाकर कहा—

"देखिये मि० अनुज हम लोग तो अपरिवर्तनशील सत्य मानते नहीं····हमने तो सदैव ही सत्य को परिवर्तनशील माना है····कभी वह इतना डाईनेमिक होता है कि अपने आप संदर्भानुकाल बदल जाता है और कभी उसे अपने अनुकूल बदलना पड़ता है····"

"आप लोग जालसाज़ी करते हैं न्याय नहीं, अन्याय की माँग करते हैं, न्याय के नाम पर अन्याय को घोषित करते हैं····"

श्री खन्ना मि० अनुज के इस विरोध को समझ रहे थे लेकिन वह

जानते थे कि हर वह व्यक्ति जो क़ानून को जानता नहीं होता और वकालत के पेशे से सम्बन्धित नहीं होता वह प्रायः इन्हीं प्रतिक्रियाओं पर आधारित होता है। क़ानून के शब्दों से नया अर्थ निकाल लेना कम चमत्कार पूर्ण नहीं होता। आदमी के दोनों पक्ष हैं क़ानून बनाना और तोड़ना। तोड़ने वाला सदैव बुरा नहीं होता।

मीनाक्षी जो आज मि० अनुज से सहमत थी उसे भी यह लग रहा था कि कहीं इस स्वतन्त्र न्याय की माँग में एक दुराग्रह निहित है जो न्याय को घोषित नहीं करता। वह भी कुछ सोच कर बोली—

"क्या क़ानून का अर्थ तथ्यों को मोड़ना है ?"

"नहीं, लेकिन क़ानून की उदारता तथ्य के दूसरे पक्ष को जाने बिना संभव नहीं होती''''हम लोग सत्य के विभिन्न पक्षों को प्रस्तुत करते हैं अब यह जज पर निर्भर करता है कि वह जो चाहे न्याय करे''''।"

मीनाक्षी कुछ उत्तर देने ही वाली थी कि सहसा मि० चतुर्वेदी उठ खड़े हुये। बोले—"अब हम लोगों को चलना चाहिये।"

मिस्टर चतुर्वेदी के इस वाक्य ने जैसे उथल-पुथल मचा दिया। सब के सब उठ खड़े हुये केवल मीनक्षी और मि० अनुज ही उस मेज़ पर रह गये। मि० अनुज ने पिछले दिन वाली किश्त मि० खन्ना को पहले ही दे दिया था फिर भी आज मि० खन्ना वह कहानी देना भूल गये। मि० अनुज भी कुछ भीतर से इतने उदास से थे कि वह स्वयम् पुस्तकों को लेना ही भूल गया। लेकिन जब आधीरता की सीमा नहीं रही तो उन्होंने चलते-चलते मि० खन्ना से कहा—"और अगली किश्तें"—मि० खन्ना जैसे चौंक गये। उन्होंने अगली किशत भी दे दिया। मि० अनुज उस पढ़ने लगे।

मीनाक्षी कब चली गई इसे वह देख ही नहीं पाये।

आज मलयानिल मृदु मृदु-बहत निर्मल चांद प्रकासा भाव भरे गद-गद चामर डुलाईयत पासे रहे चण्डी दासा

चौथी कहानी

●

प्रेम रस अर्थात्
जरूरत से ज्यादा
ख़ूबसूरत औरत
और
बी० के०

बी० के० की ज़मानत की खबर जेल में पाँच छः दिन से चल रही थी। जो वकील जेल में बी० के० से मिलने आया था उसे किसी महिला ने भेजा था। बी० के० के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब उसने सुना कि वह महिला कोई और नहीं ममता है।

झुम्मन मियाँ को उसी दिन सज़ा मिली थी और सजा की बात यह थी कि वह बी० के० का एक ख़त बाहर ले जाने के लिये अपने पास रक्खे हुये था। वार्डर को शुबहा हुआ उसने झुम्मन मियाँ की तलाशी ली। तलाशी में कुछ नहीं निकला सिर्फ एक बण्डल बीड़ी, एक माचिस, अफ़ीम की एक पुड़िया और बी० के० का लिखा हुआ एक ख़त। वार्डर को बीड़ी के बण्डल से नहीं शिकायत थी क्योंकि अक्सर वह झुम्मन मियाँ से बीड़ी लेकर पीता था। उसे अफ़ीम से भी शिकायत नहीं थी क्योंकि जिस तरह झुम्मन मियां जेल में रोज़ अफ़ीम खाते थे उसी प्रकार वह बीड़ी में भर कर रोज़ चरस पीता था। उसके लिये इसलिये इन चीज़ों का कोई महत्व नहीं था। महत्त्व था उस बन्द लिफ़ाफ़े का जिसे बी० के० ने बाहर

भेजने के लिये दिया था। वार्डर ने पत्र झुम्मन मियाँ से छीनना चाहा लेकिन झुम्मन मियाँ ने अपने पठानी ताव में वार्डर को बुरी तरह पीटा। शोर हंगामा मच गया। कई वार्डर और डिप्टी जेलर आ खड़े हुये। झुम्मन मियाँ को पाँच सात वार्डरों ने पकड़ लिया और मशक बाँध कर धूप में डाल दिया। ख़त ले लिया गया। आफ़िस में खोल कर पढ़ा गया।

ख़त ममता के नाम था।

एक हफ़्ते हुये आगरे के ही किसी मोहल्ले में ममता ने जेल के पते से भेजा था। उस ख़त में उसने जो कुछ भी पूछा हो, बी० के० के ख़त में उस भद्दे कुरूप अपाहिज व्यक्ति का हवाला था जो रोज़ दीवार लाँघ कर उससे मिलने आता था और उसे सात बच्चों का पिता बनने के लिये मजबूर करता था। ममता को उसने लिखा था --

"मैं नहीं जानता था कि यह आदमी जिसका नाम पुरुषोत्तम है वही है जिसे मैंने बम्बई के होटल में तुम्हारे साथ देखा था। मैंने जब देखा यह बड़ा तन्दुरुस्त था लेकिन यहाँ रात के अन्धेरे में जब वह मुझसे मिलने आता था तो उसकी शकल तो दिखाई नहीं पड़ती थी केवल आवाज़ से ही मैं उसे पहचानने की कोशिश करता था। मैंने कई बार तुम्हारा नाम लेकर उससे पूछा भी लेकिन वह कभी कुछ बोलता ही नहीं था। ऐसी बात करता था जैसे वह तुम्हें जानता ही नहीं। आज तुम्हारे पत्र से पता चला है कि यह वही मोटा भद्दा आदमी है जिसे तुम भूटानी कहती थी। आज यह भी पता चला कि इसका नाम पुरुषोत्तम है।"

दूसरे पैराग्राफ़ में लिखा था :

"मैं आज भी तुम्हारा आभारी हूँ। सौन्दर्य अपने आप में एक आत्मा को परिष्कृत करने वाली वस्तु है। उसने मुझे आत्मिक सुख दिया है ऐसा सुख जो मुझे फिर जीवन में नहीं मिल सका है। उसका मैं ऋणी हूँ और रहूँगा। विश्वास रक्खो मैं उसके लिये जो कुछ भी होगा करूँगा..."

झुम्मन मियाँ जो मशक बन्धे हालत में धूप में पड़े हुये थे नीचे तपती जमीन और ऊपर जेठ की दोपहरी की धूप में कबाब हुये जा रहे थे।

उधर जेल वालों को यह सन्देह था कि कहीं बी० के० कोई ऐसी साजिश न कर बैठे कि पुरुषोत्तम जेल से भाग निकले। बरसों बाद पुरुषोत्तम पकड़ा गया था और पुलिस उसे घेर कर रखती थी। आश्चर्य तो यह था कि वह तब भी दीवार पार करके बी० के० से रात में मिल लेता था।

बी० के० को जब यह ख़बर मिली तो वह थोड़ा परीशान हो गया। उसे लगा कि उसकी ज़मानत रद्द की जायेगी लेकिन उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब ठीक तीन दिन बाद बी० के० को हवालात से छुट्टी देने का परवाना आ गया। जब वह जेल से निकला तो उसने देखा एक चाकलेट रंग की गाड़ी के पास ब्रोकेड की साड़ी पहने, धूप का चश्मा लगाये ममता बाहर इन्तजार कर रही थी। बी० के० जैसे ही बाहर आया, ममता ने बढ़ कर उसका स्वागत किया। बी० के० उसकी मोटर में बैठ गया और गाड़ी जेल के फाटक से शहर की तरफ़ चल पड़ी। रास्ते में बी० के० ने पूछा—"तुम्हें कैसे पता चला कि मैं यहाँ जेल में हूँ..."

"क्यों क्या यह ख़बर कोई छिपा के रक्खी गई थी..."

"नहीं मैं ने पूछा..."

"मुझे मिसेज़ सैम्सन ने सूचित किया...मैं बाहर गई थी...जब नागपुर वापस आई तो मिसेज़ सैम्सन का ख़त मिला...वह मि० सिंहल के नाम था। वह अब नहीं है। मैं थी। मैंने ख़त पढ़ा। यहाँ चली आई..."

"मि० सिंहल ने आत्म हत्या क्यों की...क्या यह सच है कि वह तुम से अत्यधिक विक्षिप्त थे..."

ममता थोड़ी देर चुप रही फिर बोली—"क्या तुम मुझे एकदम से ज़रूरत से ज्यादा बुरी औरत समझते हो....?"

"मैं किसी को कुछ नहीं समझता लेकिन कुछ बातें होती हैं जो सन्देह और शंका को जन्म देती है..."

"और वह बात हर हालत में मुझे ही बुरा साबित करती है है...बी० के० मैं कठोर नहीं हूँ लेकिन जाने क्या बात है...मेरे जीवन में

जो भी आया उसने मेरे रूप की, मेरे सौन्दर्य की प्रशंसा की लेकिन दूसरे ही क्षरण उसके भीतर जाने कैसी प्रतिहिंसा की आग जलने लगती है···मेरे ऊपर सब अविश्वास करने लगते हैं···"

कहते-कहते उसने मोड़ पर स्टीयरिंग घुमाई। मोटर तेजी से आगे निकल गई। जेल के बाहर लग-भग दो महीने बाद बी० के० आया था। उसे सारी दुनिया बदली हुई लगती थी। अपने बग़ल में बैठी हुई ममता को स्नेह मुग्ध होकर देख रहा था। ममता कहती थी—"जिस पिता और बहन के लिये मैं इतनी यातनायें भोगती थी, पुरुषोत्तम के कठोर से कठोर व्यवहार को सहन करती थी मेरे उन्हीं पिता और बहन को बराबर यह संदेह था कि मैं उनको छोड़ कर भाग जाऊँगी····मैंने पुरुषोत्तम पर विश्वास किया वह भी बराबर यही समझता रहा कि मैं किसी भी दिन उसे धोखा देकर चली जाऊँगी, मि० सिंहल से मैंने शादी की लेकिन वह भी कुछ दिनों बाद मुझ पर सन्देह करने लगे····नागपुर के एक दूसरे बैरिस्टर मि० खरे भी घर बराबर आते जाते थे। मैं उनसे खुल कर मिलती थी····मुझे नहीं मालूम था कि मि० खरे के इस आने जाने पर कोई नया विष बवण्डर खड़ा हो रहा है····लेकिन मि० सिंहल बिना कोई प्रतिवाद किये घुलते रहे और जब मैंने पिछले जाड़ों में बम्बई जाने का प्रस्ताव बनाया तो भी उन्होंने कुछ नहीं कहा। मुझे अपने वृद्ध पिता और बहन से मिलना था। मैंने कोई कारंण नहीं समझा कि मैं न जाऊँ। भाग्य या दुर्भाग्य यह हो गया कि जिस गाड़ी में मैं बम्बई जा रही थी उसी में मि० खरे भी जा रहे थे। हमारी सीट एक ही कम्पार्टमेंन्ट में थी····फिर भी मि० सिंहल ने कुछ नहीं कहा····मैं चली गई। मेरा अपराध केवल इतना है कि मेरे पास उन्होंने तीन खत भेजे तीनों में वापस आने के लिये लिखा लेकिन वहाँ पहुँचने पर मुझे पुरुषोत्तम ने इतना अधिक जकड़ लिया कि मेरे लिये निकलना कठिन हो गया था। मेरी अन्धी बहन से उसने शादी कर ली थी····मैं जब भी चलने का नाम लेती वह बहन को प्रताड़ित करना शुरू कर देता···'अन्धी औरत

पाँच-पाँच बच्चे उसपर दो पहली बीबी के····दया के बदले शरीर का सौदा····पिता पहले ही शराब पीते-पीते मर चुके थे····मैं इधर इस दुविधा से निकलने की चेष्टा कर ही रही थी कि सहसा एक रोज़ तार मिला—
"मिस्टर सिंहल डेड"

कार होटल के सामने खड़ी हुई। वेटर ने मोटर का दरवाजा खोला। ममता उसमें से उतरी। पीछे-पीछे बी० के० भी उतरा। दोनों होटल के कमरे में चले गये। बी० के० कुर्सी पर बैठ गया। ममता पलंग पर अध-लेटी सी लेट गई। चेहरे से वह अत्यधिक थकी हुई लगती थी। चेहरे पर एक हल्की झाई सी आ गई थी लेकिन वह भी उसके चम्बर्ड रूप-रंग को और अधिक उभार रही थी। ममता ने धूप का चश्मा उतार दिया था। बी० के० को लगा ममता आज भी उतनी ही सुन्दर है जितना कि वह एक साल पहले थी। ममता ने कहा—

"और तुम जाली दवाओं के चक्कर में कैसे पड़ गये ?"

"मैं नहीं पड़ा ममता—मैं फंसाया गया हूँ—डा० सेठी के षडयंत्रों का यह परिणाम है। वह इलाहाबाद से बराबर मेरे पते पर पत्र व्यव-हार करता था। कलकत्ते में जाली कम्पनी का एजेन्ट मेरे यहाँ हर हफ़्ते मि० सेठी का भाई बन कर आता था और पत्र ले जाता था। मैं समझता था भाई-भाई का पत्र है। मैंने कभी ध्यान नहीं दिया लेकिन सहसा एक रोज़ पुलिस आ धमकी और आगरे की पुलिस के वारेन्ट के साथ मुझे कैद कर लिया गया तबसे मैं जेल में ही पड़ा सड़ता रहा। मिसेज़ सैम्सन ने बहुत कहा लेकिन मैंने किसी पैरवी की आवश्यकता नहीं समझी····आखिर पैरवी की ज़रूरत भी क्या थी····?"

ममता चुप-चाप सुनती रही। उसे लगा कि यह दुनिया महज़ इन्हीं चीज़ों पर आधारित है क्या ? यह चोरी का सोना, यह जाली दवायें, यह आत्म-विश्वास के अभाव में आत्म-घाती प्रवृत्तियाँ····यह कहाँ ले जा रही हैं हमें ·· वह कुछ ऊब कर बोली····

"इस से मुक्ति कहाँ है ?"

"यही तो मैं भी सोच रहा हूँ... इससे मुक्ति कहाँ है ?"

और तभी कमरे की घण्टी बजी। एक वकील साहब भीतर आये। ममता ने उनसे बैठने के लिये कहा तो वह बी० के० को घूरते हुये पास वाली कुर्सी पर जा बैठे। ममता ने अपना वैनेटी बैग खोला। एक सौ रुपये का नोट निकाल कर वकील साहब को दे दिया। वकील साहब ने खड़े होकर सलाम किया। नोट को जेब में रख कर वह सीढ़ियों से नीचे उतर कर चले गये। ममता खामोश निरीह-सी वहीं लेटी रही। उसे लगता था उसके इर्द-गिर्द कर सारा वातावरण बड़ी तेज़ी से नाच रहा है। उसने कस कर अपनी आँखे मींच लीं। बी० के० कमरे के बाहर सड़क पर चींटियों की तरह रेंगते, डरते, लड़खड़ाते आदमियों की दौड़-धूप में खो गया।

थोड़ी देर बाद बी० के० ने ममता का सर सहलाते हुये कहा—

"क्या सोच रही हो......?"

"यही सब बातें.....लगता है एक साथ कई अफ़वाहें उभर कर आ गई हैं और शरीर के इंच-इंच मांस को नोच रही हैं..."

और तभी बाल हटाने पर बी० के० ने देखा—उसके सर के बीचों-बीच एक बड़ा भारी ज़ख्म अपना दाग़ छोड़ गया था। बी० के० ने पूछा—

"क्या यह किसी फोड़े का दाग़ है...?"

"नहीं..."

"फिर इतना गहरा ज़ख्म कहाँ लगा तुम्हें...?"

"पिता ने एक बार शराब की बोतल खींचकर मार दी थी...वार किया था माँ पर, बीच में मैं आ गई थी...क्यों, यह दाग़ तुम्हें अच्छा नहीं लगता...?" हाथ पकड़ कर ममता ने निरीह-आँखों से बी०के० की ओर देखा। बी० के० के शरीर में जैसे एक बिजली-सी दौड़ गई। उसकी ज़बान लड़खड़ाने लगी। ममता ने कहा—

"अभी तक जिसने इस दाग़ को देखा है उसने इसकी प्रशंसा की है...तुम क्यों मौन हो...?"

"शायद इसलिये ममता कि ऐसा ही एक जख्म मेरे भी सिर में है···"

"तुम्हारे सिर में...?"

"हाँ..."

"वह कैसे...?"

"जेल में बिल्ली के बच्चों के बचाने में···"

"बिल्ली के बच्चे ?" ममता ने कुछ आश्चर्य से पूछा।

"हाँ बिल्ली के बच्चे···आदमी के शिकार होने वाले थे···मैंने उनकी माँ का पक्ष लिया···और···"

ममता बी० के० की बात सुन कर सहसा हँस पड़ी। बोली—

"बिल्ली के बच्चों की सुरक्षा के लिये आदमी अपना सिर तोड़े··· बी० के० तुम कवि तो नहीं हो···"

बी० के० चुप रहा ! उसने इस प्रश्न का उत्तर न देना ही उचित समझा। ममता बड़ी देर तक बी० के० के इस मामूली से कथन पर सोच-सोचकर हँसती रही। बी० के० को उसकी यह हँसी इतनी व्यंग्यात्मक लग रही थी कि वह तिलमिला उठा। अपनी कुर्सी पर जाकर बैठ गया और मौन होकर कुछ सोचने लगा। जैसे ऐसे विषयों पर लगातार सोचते रहने में कोई निष्कृति अपने आप मिलती है। वह एक दम अवाक् हो गया।

ममता अपने बाहों के बीच तकिया भर कर औंधी पड़ी बड़ी देर तक हँसती रही। हँसने में उसके शरीर के अंग-अंग में एक आन्तरिक थिरकन सी होती थी। जाने क्यों बी० के० की समस्त चिन्ता उन शरीर लहरियों में डूब गई। बी० के० की आँखों में एक अजीब नशा-सा छा गया। उसे लगा जैसे वह एक अनन्त सागर के आर-पार मौन, विक्षिप्त-सा एक ज्योति पिण्ड को देख रहा है···जिसकी विभा देखने में

इतनी तेज कि आँखें बन्द हो जायँ किन्तु जिसका प्रत्येक स्फुरण जैसे एक नवीन संगीत का भरा हुआ स्वर मण्डल···

और तभी ममता ने करवट बदली। बी० के० को अपनी ओर एकदम लिप्त-दृष्टि से देखते हुये देखकर वह कुछ संभल गई। बोली—

"शायद इसी तरह तुम बिल्ली के बच्चों को भी देख रहे थे··· आदमी जब इस तरह देखता है तो डर लगने लगता है···"

"डर किस बात का···?"

"पता नहीं···शायद आदमी का···"

कह कर ममता बग़ल में लगे कमरे में चली गई। थोड़ी देर बाद कपड़े बदल कर निकली। बोली—"चलो आज ताज़ घूम आयें···"

बी० के० उठा और साथ चलने के लिये तैयार हो गया! उसके कपड़े अटैची में बन्द थे। उसने जब उनको निकालने के लिये खोला तो देखा ऊपर ही एक काग़ज पड़ा था। उसने उसे खोला। चारकोल से लिखा था—

"मैं जानता हूँ तुम महज़ मेरे लिये लौटकर आओगे······"

और नीचे दस्तख़्त था—पुरुषोत्तम मटियानी

बी० के० का सर चकराने लगा। वह वहीं बैठ गया। तभी ममता ने बाहर से आवाज़ दी। वह उठा और बाहर की ओर चल पड़ा।

नीचे के हाल में सब एक-टक उन दोनों को देखने लगे।

बी० के० आज से कई साल पहले ताज़ देखने आया था। उस दिन उसे लगा था ताज़ की सारी सुन्दरता केवल किंवदन्ती है, किन्तु आज जाने क्यों ताज़ के ऊपर पड़ती हुई प्रत्येक चाँदनी की किरण नितान्त सुन्दर और छविमान लग रही थी। उसे लगता था कि उस पाषाण में जैसे कोई आत्मा है जो कभी-कभी उभर कर किसी के भी मन को आन्दोलित कर देती है। उसके मन में एक प्रकार की उत्फुल्लता भर देती है।

ममता और बी० के० दोनों उसकी छाया में बैठ गये। ममता ने कहा—"जीवन के अनेक व्यंग्यों में यह भी एक व्यंग्य है···"

"कैसा व्यंग्य ?" बी० के० ने पूछा।

"यही कि ताज़-महल की छाया में भी शान्ति नहीं मिलती, हमारे मन में कहीं आवश्यकता से अधिक अविश्वास है, कहीं हम तुम केवल एक बहुत बड़ी शंका समाधान के लिये जीवित हैं—"

"शंका समाधान ? क्यों, क्या तुमने कहीं से भी मेरे प्रति शंका-समाधान की आवश्यकता समझी है···?"

बी० के० ममता की इस बात का रहस्य नहीं समझ सका। इसी-लिये उसने ममता से उसके प्रश्न का आशय पूछा। ममता ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह केवल हँसकर रह गई। बी० के० को लगा जैसे उसकी इस हँसी में कोई रिक्तता ऊपर से नीचे तक भर गई है। उसने फिर पूछा—"तुमको मेरे प्रति शंका करने का कारण क्या है ममता···?"

"कारण ? कारण केवल एक अविश्वास है···तुम भी मुझे झूठा समझोगे···"

"नहीं ममता जिसका सम्पूर्ण जीवन स्वयम् एक झुठलाया हुआ जीवन है उसे तुम इतना अधिक अविश्वासी क्यों समझती हो···?"

"मैं समझती नहीं···लोग हो जाते हैं···"

"और उस हो जाने में भी उनकी अपनी निजी विवशता होगी।"

"विवशता और कमज़ोरी में अन्तर है बी० के०···ख़ैर, छोड़ो इन बातों को···आओ, यह उल्टो तश्तरी नुमा चाँद को देखें···फीका, उदास, ख़ामोश···"

दोनों चाँद के तैरते हुये रूप को देखने लगे। सहसा चारों तरफ़ शोर-सा मच गया। बी० के० और ममता दोनों का ध्यान उधर गया। कोई दो विदेशी ताज़ देखने आये थे। दो बूढ़े गाइड उनको ताज़ दिखा रहे थे। उनकी भाषा अजीब थी। कुछ टूटी-फूटी अँग्रेज़ी जिसे उन्होंने किसी से लिखवा लिया था उसी में बोल रहे थे—

"वन्स अप आन ए टाइम देयर वाज़ ए किंग आफ़ इण्डिया बिल्ट ही दिस इज द ताज आफ़ द वाईफ़ आफ़ द मेमरी। मेमरी वाज़ द ताज द शाहजहाँ द वाईफ़ द ताज महल बेगम। विल्ट इट वाज़ बाई द ईरानीयन आर्टिस्ट! ताज लव्ड हिज़ वाईफ़ शाहजहाँ। दि बिल्डिंग रूपीज नाईन्टी क्रारस नेट काष्ट। मोमल अर्ट ब्यूटिफुल···लेट यू ब्लेस द गाड···यू आर माई फ़ादर मदर यस सर···बखसीस सर···आई एम योर मोस्ट ओवीडियन्ट साल्ट ईटर······"

और उन विदेशियों ने हँस कर उन दो बुड्ढे गाइड्स को रुपये निकाल कर दे दिये। रुपये हाथ में लेते ही वे दोनों बूढ़े गाइड्स बोले— "मे फ़ार सन गट वन मेम साहब"

बी० के० जो अभी तक ख़ामोश बैठा था अकस्मात हँसी से फूट पड़ा। विदेशी यात्री मुड़कर देखने लगे। वे शायद यूरोप के किसी प्रदेश के थे। अंग्रेजी भी अच्छी तरह नहीं जानते थे लेकिन गाइड्स ने क्या आशीर्वाद दिया इसका अर्थ वे दोनों समझ गये। वृद्ध थे इसलिये वृद्ध ने वृद्धा की ओर देख कर मुस्करा दिया। गाइड चले गये। वे दोनों अकेले ताज़ घूमने लगे। काफ़ी देर तक उन्होंने ताज़ की गुम्बद को चाँदनी में घूरा और फिर संगमरमर की दिव्य आभा को देखने लगे। फिर उन्होंने अपना फ्लैश कैमरा निकाला। तीन चार शाट्स लिये और चले गये।

ममता को उनके इस औपचारिक खोज में जैसे केवल पाला छू कर भाग आने की प्रवृत्ति दिखी। बोली—"आदमी और सब कुछ कर सकता है किन्तु किसी भी सुन्दर वस्तु का उचित आदर और सम्मान करना नहीं जानता...वह केवल औपचारिक ही रह जाता है..."

बी० के० शायद इस रहस्य को भलीभाँति जानता नहीं था। आदर की भावना जब असाधारण होती है तब उसी से सन्देह और सन्दिग्धता जन्म लेती, आत्म-समर्पण और आत्म-अधिकरण की भावना में भूखा अधिकार व्याकुल हो उठता है...किन्तु स्नेह की वह स्थिति बड़ी

ही पीड़ा जनक होती है जब सौन्दर्य की कोई भी वस्तु प्राप्य होते हुये भी अपूर्ण की अर्द्धोपलब्धि को जन्म देती है...द मोर वी पजेज यू, द मोर आई लॉंग फ़ार यू...यूआर माडर्न, ओनली माडर्न यट ह्वेयर आर यू..."

ताज की छाया में एक किनारे बी० के० और वह बैठे थे। कोई और वहाँ नहीं था। रात के दस बज चुके थे। प्रायः सभी वहाँ से चले गये थे...बी० के० को लग रहा था इस निरावरण सौन्दर्य-प्रवाह में कहीं एक वेदना है जो उसे सालती है...ममता के एक दम निकट होते हुये भी वह जाने क्यों इतनी दूर था...उसे लगता था कि ममता का यह निकटतम सम्पर्क भी उसे पूर्ण बनाने में असफल है। उसने ममता के हाथ को अपने हाथ में ले लिया। उंगलियों में पड़ी अँगूठी पर चाँदनी की किरणें कुछ विचित्र ज्योति से जगमगा रही थीं। ममता की पलकें नीचे थीं...उसके ओठों में कम्पन था, उसके शरीर के रोम-रोम में एक विचित्र कोलाहल जैसे फूटा पड़ता था—

"तुम्हें मैं किस आदर की दृष्टि से देखता हूँ, इसे मैं जानता हूँ... लेकिन जाने क्यों एक अभाव कहीं मुझ ही में है जो मुझे पूर्ण होने से बार-बार वंचित करता है...मुझे लगता है ममता..."

ममता ने धीरे-धीरे अपना हाथ पीछे खिसका लिया। वह उठ खड़ी हुई, बोली—"आदर तो सभी देते हैं लेकिन इसके बाद सन्देह, समानता नहीं..."

बी० के० कुछ क्षणों के लिये बिलकुल अवाक्-सा देखता रहा। फिर बोला, "लेकिन मैंने तुम पर सन्देह नहीं किया है..."

ममता केवल एक नितान्त नीरस-सी हँसी हँस पड़ी। बोली—"अधिकार तो केवल सन्देह को ही जन्म देता है..."

सीढ़ियों पर से उतरते हुये बी० के० ने कहा—"कभी-कभी अपवाद को भी..."

रात और गहरी हो चुकी थी।

एक हफ़्ते हो चुके थे ।

बी० के० ममता के साथ ही रह रहा था ।

ऐसा नहीं कि उसके मन में कोई उथल-पुथल नहीं था॰लेकिन जैसे उसके भीतर एक भयंकर तूफ़ान नीचे तह में डब-डबा रहा था । ऊपर से उसे शान्त ही रहना था । वह शान्त था !

किन्तु उस दिन कुछ विचित्र घटना घटी !

एक तूफ़ान सा आया और जैसे अनेक सीपियों को बटोर कर किनारे डाल गया !

ममता दिन भर की थकी थी । बार-बार उसने बम्बई से फोन मिलाना चाहा था लेकिन नहीं मिला । वह थक कर सो गई थी । बी० के० जो बिल्कुल उसके पास बैठा था उसके रूप को एक-टक देख रहा था । सौन्दर्य की विभायें विवीर्ण हो रही थीं । उसे लग रहा था जैसे कोमलता और सहजता दोनों उसकी सघन केश राशि में एक साथ सो रही हैं । वह जानना चाहता था कि उस सम्पूर्ण देह की सजीवता में वह कौन सा तत्त्व है जो उसे विवश कर देता है...क्या उसका मुख, क्या उसके अंग, क्या उसकी व्यंग्य में डूबी तिक्तता···या मात्र करुणा है जो उसे समझने और परखने में उसके चिंतन में सदा प्रवाहित होती रहती है ? क्या कहीं एक दया की भावना है जो उसके विषदमय जीवन से द्रवित होकर उससे इस जीवन और सहानुभूति के नाम पर प्रेम का तत्त्व दुह लेती है . ...?

उसने एक बार फिर उलट कर ममता के रूप को देखा । अकस्मात उसका हाथ उस एक बाल की लट पर जा पड़ा और वह जो उसकी अस्तव्यस्त मानसिक स्थिति को उद्वेलित कर रहा था सहसा टूट गया । उसने उसकी उस लट को अपने ही अन्तर में प्रतिभासित होते देख लिया । उसने हाथ हटा दिया लेकिन तभी जैसे ममता की नींद उचट गई । नींद में डूबी ममता की लाल-लाल आँखों में जैसे एक नशा था जो पिघल गया था । झुकी हुई पलकों और अलसाये हुये जिस्म में एक

विचित्र आकर्षण सा उसे अनुभव हुआ। उसने झुक कर नीचे की ओर देखा...ममता का सारा जिस्म जैसे तपती प्रतिमा सी गन्धमय लगने लगी।

"तुम भी एक नये अन्तराल के बाद मुझे देख रहे हो...क्या है जिसे तुम्हारी आँखें ढूँढ़ रही हैं...? यह दाग़...? यह ज़ख्म, ? यह त्रिकोणात्मक लकीर...? यह सब क्या तुम्हें नहीं दीख पड़ते...?"

"मैं सब देख रहा हूँ लेकिन जाने क्यों इनमें से प्रत्येक तुम्हारे रूप को ओर भी निखार देता है......"

"हूँ...यह पुरुषोत्तम मटियानी के नींद में डूबे हुये शांति का भग्नावशेष है, यह दाग़ है उस अन्धेरी रात का जब नागपुर में पुलिस मुझे पकड़ कर ले गई थी और यह है एक निशान जो मिस्टर खरे के प्रणय में दाग़ बन कर रह गया है..."

एक होटल का गिलास,
एक प्लेट, सासर, कप,
एक आँधी, तूफ़ान में घायल हुये फल
एक संघर्ष में टूटा हुआ जिस्म...
एक बिकी हुई आत्मा...

"मैं और क्या हूँ बी० के० ? तुमने मुझे दूर से ही देखा है। वह ज़िन्दगी जो पिता के शराब की बोतल से घायल होकर शुरू हुई थी आज तक ज़ख्मों से चूर ही गुज़र रही है...एक नहीं...अनेकों ज़ख्म हैं इस पर ..जिसने भी कहा—"तुम सुन्दर हो..." मैंने उसे स्वीकार लिया किन्तु मेरी स्वीकृति बाज़ार में हर क़ीमत पर महंगी उतरी...उसकी हर क़ीमत एक दाग़ देकर चली गई..."

"आत्मा पर दाग़ नहीं पड़ता ममता, मैं..."

"और इस मांस पर जितने दाग़ पड़ते हैं बी० के०, वह आत्मा पर भी अपनी छाया छोड़ ही जाते हैं...तुम उनको अलग नहीं कर सकते... वह अलग-अलग करके देखे भी नहीं जा सकते..."

बी० के० मौन हो गया। आत्मा और जिस्म दोनों की प्यास

को वह नहीं समझता था। वह केवल उस रूप का जिज्ञासु था जो अपने पूर्णत्व के अतिरेक में उसे एक बून्द के समान मिट जाने को, मिल जाने को विवश कर रहा था। उसे लगता था जैसे उस स्निग्धता में एक ज्योति है; एक अजानी, अचीन्हीं लौ है जो उसकी आत्मा को जला देती है, उसे विह्वल कर देती है।

अब तक ममता उठ कर बैठ गई थी। जूड़ा खुल गया था। सारे बाल बिखर कर पीछे की ओर लहरा रहे थे। आँखों में वैसा ही नशा था, वैसे ही लालिमा थी। अन्तर में एक अबोध, अपरिचित उत्कण्ठा। उसके भीतर कहीं भी अशान्ति नहीं थी, कहीं भी अधीरपन नहीं था, कहीं भी बेचैनी नहीं थी...किन्तु बी० के० के मन में एक तूफ़ान उठ रहा था, एक ऐसा ज्वार जिसके पीछे कुछ नहीं, एक तवे की असफलता थी, एक विवश उत्कण्ठा थी! बी० के० अपने अन्तर के इस उतार-चढ़ाव को दबाना चाहता था लेकिन वह जैसे वह प्लावन था जो उसके अन्तस्रोत से उमण्ड कर उसके रोम-रोम से प्रस्फुटित हो रहा था।

सहसा होटल के नीचे हाल में एक गीत की कड़ी गूँज गई। उसका अर्थ न तो ममता को मालूम था न बी० के० को लेकिन जिसमें कहीं इतना तीखा दर्द था, इतनी तीखी वेदना थी कि उसके बिना जीना कठिन था...वह जैसे उस ज्वार में एक समुद्र फेन की तरह उमड़ रहा था...

आमाय दिये फाँकि रूपेर पाखी कोथाय लुकालो
आसी घुरे व्याहाई ध्याखा ना पाई उड़िया ये पालालो।

ममता ने एक बार मुड़कर देखा। उसकी आँखों मे चढ़ा हुआ नशा जैसे और तरलाईत हो गया। उसके नशे में जैसे स्वयम् को खो देने की इच्छा थी। बी० के० की आत्म-उद्भूत पीड़ा में जैसे एक निस्कृति की भावना थी...एक वेदना की अपार, अगाध व्यंजना थी...लगता था वह एक-दम टूट जायगा...पिघल जायगा...जैसे वह निर्मल निरीह-सा व्यक्त-अव्यक्त के बीच झूल जायेगा...

तभी उसने देखा ममता की आँखों में आँसू छलछला आये थे। वह जैसे फूट पड़ी थी। बी० के० की आँखों में भी आंसू छलछला आये थे। वह भी जैसे एक दम से फूट पड़ा था। वह ज्वार जिसे अब तक वह अन्तस में दबाये था वह बन्धनों को तोड़ कर निकल पड़ा। उस मौन स्तब्धता में जैसे एक विध्यति लहर थी जो किसी अपूर्व अभाव में एक दूसरे को ढूंढ़ रही थी...अविचल, अविराम, मौन किन्तु नितान्त अपरिहार्य...लगता था जैसे एक महासागर की विकराल लहरों पर तैरते हुये दो समुद्रफेन के पुष्प किसी अनन्त क्षिति की कोर की ओर बढ़ते चले जा रहे हैं...दूर...दूर...दूर...वह दोनों दो नहीं एक ही तो है जैसे ?

रात और गाढ़ी और अन्धेरी हो गई थी !

कमरे की खिड़कियाँ खुली थीं। दूर पर एक सिगनल की लाल रोशनी दीख रही थी। चारों ओर का मौन मधु होता जा रहा था।

ममता ने कहा—"तुम जिसे पूजा कहते हो बी० के० वह तुम्हारी कमजोरी है...भोग को मिथ्या शब्दों का आवरण क्यों देते हो...?"

बी० के० चुप था। वह जैसे अपनी आस्था का उत्तर ही नहीं देना चाहता था। ममता ने फिर कहा—"मैं ममता हूँ बी० के०, मुझ में स्वाद है, चेतना है, स्वार्थ है..."

"कहीं मैं इतनी घृणास्पद भी हूँ कि तुम मेरा साक्ष्य नहीं पा सकते..." बी० के० फिर भी चुप रहा। वह केवल सुनना चाहता था। ममता कह रही थी—

"तुमने मेरे अन्दर एक तूफ़ान उठा दिया है...मैंने सोचा था जीवन से अपने अस्तित्व का यह अंश निकाल दूंगी...मैं केवल मनुष्य होकर जीवित रहूँगी....लेकिन शायद यह संभव नहीं है...मटियानी के विषैले दाँतों का ज़हर कहीं मुझमें अब भी शेष है..."

बी० के० ने कहा—"मैं कुछ नहीं चाहता ममता...लेकिन तुमने

जो मुझे स्नेह दिया है उसकी कृतज्ञता..."कहते-कहते उसका गला भर आया। एक-दम बेहोशी की सी हालत में वह ममता की गोद में सिर डाल कर बैठ गया। ममता भी एक नितान्त विवशता की स्थिति में मौन, निरीह-सी उसे देखती रही। दूर की सिगनल की रोशनी जैसे एक प्रश्न-चिन्ह सी दिखती रही। ममता ने बी० के० का सिर ऊपर उठाया...लगा जैसे एक मरूस्थल नितान्त सरसता के साथ प्लावन हो उठा है।

दूर क्षितिज से चौदहवीं का चाँद उग रहा था।
घड़ी से बारह की घण्टियाँ बजीं।
नीचे से फिर एक बंगला गीत गूँज उठा...

आज मलयानिल मृदु-मृदु बहत, निर्मल चाँद प्रकासा
भाव भरे गद गद-गद चामर दुलायत, पास रहे चण्डिदासा ...

बी० के०अब अलग हो गया था।
ममता ने दो पेग शराब ढाल ली थी।
एक.........केवल एक............
....
और नशा चढ़ता गया।

सहसा एक झटका-सा लगा...ममता की सांसें तीव्र गति से चल रही थीं। लगता था जैसे उसके जिस्म का एक-एक बंधन टूक-टूक होकर गिर पड़ेगा। और जब उसने आँखें खोलीं तो देखा बी० के० खड़ा दूर उगते हुये चाँद को देख रहा था। सहसा एक तेज़ आवाज़ में एक गाड़ी हरहराती हुई तूफ़ान की तरह आई। चाँद उस पार उसकी ओट में छिप गया। ममता ने कमरे की रोशनी बुझा दी!

सुबह जब उसकी नींद खुली, उसकी चारपाई पर मोतियों की माला टूट कर बिखर गई थी। उसके दाने-दाने अलग-अलग बिखरे पड़े थे।

मिसेज़ सैम्सन को यह मालूम था कि बी० के० का मोक़दमा एक हफ्ते बाद होगा। वह ठीक एक दिन पहले ही कलकत्ते से आगरे आ गई थी! जेल गई तो पता चला बी० के० की ज़मानत होगई है और वह बाहर है। मिसेज़ सैम्सन ने उसका भी पता लगा लिया कि वह कहाँ ठहरा है। वह सीधे होटल आई। बी० के० कहीं गया था। वह चुपचाप उस कमरे में गई जिसमें ममता रहती थी। ममता कमरे में थी। देखकर बोली—

"तुम कौन हो?"

"बी० के० के आफ़िस में काम करने वाली स्टेनो..."

"क्या चाहती हो?" ममता ने कहा और उसे ऊपर से नीचे तक देखा। उसके रूप और सौन्दर्य में जो एक अधीरपन था उसे देखकर वह चकित हो गई। उसने फिर पूछा—"क्या आप ही बी० के० के मोक़दमें की देख-भाल कर रही हैं...?"

"जी नहीं...वह तो चाहते ही नहीं थे कि कोई उनका मोक़दमा करे।"

"अगर वह चाहते तो आप कोशिश करतीं...?"

"जी...ज़रूर..."

ममता चुप होगई! उसने काल-बेल प्रेस किया। चाय और नाश्ते का आर्डर दिया और फिर ख़ामोश होकर बैठ गई। फिर थोड़ी देर बाद बोली—

"आपको किसने बताया कि बी० के० इस होटल में है...?"

"जेल से पता चला..."

चाय आ गई थी। ममता ने एक प्याली बनाकर मिसेज़ सैम्सन की ओर बढ़ाया। और उसे ग़ौर से देखने लगी। लगा उसकी प्रत्येक

मुद्रा में कहीं एक निश्छल शंका थी ! मिसेज़ सैम्सन की आँखों में एक उत्सुकता थी जो बार-बार उभर कर आती और बेचैन कर देती ।

चाय की एक सिप लेते हुये मिसेज़ सैम्सन ने पूछा—

"आप कैसे जानती हैं बी० के० को···?"

"जानती हूँ···आपका ख़त मिला था मुझे इसीलिये यहाँ तक आई नहीं तो···"

"नहीं तो आप न आतीं···"

"जी नहीं···मुझे पता ही नहीं चलता···आप ठहरी कहाँ हैं यहाँ···?"

"मेरी एक बहन यहाँ रहती है···"

ममता चुप हो गई ।

अब तक बी० के० भी आ गया था । मिसेज़ सैम्सन को देख कर बोला—"डाली तुम···"—जैसे वह डाली की उपस्थिति आज यहाँ नहीं चाहता था । डाली ने भी उसकी इस मुद्रा को जैसे जान लिया··· बी० के० चुपचाप वहीं बैठ गया । खुद उसने चाय ढाली और पीने लगा । वैफ़र्स के टुकड़ों को कुतरते हुये उसने कहा—"कम्पनी के वकील ने कुछ नहीं कहा···?"

"नहीं···सेठ बोला जाने दो कमबख्त को···जाली दवा बेचने वाले को मैं नहीं बचाऊँगा···"

डाली की बात सुनकर बी० के० को एकाएक हँसी आ गई ।

वह प्याली मेज़ पर रख कर बोला—"जो सबसे बड़ा जालसाज़ है वह सेठ यह कहता है···? चावल का दाम बढ़ाकर भुखमरों की लाश जलाने की सुविधा देने वाले यह लोग···"

ममता ने कहा—"यह बुरा क्या करते हैं···बहुत से लोग अच्छाई को नक़द भुनाते हैं, बहुत से लोग बुराई को···अगर दोनों की क़ीमत मिल सकती है तो बुरा क्या है···?"

बी० के० ने मुड़ कर ममता की ओर देखा । उसकी इस वाणी में

जाने कितनी वेदना थी लेकिन जैसे उसने अपने सम्पूर्ण आक्रोश को दबा कर संस्कार बद्ध कर लिया था। आत्मपीड़ित स्थिति के परे; उससे ऊपर उठ कर वह नितान्त व्यक्तित्वहीन सी होगई थी।

सहसा डाली ने अपने वैनेटी बैग से एक हरे रंग का चेक निकाल कर बी० के० को देते हुये कहा—"यह तुम्हारा हिसाब है, कुल तीन हज़ार रुपये..."

"इतना रुपया मैं करूँगा क्या डाली...इसे तुम ले जाओ..."

"मैं क्या करूँगी ?" डाली ने कहा...

"जो चाहना करना..."

डाली समझ नहीं पाई कि ऐसी स्थिति में वह क्या करे। उसने उस चेक को उसी जगह मेज़ पर रख दिया और उठकर जाने लगी। बी० के० ने उसे रोक लिया। ममता को लगा जैसे बी० के० को कुछ ख़ास बातें करनी हैं। वह उठकर जाने लगी। बी० के० ने कोई आपत्ति नहीं की लेकिन मिसेज़ सैम्सन ख़ुद ही नहीं रुकीं और चली गईं। बी० के० बहुत देर तक सोचता रहा। ममता भी पास में बैठी एक अख़बार के पन्ने उलटती रही। थोड़ी देर बाद बोली—

"क्या सोच रहे हो बी० के०...?"

"कुछ नहीं...यही कुछ ज़िन्दगी की बातें...कुछ लोग अच्छे होते हैं लेकिन दुनिया उन्हें अच्छा रहने नहीं देती..."

"क्या यह डाली बहुत अच्छी औरत है ?"

"बहुत अच्छी ममता...लेकिन कुछ अजीब बात है...जिस किसी को इसने स्नेह किया उसने इसे ठोकर ही दी..."

"और इसने उन ठोकरों को आसानी से सहन कर लिया ?'

"हाँ..."

"और इसीलिये यह अच्छी औरत है, क्यों ?" ममता ने पूछा—

"इसीलिये अच्छी तो नहीं है लेकिन यह ज़रूर है कि बावजूद इसके अच्छी औरत है..."

ममता को जैसे कुछ क्रोध आ रहा था। बोली—

"अच्छाई का जब तक सहनशीलता या मजबूरी के साथ सम्बन्ध रहेगा तब तक उसका कोई उचित अर्थ निकल ही नहीं पायेगा⋯मज़बूरन अच्छे धर्म में और अच्छे होने में अन्तर है⋯"

बी० के० को थोड़ा आश्चर्य हुआ। वह यह नहीं समझता था कि ममता इतनी समझी-बूझी धमकियों पर विचार कर सकती है। उसने कहा—

"फिर अच्छाई तुम कहोगी किसे⋯?"

"बुराई की सुविधा के बावजूद जो अच्छा है।"

बी० के० चुप हो गया। उसे लगा जैसे उसकी चिन्तन शक्ति को सहसा एक ठेस लगी है या उसकी चिन्तन दृष्टि को किसी ने जान-बूझ कर मोड़ दिया है। बुराई की सुविधा होते हुये बुराई न कर पाने की बात उसकी समझ में तो आ गई लेकिन उसे अच्छी नहीं लगी। उसे लगा जैसे अच्छाई का स्वतंत्र अस्तित्व है ही नहीं। जब तक बुराई से उसका सम्बन्ध नहीं होगा शायद अच्छाई का स्वतन्त्र अर्थ विकसित ही नहीं हो पायेगा। बोला—

"तुम मुझे सुन्दर इसलिये लगती हो क्योंकि तुम से ज्यादा बदसूरत औरत कोई है ही नहीं..."

ममता जैसे चौंक गई लेकिन मुस्करा कर बोली—

"हो सकता है बी० के०...सौन्दर्य को मापने का एक यह भी तरीका हो सकता है..."

बात यहीं आकर खत्म हो गई। बी० के० के वकील साहब आ गये। अगले दिन के बहस के सिलसिले में बातें होने लगीं। ममता कुछ चिंतित थी लेकिन जाने क्या बात थी कि बी० के० के चेहरे पर एक शिकन भी नहीं था।

शाम को दोनों सिनेमा देखने चले गये।

काफ़ी रात गये लौटे। खाना मंगाया, खाया और फिर विश्राम के

लिये अपनी-अपनी जगह जाने लगे। ममता ने खिड़की के पार देखा। सिगनल की रोशनी आज भी वैसी गाढ़ी लाल सी मौन खड़ी थी और अन्धकार और भी गाढ़ा हो गया था। उसने आवाज़ दी—"क्या अभी से सोओगे ?"

"नहीं तो..."

"कुछ बात करो..."

"किसकी...?"

"किसी की..."

"अपनी...या तुम्हारी...?"

"मेरी ज़िन्दगी में क्या है...?"

"एक उतार-चढ़ाव, एक संघर्ष-उत्कर्ष...एक अपवाद-विवाद..."

"यह सब अर्थहीन है..."

"एक बात पूछूँ...?"

"पूछो..."

"तुमने मेरे पास यह क्यों लिखा कि मैं जेल में पुरुषोत्तम मटियानी की मदद करूँ..."

"यह मत पूछो...बी० के० !"

"क्या इसलिये कि उसने तुम्हारी अन्धी बहन से शादी कर लिया है...?"

"या इसलिये कि यदि वह जेल में रहेगा तो तुम्हें उसके बच्चों की देखभाल करनी पड़ेगी...?"

"नहीं..."

"फिर क्या इसलिये कि..."

"किसी भी लिये सही...मान लो मैंने यूँ ही कहा..."

"नहीं ममता...कम से कम अब तो हम लोगों को ज़िन्दगी को खैरात और मौत को अपवाद नहीं मानना चाहिये..."

"ज़िन्दगी और मौत इसके सिवा कुछ और हो भी तो नही सकते"

—कहते-कहते ममता कुछ मौन हो गई। फिर एक-दम गम्भीर होकर बोली—"मेरी एक बात मानोगे....क्यों ?"

"कौन सी बात ?"

"यही कि यह सवाल मुझसे नहीं पूछोगे..."

"तुम चाहो तो मत बताओ...किन्तु मेरे मन की जिज्ञासा शान्त नहीं होगी..."

"तुम बुरा मान जाओगे..."

ममता बिस्तर से उठकर बैठ गई थी। वह कुछ आवश्यकता से अधिक अधीर और चंचल हो उठी थी। शायद जो कुछ वह छिपा कर रखना चाहती थी वह उसके अन्तस से फूटा पड़ रहा था। बी० के० ने ऐसा प्रश्न ही पूछ दिया था कि उसके अन्तर्मन का कोलाहल एक-दम उद्विग्न हो उठा था। उसकी आँखों में एक विचित्र प्रकार का क्रोध उतर आया था। उसके ओंठ आवेश में फड़कने लगे थे। बी० के० मौन निरीह-सा अपने पलंग पर पड़ा छत की ओर देख रहा था। ममता एक-दम उसके निकट आ गई थी। बोली—

"पुरुषोत्तम मटियानी ने मुझे अपना सब कुछ दे दिया था..."

बी० के० थोड़ी देर तक इस सब कुछ का अर्थ अपने आप में सोचता रहा। उसे लगा जैसे इस शब्द का कोई नया अर्थ ममता देना चाहती है लेकिन उसकी समझ में नहीं आया। वह बोला—

"मैं समझ नहीं पाया ममता...इस सब कुछ का अर्थ क्या है ?"

"सब कुछ सब कुछ ही है बी० के...उठो उधर देखो...।"

बी० के० ने पीछे मुड़ कर देखा। ममता अपने सहज भाव में उसके सिरहाने बैठी थी। फिर बोली—"जब तक मैं उसके साथ थी मैं यह नहीं अनुभव कर सकी कि उसमें क्या गुण है लेकिन जब से मैं उससे अलग हुई हूँ मैंने उसके गुण को पहले से अधिक सराहा है..."

"वह दयावान था...वह दुनिया को ठोकर मारकर चलना चाहता

है...तुम नहीं मानोगे...अपराधी में दया से द्रवित भी होने की अपूर्व क्षमता होती है...अपराधी का हृदय कहीं विशाल भी होता है..."

बी० के० उठ कर बैठ गया। उसने देखा आज उस अपराधी के लिये ममता के मन में जाने कितनी सहानुभूति उमड़ आई थी। वह कहती जा रही थी...

"वह मेरे जीवन का प्रथम पुरुष है...उसने मुझे तृप्ति दी है।..."

"तुम उससे घृणा करती हो।..." आवेश में बी० के० ने कहा

"मेरे लिये दोनों ही सत्य है..."

बी० के० मौन निरीह सा ममता को देख रहा था।

बी० के० जब दूसरे रोज़ सुबह उठा तो उसे सारी दुनिया ही जैसे बदली हुई लगी !

किसी अपराधी, क्रूर और कठोर हृदय वाले के लिए ममता के हृदय में इतना अगाध स्नेह होगा इसकी बी० के० कल्पना भी नहीं करता था। एम० ए० तक शिक्षित, सौन्दर्य की प्रतिरूप, जीवन के विभिन्न स्तरों को इतने निकट से भोगने के पश्चात ममता ने जिस निष्कर्ष का समर्थन किया था वह बी० के० की कल्पना के बाहर था। उसे लगता था जैसे जीवन की सम्पूर्णता में सर्वथा एक ऐसा अनुभव हुआ है जिसमें विगत जीवन की समस्त अनुभूतियाँ तीखी और तीव्र हो गयी हैं। आज से पहले की समस्त तीव्र अनुभूतियाँ झूठी पड़ गयी हैं। जीवन की सारी जिजीविषा का अर्थ ही सारहीन हो गया है।

ममता ने भी प्रातःकाल से ही इस परिवर्तन का अनुभव कर लिया था। उसे लगता था कि बी० के० किसी उधेड़बुन में पड़ा हुआ है, कोई महान शंका, महान उथल-पुथल उसे नितान्त व्याकुल बनाए हुए है। यहाँ तक कि दोनों ने साथ चाय भी पी तो दोनों ही चुप थे। बी० के० भी मौन था, किन्तु उसके भीतर जैसे एक अनन्त तूफ़ान उसे बार-बार

प्रकम्पित कर रहा था। ममता के भी मन के भीतर एक इस प्रकार की उथल-पुथल थी। वह भी बी० के० की आंतरिक वेदना का मर्म क्षण-प्रतिक्षण देख रही थी। बोली—

"क्या मेरी बात तुम्हें बहुत बुरी लगी है···?"

बी० के० ने कोई उत्तर नहीं दिया। अपना कपड़ा बदला। बालों में कंघी की और कचहरी जाने की तैयारी करने लगा। ममता ने फिर पूछा—

"क्या वह जो एक बार अपराधी हो गया उसके मन में कोई भी मानवीय संवेदना नहीं रह जाती?"

बी० के० ने इसका भी कोई उत्तर नहीं दिया। ममता ने फिर पूछा—

"क्या बुरे आदमी के जीवन में एक क्षण भी ऐसा नहीं आ सकता जब वह केवल मनुष्य हो···केवल मानवीय चेतना से द्रवित हो···?"

बी० के० ने इस प्रश्न को भी जैसे उतार फेंका। ममता ने कुछ आवेश में किन्तु नितान्त करुण स्वर में पूछा—

"क्या अच्छे से अच्छा आदमी तमाम दिन अच्छा ही रहता है? क्या एक क्षण भी उसके लिए अपराध की बात सोचना या करना संभव नहीं है?"

बी० के० अब भी मौन था। वह जल्दी-जल्दी अपने कपड़े ठीक करने में व्यस्त हो गया। ममता को यह स्पष्ट हो गया आज से बी० के० का उसका समस्त सम्बन्ध टूट गया। ममता ने फिर कहा—

"मैं अपने प्रश्नों का उत्तर चाहती हूँ।"

ममता की आवाज़ में एक तीव्रता थी। एक अनुशासन था। एक अधिकार ही था जो बार-बार उत्तर के लिए आग्रहशील था। बी० के० ने कहा—

"दुराग्रहों का उत्तर मेरे पास नहीं है···"

"मैंने दुराग्रह किया है···"

"तुमने अनधिकार चेष्टा की है···" बी० के० ने कहा।

"मेरा तुम पर कोई अधिकार नहीं है···?"

और जब बी० के० ने मुड़कर देखा तो उसने पाया कि उसकी आँखें नम थीं।

बी० के० के लिए यह वेदना और भी असह्य थी।

वह जिसने उसके जीवन को एक अद्वितीय अनुभव दिया था, जिसके निकट उसके व्यक्तित्व को एक नैसर्गिक आनन्द की उपलब्धि हुई थी, उससे वह कैसे कहे कि उसका कोई भी अधिकार उसके ऊपर नहीं है। उसने नितान्त व्याकुलता से ममता को अपनी बाहों में कस लिया···जैसे वह कहना चाहता हो कि उसके पास क्या है? केवल वह अधिकार ही तो है जिसे उसने पहली भेंट में ही दे दिया था, लेकिन···लेकिन उसकी समझ में नहीं आता था कि वह इस स्थिति में अपनी कौन-सी प्रतिक्रिया प्रदर्शित करे। वह ममता के लिए सब कुछ करना चाहता था, लेकिन ममता की इस विवशता के लिए वह क्या करे?

ममता ने अपने कसे हुए शरीर को ढीला कर लिया। उसके बाहु-पाश से जैसे वह छूट गयी। मौन तूफ़ान को पीकर बोली—

"मैंने वही कहा है जो सत्य है। मैं झूठ कैसे बोलती?"

"झूठ?" बी० के० ने उत्सुक दृष्टि से देखते हुए कहा।

"हाँ झूठ···"

"तुमने सच ही तो नहीं कहा है ममता···तुमने···"

"मैंने तो कुछ नहीं किया है?"

"तुमने मुझे कुछ नहीं दिया···जो कुछ मैं अपने से ग्रहण कर सका तुम उसकी कीमत माँगती हो···"

"नहीं···नहीं···नहीं···" नितांत विक्षिप्तता के स्वर में ममता ने कहा। बी० के० ने अपनी आँखें बन्द कर लीं। एक-दम उदास और ख़ामोश-सा वह दीवार का सहारा लेकर खड़ा हो गया। ममता कहती

जा रही थी—"मैंने केवल अपनी मानसिक स्थिति तुम्हें बताई है…एक सत्य कहा है बी० के०…"

बी० के० केवल मौन रूप से खड़ा सुनता रहा। ममता तेज़ी से बाथ-रूम में गयी। नहा-धोकर तैयार हो गयी। उसके वकील भी उस समय तक आ गए थे। किन्तु जब वह बाहर निकली, तो देखा हाथ में अटैची लिए बी० के० कचहरी की ओर चला जा रहा था। वकील ने पूछा—

"बी० के० कहाँ जा रहे हैं?"

"पता नहीं…"

"लेकिन कचहरी में उनका रहना ज़रूरी है…उन्हें साथ ले लीजिए…"

ममता सामने खड़ी कार पर बैठ गयी। ड्राइवर को उसने उसी दिशा में चलने का आदेश दिया जिस दिशा में बी० के० जा रहा था। बी० के० के एकदम नज़दीक जाकर ड्राइवर ने कार रोकना चाहा था लेकिन जाने किस आवेश में ममता ने कहा—"आगे बढ़ाओ…"

बी० के० ने मुड़कर देखा, मोटर पर ममता ही जा रही थी। वकील भी ममता के इस व्यवहार को समझ नहीं पाया। कार तेज़ी से निकल कर सड़क की मोड़ पर मुड़ गयी। बी० के० धुँधली दृष्टि से उसे खड़ा देखता रहा।

दिन भर की बहस में यह निश्चित हो गया था कि बी० के० को अदालत छोड़ेगी नहीं।

सारा दिन ममता और उसके वकील दोनों बी० के० की प्रतीक्षा करते रहे थे, लेकिन वह अदालत में हाज़िर ही नहीं हुआ। शाम को पाँच बजे जज ने हुक्म दिया कि यदि बी० के० कल फ़ैसला सुनाने के दिन नहीं आएगा, तो दस हज़ार ज़मानत की रक़म जमा करनी पड़ेगी। ममता के चेहरे पर इस बात से भी कोई शिकन नहीं पड़ी। वह उठी और होटेल की ओर चल पड़ी। वकील ने कहा भी—

"बी० के० का हाज़िर होना ज़रूरी है…"

"नहीं तो…?" ममता ने पूछा ।

"नहीं तो दस हज़ार रुपए नक़द देने पड़ेंगे…" वकील ने कहा ।

ममता हँस पड़ी । उसे लगा जैसे वकील के लिए केवल दस हज़ार रुपया ही बहुत बड़ा आतंक है । वकील को उसके घर पर छोड़कर ममता होटेल की ओर चली गई ।

होटेल में पहुँचते ही उसे अपनी छोटी बहन का ख़त मिला । वह विह्वलता के साथ इस पत्र की प्रतीक्षा कर रही थी । पत्र पढ़ कर उसकी भवें तन गयीं । वह ख़ामोश वहीं की वहीं बैठ गई । अपने दायें हाथ से बायें हाथ पर मुट्ठी पटकते हुए उसने कहा—

"यह नहीं हो सकता...पुरुषोत्तम को बचाना ही पड़ेगा..."

उसके सामने अपनी अंधी बहन के पाँच बच्चे और दो दूसरे यतीम बच्चे, सात बच्चों की तस्वीर नाच गयी । लेकिन वह कर क्या सकती थी । पुरुषोत्तम मटियानी की तो ज़मानत भी नहीं हो रही थी और बी० के० की ज़मानत भी कल ख़ारिज हो जायगी । वह जैसे चिन्ता में डूब गई । कुर्सी पर बैठे-बैठे वह वहाँ उस पार रेलवे लाइन के सिगनल को ढूँढ़ने लगी जिसकी लाल रोशनी रात के अँधेरे में एक-दम चमक उठती है । दिन की रोशनी में वह जाने कहाँ डूब गई थी, खो गई थी ।

सहसा उसकी दृष्टि मेज़ पर पड़े चेक पर पड़ी । हवा के हल्के झोंके के कारण वह खड़खड़ा रहा था । ममता ने उसे उठा कर एक बार देखा । उसे लगा जैसे उसके सामने उस चेक का भी मूल्य नहीं है । जी में आया वह उसे टुकड़े-टुकड़े करके फाड़ दे, लेकिन फिर जाने क्यों वह रुक गई, सहम गई । और चेक को वहीं ऐशट्रे से दबा कर वह चली गई । सीढ़ियों से जब वह नीचे हाल में उतर रही थी उसे लगता था जैसे उसकी धड़कन बढ़ गई है । उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया है !

अब तक अँधेरा हो चुका था । होटेले के हाल में ग्राहक आने लगे थे । अँग्रेजी वाद्य संगीत चल रहा था । वह भी एक मेज़ पर जाकर बैठ

गई । बेयरा थोड़ी देर बाद चाय और नाश्ता लाया । वह खाने लगी । संगीत चलता रहा···लेकिन जाने क्या बात थी ममता को यहाँ भी शांति नहीं मिली । वह जैसे क्षण-प्रतिक्षण गंभीर होती जाती थी । थोड़ी ही देर में उसकी तबीयत ऊब गई । वह उठी और फिर अपने कमरे में चली गई ।

उसने रात का खाना भी नहीं खाया । अपनी ही पलंग पर पड़ी-पड़ी वह जाने क्या-क्या सोचती रही । दिन भर की थकी थी । कब उसे नींद आई उसे पता भी नहीं चला ।

सुबह नौ बज गये थे ।

वकील साहब होटेल में ममता के कमरे में टहल रहे थे ।

ममता बैठी एक किताब पढ़ रही थी ।

वकील ने कहा—"क्या आज भी बी० के० नहीं आएगा ?"

और तभी कमरे का पर्दा खुला । कमरे में प्रवेश करते हुए बी० के० ने कहा—"नहीं वकील साहब···मैं एहसान फ़रामोश नहीं हूँ ।"

वकील साहब जैसे चौंक गए । बी० के० को ऊपर से नीचे तक देखते हुए बोले—"वेल मिस्टर···इट डज़ण्ट बिहोव यू..."

"ह्वाट मिस्टर वकील···?"

"आप कल अदालत में हाज़िर नहीं हुए···आपका मुक़दमा ख़राब हो गया ।"

"बस इतनी सी बात···चिंता मत कीजिए...आप जरा बाहर जायँ ···मुझे ममता से कुछ ज़रूरी बातें करनी हैं···"

अब भी ममता ने कोई नोटिस नहीं लिया था । वकील साहब ने बी० के० को ऊपर से नीचे तक एक बार देखा और बाहर चले गये । बी० के० ने ममता के हाथ से किताब छीन कर मेज़ पर रख दी । कुर्सी एक-दम उसके नज़दीक खींचकर उस पर बैठ गया, फिर बोला—

"मुझे माफ़ करना ममता···कल मैं जाने क्यों आवेश में आ गया था ।"

ममता एक व्यंग्य भरी मुस्कान हँस कर उसे देखने लगी।

"खैर, तुम हँस सकती हो···" बी० के० ने कहा—"लेकिन मुझे कितनी तफलीफ़ है यह तो मैं ही जानता हूँ।"

ममता की हँसी और भी व्यंग्यात्मक हो गयी। अपने हाथों को बी० के० के हाथों से छुड़ाते हुए उसने कहा—

"क्या चाहते हो?"

"मौत·········"

ममता फिर हँस पड़ी। बोली—"तुम उसे इतना आसान समझते हो?"

"आसान न सही ममता, लेकिन वह मुश्किल भी नहीं है ···।"

"लेकिन क्यों?"

"इसलिए ममता कि मैं जिस चीज़ की तलाश में था वह मुझे मिल गई। जो रहस्य आज तक मेरे जीवन की पहेली बनी थी वह खुल गई···"

"रहस्य? कैसा रहस्य······?"

बी० के० आगे कुछ कहने ही वाला था कि वकील ने आवाज़ दी, और साथ ही भीतर तक चला आया। बी० के० चुप हो गया। घड़ी में साढ़े दस का समय हो रहा था। ममता ने अपना बैग उठाया और वकील के साथ जाने लगी। बी० के० ने भी अपनी अटैची उठा ली। पीछे-पीछे वह भी चल पड़ा।

जब यह तीनों उतर रहे थे डाली होटेल में नीचे बैठी काफ़ी पी रही थी। ममता ने एक बार उसे देखा, बी० के० ने भी देखा लेकिन दोनों बाहर चले गए।

मि० अनुज शर्मा इस कहानी को एक साँस में ही समाप्त कर चुके थे। उन्हें लगा कि उपन्यास की दृष्टि से मीनाक्षी का यह अध्याय रस

के ऐक्य को खंडित करता है। उन्हें यह लगा कि बी० के० के चरित्र का जो क्रम अब तक चला आ रहा था वह यहाँ आकर आवश्यकता से कुछ अधिक मुड़ गया है। वह यह निश्चय कर चुके थे कि मीनाक्षी जैसे ही दीख पड़ेगी उससे वह कहेंगे कि मुक़दमे की दृष्टि से इस कथा का जो भी मूल्य हो, किन्तु उपन्यास की दृष्टि से इस अन्तराल से रस का खण्डन होता है।

लेकिन वैसे मन ही मन वह इस उपन्यास के अंशों को पढ़कर बड़े द्रवित हो गए थे। मन में सोच रहे थे काश ममता से उनकी भेंट हो जाती। वह उसे देख कर ही प्रणाम करते। उसके पास बैठते और उससे कुछ बातें करते···अभी वह सोच ही रहे थे कि मीनाक्षी ने काफ़ी हाउस में प्रवेश किया। उसके साथ एक और महिला थीं। आयु यही कुछ तीस-पैंतीस के लगभग, लेकिन नितान्त सम्भ्रान्त वेशभूषा में। सादा, सहज श्रृंगार···जूड़े में एक मोतियों की चूड़ा और कान में सफ़ेद बुन्दे। बाल कुछ हनी कूम्ब की आकृति के। सादी सफ़ेद हैण्डलूम की साड़ी, आँखों पर एक हल्के रंग का चश्मा।

मि० अनुज ने अपने सूखे होठों को जीभ से तर कर लिया और अपनी सीट पर स्वभावानुकूल खड़े हो गए। उन्होंने मीनाक्षी का स्वागत किया। मुँह खोले हुए हतप्रभ-से उन्होंने साथ वाली महिला को देखा। परिचय पूछना चाहा कि मीनाक्षी ने कहा—"ठहरिए" फिर साथ की महिला को सम्बोधित करते हुए उसने कहा—

"मि० अनुज शर्मा···इलाहाबाद काफ़ी हाउस की जान।"

उसने मि० अनुज का अभिवादन किया और बैठ गयी। मीनाक्षी और मि० अनुज भी बैठ गए। मि० अनुज शर्मा के होंठ अब तक फिर सूख गए थे। उन्होंने फिर उसे तर किया। वेटर को आवाज़ दी और काफ़ी के साथ-साथ कुछ खाने का भी आर्डर दिया। नवागंतुकों ने कहा—

"इज़ देयर एक्सप्रेसो······?"

"नो-नो···प्योर एण्ड सिम्पल काफ़ी...।" मीनाक्षी ने कहा।

उसने अजीब मुँह बनाया। पूरे काफ़ी हाउस पर एक दृष्टि डाली और नितान्त उपेक्षा की मुद्रा में बैठी-बैठी कुछ सोचने लगी।

बात का सिलसिला शुरू करते हुए मीनाक्षी ने कहा—

"आपने अगला अध्याय पढ़ लिया······?"

"जी हाँ, लेकिन······"

"लेकिन क्या ?" मीनाक्षी ने कहा।

"आपने ज़बर्दस्ती बीच में यह अन्तराल जोड़ा है।"

'मैंने कुछ नहीं जोड़ा। जैसे-जैसे घटनायें घटीं मैंने लिख दिया···"

मि० अनुज फिर सोच कर बोले—

"बी० के० का पहला खत जो उसने ममता को लिखा है, वह बेकार हो गया है......।"

"नहीं तो······"

ममता का नाम सुन कर मीनाक्षी के साथ जो महिला आई थीं वह चौंक गईं। उसने एक बार ग़ौर से मि० अनुज की ओर देखा। बात काटते हुए मीनाक्षी ने कहा—

"यह बी० के० के क्लासफेलो हैं····एक साथ एक ही कमरे में रहे हैं···"

नवागन्तुक महिला ने एक बार ऊपर से नीचे तक मि० अनुज शर्मा को देखा और कुछ इस तरह मुस्कुरा पड़ी जैसे मि० अनुज जैसा गँवार व्यक्ति उसने देखा ही नहीं। मि० अनुज ने उसकी दृष्टि को हो करदेख केवल आतंक में नितान्त विनम्रता के साथ नमस्कार कर दिया।

अब तक काफ़ी आ गई थी। सब लोग काफ़ी पीने में व्यस्त हो गए। मीनाक्षी ने फिर बात छेड़ते हुए कहा—"और क्या कहना है आपको···"

"यही···ममता-जैसी लड़की का होना असंभव है···जो इतनी

सुन्दर हो सकती है उसमें इतनी कृत्रिमता नहीं हो सकती···सुन्दर व्यक्तियों की आत्मा भी सुन्दर ही होती है···"

"ममता की आत्मा में बुराई कहाँ है······?"

"उपन्यास की पात्रा तो नहीं हो सकती···" पलकें नीचे किए हुए मि० अनुज ने कहा और फिर आँखें बन्द करके बोले, "वह सौंदर्य जिसमें उदात्तीकरण की क्षमता होती है···वह कृत्रिम कभी भी नहीं होती···सौंदर्य आत्मा-आत्मा के आलोक का मिलन है, उसकी दिव्य आभा में न तो कोई कुत्सा है, न कोई कुण्ठा है। सब गलकर निर्मल सलिल के समान हो जाते हैं···"

नवागंतुक महिला निष्प्रभ-सी मि० अनुज शर्मा की मुद्रा देख रही थी। उसे लगता था जैसे मि० अनुज कोई ऋषि-आत्मा है और जब कोई भी ऋषि-आत्मा काफ़ी हाउस में आती है, तो एब्सर्ड हो ही जाती है। मीनाक्षी ने बात काटते हुए कहा—"ममता किसी कल्पना लोक की प्रतिमा नहीं है मि० अनुज, वह बिल्कुल यथार्थ है···जैसे आप···जैसे यह।"

मीनाक्षी के वाक्य का अन्तिम टुकड़ा सुनकर नवागन्तुक महिला चौंक पड़ी। लेकिन फिर सहम कर बैठ गई। मि० अनुज ने अपनी आँखें खोलीं। देखा मीनाक्षी और वह नवागन्तुक महिला सामने ही बैठी थीं।

अभी कुछ बातें और भी चलने वाली थीं कि सहसा वेटर टेबुल के पास आया। बोला—"मिसेज़ ममता के नाम फ़ोन है।"

नवागन्तुक महिला उठ खड़ी हुई।

मि० अनुज को जैसे किसी ने एक तमाचा मार दिया।

मीनाक्षी हँसती हुई उठी और ममता के साथ-साथ काउण्टर पर फ़ोन तक गई। मि० अनुज उठ खड़े हुए। अवाक खुले नेत्रों से वह दोनों को देखते रहे। वेटर ने तीन बार कहा—"साब बिल," "साऽऽब बिऽऽल," "साऽऽऽब्र बिऽऽऽलऽ"

मि० अनुज ने कहा—"आँय ?" और बस।

"वह मोड़ भी मिला जहाँ गाड़ी को मोड़ते-मोड़ते भी मीनाक्षी को लगा था कि गाड़ी टकरा जायगी, लेकिन उसकी गाड़ी नहीं टकरायेगी। वह सुरक्षित स्थिति में होटेल पहुँच गई। उसने अपना कमरा खोला और काँपती हुई उसमें प्रवेश करने लगी। जाने कितना भय उसके अन्दर समा गया था। उसने रोशनी जलाई। एक कोने से एक छिपकली दौड़ कर छत के दूसरे कोने पर जा बैठी। उसे लगा जैसे किसी तेज़ ब्लेड से किसी ने उसके चमड़े पर ख़राश पैदा कर दिया है। वह उसी हालत में कुर्सी पर बैठ गई।"

काफ़ी हाउस की पाँचवीं शाम

●

[३१-८-६२]

●

मि० अनुज शर्मा पिछली रात की घटना से कुछ अचकचाए हुए से थे। ममता को देखकर कुछ-कुछ मीठा-मीठा-सा दर्द उन्हें हो रहा था। आत्मा में एक व्याकुलता भी थी और एक मृदुल-मृदुल सिहरन भी। कल की नाटकीयता कुछ गहरे उतर गयी थी। शायद इन्हीं कुछ कारणों से वह आज अपने निश्चित समय के पूर्व ही आ टिके थे। कहीं उनके मन में था कि शायद मीनाक्षी ममता के साथ समय के पूर्व काफ़ी हाउस में आ गई हो। लेकिन आज जब वह समय से पूर्व पहुँचे तो देखा उनकी टेबुल पर राजा साहब बैठे एक अख़बार पढ़ रहे थे।

राजा साहब आज महीनों बाद काफ़ी हाउस आए थे। काफ़ी हाउस में कुछ ऐसे लोगों का ख़ासा जमावड़ा है, जो काफ़ी अपने पैसे से पीते हैं, लेकिन दिल बहलाव किसी दूसरे के नाम पर। एक बूढ़े उर्दू के शायर और राजा साहब जब मिल जाते हैं, तो ख़ूब छनती है। राजा साहब राजनीति के स्थापित पक्षों के हामी हैं। जैसे यह कि भारत एक धर्म निरपेक्ष राज्य है, अथवा यह कि पाकिस्तान में तानाशाही है। बैठे-बैठे अख़बार पढ़ते-पढ़ते इन तथ्यों की घोषणा राजा साहब ऐसे ढंग से

करते हैं जैसे कोई 'यह दिन है,' "यह रात है" की घोषणा करके खोजपूर्ण रहस्योद्घाटन का दम भरे। उर्दू शायर को राजा साहब बड़े गद्य से दीखते हैं और राजा साहब को यह शायर महोदय बहुत बड़े विद्वान्। राजा साहब सच बोलते हैं। शायर को चिढ़ होती है। उनका कहना है राजासाहब कल्पनाहीन, निर्जीव, निःशक्ति किस्म के गद्य हैं। आप काफ़ी पीजिये। इनकी चुटकी लीजिए, ताज़ा हो जाइए और चले जाइए। आप पद्य बन जायँगे, वह गद्य ही रह जायँगे।

ताज़ा होने पर ही याद आया। राजा साहब की शकल हुक्का नुमा है। उनका सिर उनके ज़िस्म पर ऐसे ही लगता है जैसे हुक्के के अनुपात में असंतुलित चिलम। सारा शरीर एक मोटे पेडापेडम की भाँति चश्मा ऊपर से उसे और भी शोभा प्रदान करता था। मि० अनुज को देखकर बूढ़े उर्दू शायर ने कुछ फब्तियाँ कसीं। मि० अनुज ने उनका प्रतिवाद नहीं किया। राजा साहब ने कहा—आइए मि० अनुज...अनुज के माने होते हैं भ···भ···भ···भाई।"

हकलाते हुए राजा साहब ने उसी तरह इस अर्थ की घोषणा की जैसे उस रोज उन्होंने किसी गर्मागर्म बहस के बीच कहा था···गाँधीजी शान्ति को म···म···म···मानते थे, और जब किसी ने खीझ कर कहा था "जी···" तो उन्होंने कहा था···"हमें गाँधीजी की बात माननी च···च···च···चाहिए।"

मि० अनुज को दोनों की बात बुरी लगी, लेकिन तब तक उन्होंने देखा मीनाक्षी और ममता दोनों मैरून रंग वाली गाड़ी से उतरीं और काफ़ी हाऊस के परिवार-कक्ष की ओर मुड़ीं। मि० अनुज पहले तो अधीर हो गए, उठ खड़े हुए, लेकिन फिर संकोचवश बैठ गए। राजा साहब बोले—"मोरार जी ने सोना बंद कर लिया है" कोई नहीं बोला। सब चुप थे। फिर बोले—"सोना बुरी चीज़ है" फिर भी लोग चुप रहे, फिर बोले—"ह···ह···हमें सोना न···न···नहीं खरीदना च च च च चाहिए।"

सब लोगों की आँखें खुल गईं। लोगों ने देखा राजा साहब कलम से पेज पर सोने के भाव के नीचे निशान लगा रहे थे और एक प्रोफ़ेट की भाँति वह इतनी उज्वल घोषणायें कर रहे थे ?

इसी बीच उनकी नज़र सामने उठी। देखा परिवार-कक्ष से दो महिलायें विशेष हाल की ओर आ रही थीं। हकलाते हुए उन्होंने कहा—"औरतें ग···ग···ग···गन्दी हो···होती हैं ···।"

लोग फिर भी चुप रहे ! राजा साहब ने फिर कहा—

"औ···औ···औरतों क···क···को सोने से मोह होता है।"

लोगों ने फिर भी कोई प्रतिवाद नहीं किया। राजा साहब बोले—

"मोरार जी औरतों से लड़कर नहीं जीत सकते।"

किसी ने पूछा—"क्यों राजा साहब···?"

राजा साहब को जब एक व्यक्ति इस तरह समर्थक रूपमें मिला, तो जैसे उनकी दिव्य प्रतिभा एकदम प्रस्फुटित हो गई। वे बोले—

"औ···और···औरतें बुरी होती हैं···स्वा···स्वा···स्वामी शंकराचार्य ने क···क···क···कहा है..."

तभी बेयरे ने आकर मि० अनुज से बताया कि मेम साहब लोगों ने उन्हें बुलाया है। मि० अनुज की बाछें खिल गयीं। वह उठकर चलने ही वाले थे कि राजा साहब फिर बोले—"औरतों के चक्कर में आदमी गधा हो जाता है।"

सब लोग हँस पड़े। मि० अनुज शर्मा को यह बात बुरी लगी। उनके जी में आया कि वह इसका सख्त जवाब दें, लेकिन बूढ़े उर्दू शायर ने कहा—"जाइये, जाइये साहब···आप कहाँ उलझ रहे हैं···काफ़ी हाऊस के मसीहों से उलझियेगा तो ख़ैरियत नहीं है···"

मि० अनुज कुनमुना कर रह गए। वह उठे और मानाक्षी की मेज पर चले गए। नमस्कार करके आसन ग्रहण किया। दो-एक बार ममता की ओर देखा और चुप हो गए। मीनाक्षी ने ममता की ओर देखते हुए कहा—

"तुम कुछ खामोश सी हो···कुछ बोलो न··"

"जी···यही तो मैं भी कहने वाला था···" मि० अनुज ने कहा।

ममता ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह नाखून से मेज़ के शीशे पर कुछ खरोंच बनाने लगी। मीनाक्षी ने मि० अनुज से कहा—

"आज कुछ उदास हैं ममता···"

"क्यों···?"

"मि० मटियानी के बारे में अदालत का रुख ठीक नहीं था।"

ममता को मीनाक्षी की बात व्यंग्य-सी लगी। वह तिलमिला कर रह गई। मीनाक्षी ने यह व्यंग्य भी जान-बूझ कर किया था। वह यह जानती थी कि बी० के० की मौत का कारण यही है। साथ ही वह यह भी जानती थी कि पुरुषोत्तम मटियानी को यह बचाना चाहती है। सारे वकील एक ओर पुरुषोत्तम मटियानी को फँसाने के चक्कर में थे और साथ ही यह भी चाहते थे कि सरकारी कर्मचारी बच जायँ। सरकारी कर्मचारी केवल अपनी बचत और सुरक्षा चाहते थे। वह और किसी अन्य स्थिति में दिलचस्पी नहीं रखते थे। मि० अनुज ने आश्चर्य से कहा—

"इतने बड़े अराष्ट्रीय और असामाजिक व्यक्ति के लिए आप क्यों परेशान हैं ममता जी···?"

ममता ने इस बार भी उत्तर नहीं दिया।

मि० अनुज मात्र इतना प्रश्न करके चुप हो गये।

अब तक मि० भल्ला, मि० चतुर्वेदी और मि० खन्ना भी आ गये थे। मीनाक्षी और ममता को एक साथ मि० अनुज के पास बैठे देख कर वह लोग भी वहीं आ गये। कुर्सी पर बैठते-बैठते मि० भल्ला ने कहा—

"आप कहते चलिये···यह बात इतनी आसान नहीं है मिस्टर खन्ना, आप लाख साबित कीजिये, लेकिन बी० के० विक्षिप्त और पागल नहीं था।····उसने जान-बूझ कर आत्म-हत्या की है····"

"अगर जान-बूझ कर आत्म-हत्या की है तब भी मैं अपनी बात

साबित कर लूंगा—मेरा मतलब ऐसे क्रिमनल सदियों में एक बार पैदा होते हैं…"

ममता चुपचाप सुन रही थी। बोली—

"यही तो मैं भी कहती हूँ…लेकिन ऐसे क्रिमिनल ही साबित करते हैं कि सरकारी व्यवस्था प्रायः ढीली होती है…उसमें बहुत कुछ आँख मूंद कर किया जाता है…"

"आप का मतलब फ़ूल प्रूफ़ का भी महत्त्व होता है।"

"फ़ूल प्रूफ़ न करना जुर्म है…उस जुर्म का फ़ायदा मि० मटियानी को मिलना चाहिये और एक जान के बदले दो जानें…"

मि० अनुज अब तक तो खामोश सुन रहे थे फिर बोले—

"ममता जी ठीक कहती हैं। मि० मटियानी की जान बचनी ही चाहिये…"

ममता मि० अनुज की ओर सावधानी से देखने लगी। उसके मन में आया कि मि० अनुज की सारी सहानभूति बी० के० के प्रति न होकर मि० मटियानी के प्रति इसलिये है, क्योंकि मैं मि० मटियानी के पक्ष में हूँ। उसने अनुभव किया कि मि० अनुज एक-दम ललचाई दृष्टि से ममता की ओर देख रहे थे। मि० अनुज की समस्त जिज्ञासा जैसे इस बात की इच्छुक थी कि ममता ने उनके कथन का समर्थन किया या नहीं। मीनाक्षी को लगा कि मि० अनुज की समस्त उत्सुकता, समस्त श्रद्धा ममता के प्रति उसी भाँति जागरूक है जिस भाँति कि स्वयम् उसके प्रति मि० अनुज उत्सुक थे। मि० चतुर्वेदी भी इसी बात को भली-भाँति देख रहे थे। मि० खन्ना ने बात का रुख मोड़ते हुए कहा—

"जज का रुख़ आज बहुत अच्छा था। मैं तो चाहता हूँ कि मि० मटियानी की फाँसी बहाल रहे। ऐसा कर देने से एक जुर्म की दो सज़ायें नहीं हो सकतीं…और जब मैं जज के समक्ष यह साबित कर दूंगा कि आप सब लोग बिना क़ुसूर हैं…"

"लेकिन यह साबित हो जाय फिर भी...प्रशासकीय विभाग का दायित्व इससे पूरा नहीं होता..." मि० चतुर्वेदी ने कहा।

"ज़िम्मेदारी किसी की कोई नहीं ले सकता। बी० के० के लिये तमाम ज़मानतों आदि का जैसे कोई अर्थ ही नहीं था। उसने उस प्रस्ताव को स्वीकार ही नहीं किया..." मि० भल्ला ने कहा।

ममता अब तक सारी बातें सुन रही थी। उसने कहा—

"कोई ऐसा तरीका निकालना चाहिये कि आप लोगों की नौकरी भी बच जाय और मि० मटियानी को भी मुक्ति मिल जाय।"

मिस्टर खन्ना ममता की बात सुनकर चुप हो गये। कुछ देर सोचते रहे फिर जैसे काफी सोच-विचार कर बोले—"ऐसा तो कोई रास्ता नहीं निकल सकता..."

"आप तो फौजदारी के मशहूर वकील हैं...आप ही कोई रास्ता क्यों नहीं निकालते..."

"मैं मि० चतुर्वेदी और मिस्टर भल्ला का वकील हूँ...मुझे मि० मटियानी से क्या लेना देना...मुझे अपने आदमियों को बचाना है..."

ममता चुपचाप बैठी रही। बात पिघल कर ऐसे स्वर पर पहुँच गई थी जहाँ से आगे बढ़ना ममता के लिये असंभव प्रतीत होने लगा। मिस्टर खन्ना भी काफी थक चुके थे। वह उठे और उल्टे क़दम कार के पास तक आ गये। उनके पीछे-पीछे और लोग भी उठ खड़े हुए और सीधे बाहर आकर खड़े हो गये। ममता नहीं उठी। केवल उसी के लिये मीनाक्षी भी बैठ गई। सहसा मि० अनुज को याद आया वह तेज़ी से काफ़ी हाऊस के बाहर गये। पिछले दिन की किश्त उन्होंने मिस्टर खन्ना को वापस की और अगले दिन कि किश्त फाईल में लेकर लौटे। हाल में मीनाक्षी और ममता खामोश ही बैठी रहीं। मि० अनुज ने वापस लौटकर बैठते हुए कहा—

"आप लोगों को कुछ नहीं कहना है बी० के० के बारे में....?"

"मुझे बहुत कुछ कहना है..." ममता ने कहा।

"आपका क्या अनुभव है…?" मीनाक्षी ने पूछा।

"मेरा ?"—"उससे बढ़कर मूल्यवान चीज़ उनकी आपस की बात थी। उसमें उसको दखल नहीं देना चाहिये।"

अब तक राजा साहब के टेबुल पर कोई नहीं बैठा था। वह उठे और बिना किसी शील-संकोच के मिस्टर अनुज की मेज़ पर आकर बैठ गये। बैठते ही बैठते बोले—"आत्म हत्या बुरी चीज़ है"

लोग उत्सुक होकर सुनने लगे। उन्होंने आगे कहा—

"बनारस के सोनारों ने आत्महत्या कर लिया है।"

लोग फिर भी चुप रहे। राजा साहब ने कहा—

"आत्मा बुरी चीज़ है"

"क्यों ?" मि० अनुज ने पूछा।

"क्योंकि वह कभी नहीं मरती…मेरी वाइफ़ ने मुझसे कहा मैं आत्म हत्या कर लूँगी…मैंने जानते हैं क्या कहा—"

"क्या कहा ?"

मैंने कहा—" तुम्हारी आत्मा से मैं प्रेम करता हूँ।"

सब लोग एकटक देखने लगे। जब किसी ने कोई प्रतिवाद नहीं किया तो राजा साहब उठे और जाने लगे। जाते-जाते बोले—"राम-राज्य में कोई आत्म-हत्या नहीं करता था।"

राजा साहब चले गये। मीनाक्षी और ममता भी। मि० अनुज पढ़ने में व्यस्त हो गये।

बी० के० फिर जेल वापस चला गया।

जमानत पर छूटने की स्वीकृति उसने दी ही नहीं। ममता ने बहुत चाहा कि वह केवल उस काग़ज़ पर दस्तखत कर दे, वह अदालत से उसे छुड़ा लेगी लेकिन बी० के० को लगा कि जेल में या जेल के बाहर रहने में कोई अन्तर नहीं है। उसने सहर्ष जेल वापस जाना स्वीकार कर लिया। उसे लगा शायद जेल के भीतर उसे अधिक शान्ति मिलेगी।

अपने पूर्व परिचित वार्ड में पहुँचते ही उसका स्वागत करने के लिये झुम्मन खाँ बाहर ही खड़ा मिला। वह बहुत बीमार-सा लगता था और उसके एक हाथ में प्लास्टर बंधा था। बी० के० ने पहुँचते ही पूछा—"क्या हुआ झुम्मन खाँ······?"

वह बोला नहीं उसने महज़ हाथ दिखाया और बस चुप हो गया।

बी० के० के मन में एक भयंकर विषाद घर कर गया। वह झुम्मन खाँ को लेकर अपने वार्ड में गया और बोला—"तुम इतने उदास क्यों हो गये झुम्मन खाँ···?"

"उदास ?" झुम्मन खाँ ने व्यंग्य की हंसी में कहा।

"हाँ उदास ?" बी० के० ने पूछा।

"क्या बतायें साब···हम कबीले के लोग हमेशा बन्दूक से बातें करने वाले और साब इन लोगों ने मुझे बुरी तरह मारा है। हमारा हाथ तक तोड़ दिया है···हम साब इनका मुँह तोड़ सकता था लेकिन मजबूरी···यहाँ निहत्था था, अकेला था।"

और वह फूट-फूट कर रोने लगा।

बी० के० को भी लगा कि झुम्मन खाँ को कोई गहरी चोट लगी है। आखिर क्यों उसने वह पत्र बाहर भेजने के लिये दिया···न वह पत्र देता और न झुम्मन खाँ की यह गति होती। उसके जी में आया वह झुम्मन खाँ को बिल्कुल गले लगा ले और उसके फूट-फूट के रोने के स्वर में अपनी भी करुण सिसकियाँ मिला ले, लेकिन जाने क्यों उसके मन के किसी कोर से उस स्थिति से बचने की भावना उठी। उसने झुम्मन खाँ को गले लगा लिया। स्वयं उसकी भी आँखों में आँसू तो छलछला आये लेकिन वह जैसे खून के घूँट पी गया। केवल मौन रहकर उसने जैसे इस विष को गहरे उतार दिया और जब वह झुम्मन के टूटे हुए हाथ को संभाल कर उससे गला मिलने लगा उसी समय ही जाने कहाँ से पूसी बिल्ली भी आ गई और बी० के० के तलवों को चाटने लगी। बी० के० का ध्यान टूट गया। उसने मुड़ कर देखा पूसी अपने अगले पंजों से बी० के० के

कपड़ों को नोच रही थी। बी० के० ने उसे गोद में उठा लिया और अपने वार्ड में चला गया। वार्डर ने बी० के० के और झुम्मन मियाँ के इस रूप को गौर से देखा और उसके चेहरे से लगा जैसे उसने कुढ़ कर क्रोध को पी लिया है। उसने झुम्मन खाँ को छोड़ दिया और खुद वार्डन की ओर चला गया।

आधी रात गये फिर एक खटका हुआ। बी० के० की नींद खुल गई।

उसने देखा पुरुषोत्तम मटियानी उसके सामने था और उसके निकटतम चला आ रहा था। उसने बी० के० के एक-दम निकट आकर कहा—"सो गये हो ?"

"नहीं" बी० के० ने कहा। "तुम कौन हो ?"

"सात बच्चों का बाप···" आवाज़ आई।

"तुम आ गये कामरेड···?" बी० के० ने कहा।

"हाँ, आ गया···" फिर चुप हो गया। बोला—

"ममता से मिलकर आये हो···?"

"हाँ···"

"विनती कैसी है ?"

"विनती कौन ?" बी० के० ने पूछा

"अन्धी विनती" उसने दोहराया।

बी० के० को जैसे आवेश आ गया। वह कुढ़कर उठ बैठा। बोला—

" तुम्हे लज्जा नहीं आती···तुम ने उसकी जिन्दगी बर्बाद कर दी है···"

वह कुछ नहीं बोला लेकिन कुछ ही क्षण बाद उसने एक-दम भरे हुए गले से कहा—"क्या तुम भी यही सोचते हो ?"

"क्यों, क्या मैं कुछ और भी सोच सकता हूँ तुम्हारे विषय में ?"

"हाँ। सोच सकने का सवाल नहीं है सोचना पड़ेगा।"

"क्यों ?"

"क्योंकि तुम मूर्ख हो, बिना सोचे रह नहीं सकते हो···तुम महज़ सोच सकते हो कुछ कर नहीं सकते···तुम समझते हो मैंने विनती को अपमानित किया है, उसके साथ बलात्कार किया है, क्यों ?"

"तुम्हें क्या कहना है ?"

"कुछ नहीं, क्योंकि मैं जो कुछ भी कहूँगा तुम उसे नहीं मानोगे··· तुमको मेरे ऊपर विश्वास जो नहीं है।"

और वह जाने लगा। बी० के० ने उसे रोका। उससे पूछा कि वह क्या कहना चाहता है। कुछ देर तक मौन रहने के बाद फिर उसने कहा—

"विनती अन्धी थी···उसे अपने रूप का कुछ भी ज्ञान नहीं था। ममता सुन्दर थी। उसे अपने रूप पर अभिमान था। इनका पिता इन दोनों को बम्बई लेकर महज़ फ़िल्म में नौकरी दिलाने के लिये लाया था। दोनों को उसने एक सेठ के हाथ बेच दिया था—सेठ जो आज भी बम्बई में है और करोड़पति है। मैंने उसी के यहाँ से इन दोनों लड़कियों को उसके चंगुल से छुड़ाया था।"

"और उस एहसान की क़ीमत तुम आज तक ले रहे हो ?"

मटियानी बी० के० की बात सुनकर तिलमिला गया। बोला—

"एहसान की कीमत ली नहीं जाती उसका भुगतान हो जाता है··· कोई भी आदमी किये गये एहसान की क़ीमत लेना नहीं चाहता कभी-कभी ऐसा भी होता है कि जो कुछ भी साधारण व्यवहार आदमी करता है वह भी एहसान की कीमत जैसा ही लगता है···"

और मटियानी उठकर जाने लगा। बी० के० ने उस अन्धेरे कमरे में उसे पकड़ लिया। आवेश में बोला—"पूरी बात बताके जाओ।"

"बात तो अभी पूरी हुई नहीं, मैं बताऊँ क्या ?" यह सही है कि मैंने ममता और विनती दोनों के साथ बिल्कुल एक आवारा गुन्डे जैसा व्यवहार किया है। मुझे दोनों ही अच्छी लगीं। दोनों मुझे रूपवती लगीं। दोनों का सौन्दर्य मैंने भोगा है···लेकिन मांसलता, मात्र मांसलता

से भी कभी-कभी एक रोशनी मिलती है, रोशनी उसकी पार्थिवता की, उसके मूर्तत्व (Concretness) की…तुम अनुमान नहीं कर सकते उस क्षण जब केवल पाशविकता से उद्भूत होकर आत्मा की मलज़ रोशनी एक-दम से फूट कर निकलती है—वह रोशनी ग्लानि की नहीं आत्म-साक्षात्कार की रोशनी होती है – वह रोशनी होती है जिसमें आदमी एक-दम नंगा, निरावरण होकर भी सजीव और सजग हो उठता है…एक चेतना उसे झकझोर जाती है, एक संवेदना उसके कण-कण को कंपा देती है, गला देती है…"

वह बैठ गया। भरे हुये गले से बोला—

"वह एक अजीब रात थी…विनती का पिता शराब पीकर बेहोश पड़ा था। मैं भी दिनभर की दौड़-धूप से थक कर आया था। अन्धी विनती अपने कमरे में थी। घर में कोई नहीं था। ममता बाहर गई थी। मैं अपने कमरे में जाकर सो गया लेकिन नींद नहीं आ रही थी। मैं अपने कमरे से उठकर विनती के कमरे में चला गया…विनती जो मुझे ममता से भी अधिक सुन्दर लगती थी…विनती जो मुझे ममता से अधिक सरल लगती थी, मैंने उसका हाथ पकड़ लिया। वह चौंक पड़ी। चीखने ही वाली थी कि मैंने उसका मुँह बन्द कर दिया। कन्धे से उसे पकड़कर ऊपर उठाया। मैं जानता था कि वह कुछ नहीं कर सकती है, भागना चाहे तो भाग भी नहीं सकती है…रोना चाहे तो रो भी नहीं सकती, रूठना चाहे तो रूठ भी नहीं सकती…लेकिन उसी क्षण जाने कैसी रोशनी-सी दौड़ गई। मेरे ओंठ जो उसके माथे पर थे, मेरी आँखें जो उसके कपूरी चेहरे पर धूम्रशिखा सी मंडरा रही थी, एक-दम भर आईं। मुझे लगा मेरे भीतर एक सैलाब उमड़ आया है…ऐसा सैलाब जिसमें मैं तिनके-सा बहा जा रहा हूँ…मेरे बन्धन ढीले पड़ गये, मेरा समस्त पहाड़ जैसा कठोरपन जैसे गल गया। मैंने उसे छोड़ दिया, वह एक लाश-सी चारपाई पर गिर पड़ी। मैं अपने कमरे में वापस चला आया। स्काच का एक पेग और लिया। नींद नहीं आ रही थी। पलंग पर पड़ा-

पड़ा मैं करवट बदलने लगा···और मेरे भीतर का सैलाब बढ़ता गया··· बढ़ता गया···मुझे रात भर नींद नहीं आई···

"और दूसरे दिन सुबह जैसे वह सैलाब उतर गया था। मैं फिर वही कठोर चट्टान था···वही दृढ़ पत्थर, वही ग्रेनाइट जो तप कर काला हो गया था जिसे न तो निर्मल से निर्मल जल धो सकता था, न तरल से तरल चीज नम कर सकती थी···

"लेकिन उस दिन से जब भी विनती मेरे सामने पड़ती जाने क्यों मेरे मन में एक सहज कोमलता उभर आती···कोमलता जिसका अर्थ, जिसका सम्बंध शायद मेरे जीवन से न तो कभी था, न होगा···मैं उससे कुछ नहीं कह पाता था···मेरी विवशता जाने क्यों अपने आप में एक पूर्ण आहुति बन जाती थी।

एक दिन विनती सो रही थी। सोया हुआ आदमी भी धुँये के समान होता है। विनती के जिस्म पर से कपड़े खिसक गये थे। रात के बारह बज चुके थे और घर में सिवा उसके बेहोश पिता के और कोई था नहीं। मैं विनती के दरवाज़े पर पहुँचकर ठिठक गया था। मेरे क़दम आगे की ओर बढ़ ही नहीं पा रहे थे। मैं एकटक उसके उस नग्न सौन्दर्य को देख रहा था···आकारवत रेखाओं को जैसे किसी ने घुमा-घुमा कर नये-नये वृत्तों के संतुलन से सर्वथा नये संदर्भ से जोड़ दिया था···मैं एकदम निकट चला गया···उसके सघन केशों को मैंने बिखरा दिया—हवा के झोंके से उन्होंने उसके कमर तक के शरीर को ढँक लिया···मैं नहीं जानता मैं अवाक सा क्यों था ?

"इसके पहले भी नारी, औरत के रूप में मेरे जीवन में कई बार आई थी। मैंने उसे ठंडे गोश्त के रूप में पाया था, स्थूल मांसलता से ओत-प्रोत पाया था, उसे एक जिज्ञासा की शिखा-सा पाया था, उसके सम्पूर्ण जिस्म को तोड़कर रस ग्रहण करने की इच्छा भी हुई थी···लेकिन वह जिस्म कहीं इतना निर्मल, इतना पवित्र भी होता है—मैं नहीं जानता था···कहीं वह बर्फ़ सा उज्ज्वल, स्पर्श में शीतल और भोग में आत्मा को

जगा देने वाला था···उसकी उष्णता में एक पवित्रता थी···एक तुष्टि थी जो मुझे बार-बार कंपित कर देती थी···मैं धीरे-धीरे उसके सघन केशों को अपनी चुटकियों में सहलाने लगा···प्रत्येक स्पर्श में जैसे अन्तरतम तक की ज्वाला को शान्त करने की क्षमता थी लेकिन यह शांति यदि अपने में उपलब्धि होती तो शायद मैं मर जाता। यह शांति मुझे एक दूसरे प्रकार की उद्विग्नता दे गई और वह उद्विग्नता थी इस अनुभूति की कि क्या मैं वह नहीं हूँ जो इस कोमल स्पर्श के पहले था। मैंने अपने हाथ से न जाने कितनों का गला दबाया होगा, इन्हीं हाथों से छुरी चलाई होगी, न जाने कितने सुन्दर चेहरों पर तेज़ाब फेका होगा लेकिन वही हाथ यहाँ आकर इतनी संवेदनाओं के वाहक हो जायेंगे यह मैं नहीं जानता था।

"मेरा सम्बन्ध ममता से भी था। ममता के साथ भी मुझे कुछ इसी प्रकार का अनुभव हुआ लेकिन इतना तीव्र नहीं···इससे काफ़ी कम···मैंने ममता को केवल वासना की तृप्ति का साधन बनाया था···उसके जिस्म से मुझे उसी की उत्तेजना मिलती थी वही जिस्म की भूख मैंने विनती के साथ भी अनुभव किया था लेकिन मेरा वह अनुभव वहाँ पहुँचते-पहुँचते बदल जाता था···मुझे लगता था मैं उसे अपवित्र नहीं कर सकता···मैंने एक दिन विनती से पूछा—"तुम अपने को स्वयं कैसी लगती हो ?"

"जैसी हूँ वैसी ही लगती हूँगी···"

"तुम कैसी हो ?" मैंने पूछा।

"वह मैं नहीं जानती···"

"विनती के इन वाक्यों के समक्ष मैं जैसे नितान्त अवाक् हो गया था। मुझे बार-बार लगता जैसे वह मुझसे कुछ छिपाना चाहती है। मैंने उसे एक बार अपनी बाहों में घेर लिया, एकदम निकट लाकर मैंने पूछा—"और तुम इतनी सुन्दर हो..."

"उसने अपने हाथ से मेरे मुँह को बन्द कर दिया। बोली—

"सुन्दर कोई चीज़ नहीं···शायद यह मन की बात होती है···"

"मैं तुम्हें कैसा लगता हूँ···" मैंने पूछा।

"केवल पुरुष···"

"और कुछ नहीं ?" मैंने फिर पूछा।

"इससे अधिक मैं तुम्हें जान भी कैसे सकती हूँ···"

"मैं क्या केवल पुरुष हूँ ?···मेरे हृदय नहीं है ?···मैं जीवन को किसी भी अन्य प्रकार से नहीं देख सकता ?···"

"तुम देख सकते हो···लेकिन मैं तो महज़ अनुभव कर सकती हूँ···मेरे अनुभव से तुम केवल पुरुष हो···"

"विनती जो कुछ भी कह रही थी वह उसकी अपनी बात थी। मेरे लिए यह सोचना कठिन था···मैं केवल अधिकार चाहता था, भोग चाहता था, सुख चाहता था और हर उस चीज़ को अपनी मुट्ठी में बन्द करना चाहता था जो मेरी इच्छा से उपजी है···"

कहते-कहते मटियानी रुक गया। वह जाने क्या सोचने लगा। बी० के० ने पूछा—"तुमने जीवन को और किसी भी प्रकार अनुभव नहीं किया ?"

"नहीं···दया मुझे पसन्द नहीं थी, क्षमा न मुझे मिली और न मैं किसी को क्षमा कर सकता था, सेवा मुझे अपाहिजों की चीज़ लगती रही है और उपकार···" वह व्यंग की हँसी हँसा और बोला—"उपकार मेरे साथ सदैव स्वार्थ के हाथों बँधा ही आया है इसलिए मैंने उसे कभी आदर दिया ही नहीं।"

बी० के० समझ नहीं सका जो व्यक्ति इतना तर्क-वितर्क कर सकता है वह आज इतना बड़ा अपराधी कैसे बन गया। विवेक अपराध को समाप्त कर देता है। बी० के० ने कहा—"क्या जिसकी समस्त उदात्त शक्तियाँ मर जाती हैं वह भी यह सब सोच सकता है···?क्या अपराध-संस्कार से ग्रस्त व्यक्ति भी एक साथ इतनी बातें सोच सकता है···?"

"क्यों क्या अपराधी आदमी नहीं होता ? शायद वह इतना अधिक संवेदनशील होता है कि लगता है वह संवेदन शून्य है···संवेदनहीन है···"

कहते-कहते मटियानी की आवाज़ काँपने लगी। बोला—

"तुम मेरी ज़िन्दगी नहीं जानते···सौतेली माँ की उपेक्षाओं और यातनाओं को सहते-सहते मैं आज इस दशा को पहुँच गया हूँ···माँ का स्नेह मिला ही नहीं, भरे-पूरे घर में केवल उपेक्षा, अपमान——ही मेरा जीवन रहा है···पिता एक बड़े पुलिस आफ़िसर, माँ एक बड़े पुलिस आफिसर की लड़की···मुझे अपने घर में ही छोटी-छोटी सुविधाओं के लिए लड़ना पड़ता था···लड़ते-लड़ते मेरी प्रकृति ही बन गई···हर सुख को छीनो, तभी माँगने का सुख मिल सकता है, आज भी जो सुख मुझे बिना संघर्ष के मिल जाता है, मैं उसे भोग नहीं पाता और जिस सुख को मैं जूझ कर अपने लिए उपार्जित करता हूँ उसमें मुझे तुष्टि मिलती है···शायद विनती ही वह पहला सुख थी जो बिना संघर्ष के मिली और जिसे बिना उपार्जित किये मुझे अनन्त सुख का अनुभव हुआ······"

मटियानी कहता जा रहा था—"मैं चाहता तो विनती को एक क्षण में अपने वश में कर लेता··· जो मेरी दया पर जी रहा हो, जिसके पास केवल मेरे आधार के सिवा और कुछ हो ही नहीं, उसके आभार को मैं जब चाहता अपने वश में कर लेता, उसे खरीद कर भाग सकता था, लेकिन वह कौन-सी चीज थी जो मुझे रोक देती थी, मैं आज तक समझ नहीं पाया—शायद वह मेरी कमज़ोरी थी।

जब मटियानी इस घटना का वर्णन कर रहा था तो लगता था जैसे अंधेरा और गाढ़ा होकर उसको चारो ओर से कस रहा है। कोई ऐसी शक्ति जो बी० के० के मन में बार-बार मटियानी के प्रति उपजी हुई सहानुभूति को दबा देती है, क्यों ? यह वह स्वयं नहीं अनुभव कर पा रहा था। शायद यह उसका अपना निजी संस्कार था, अपनी निजी

सीमा थी, अपनी निजी भावना थी। इस संघर्ष में उनके मुँह से निकल गया—

"हर अपराधी एक जीवन दर्शन बनाता ही है···ममता के चेहरे पर गंदे जख्मों के चिन्ह और अपने सुख के लिए किसी दूसरे का गला घोंट देने वाले हाथ शायद बिना दर्शन के जी नहीं सकते थे···तुम्हारे सारे दर्शन के पीछे एक ही सत्य है—भूख और आग······"

बी० के० की इस कटु आलोचना से जैसे मटियानी तिलमिला उठा। बोला—"ममता ने मुझे गलत समझा। मैंने उसे अपने जीवन के बड़े महत्वपूर्ण क्षण दिए हैं···"

"महत्वपूर्ण क्षणों का क्या मतलब ?"

"महत्वपूर्ण सम्पर्कों के क्षण···"

"तुम्हारा मतलब उन क्षणों से है जब तुम केवल पशु की भाँति शरीर की भूख···"

"उससे भी अधिक महत्वपूर्ण···जब मैं अपने को बार-बार खो चुकने के बाद पाता था···जब मुझे अपने इस जीवन के प्रति घृणा की भावना उपजने लगती थी···"

"और वह घृणा की भावना भी तभी विकसित होती थी जब ममता से उसके परिवार के प्रति किये गये उपकारों की क़ीमत तुम पाई-पाई चुका देते थे···"

"शायद नहीं···" मटियानी ने उत्तर दिया। फिर बोला—

"जिस-जिस के प्रति मेरी दृष्टि केवल दया की थी, मैंने उसे अपने वश में कर लिया था और उसकी कीमत ले लेने के बाद फिर मैंने सदा के लिए भुला दिया था। ममता पहले मेरी इस बात को भली-भाँति नहीं जानती थी लेकिन शायद आज वह इस तत्व को भलीभाँति जानती है।"

बी० के० अभी चुपचाप सुन रहा था लेकिन जब मटियानी का समस्त अहं केवल इतने में ही सिमट गया तो उसे लगा जैसे बुरा आदमी होते

हुए भी मटियानी में कहीं कुछ ऐसा है जिसमें कोमलता अपने आप रमती है···बी० के० ने कहा—

"और जिसके प्रति तुम दया करते थे क्या उसमें रस देने की क्षमता थी···मैं समझता हूँ रस की स्निग्धता अपरिहार्य है···"

"रस···रस के लिए मेरे बाज़ू काफ़ी थे···रस निचोड़ा जाता है साहब···मैं निचोड़ना जानता था···और हर सम्भावना को निचोड़ लेता था···"

बी० के० को लगा जैसे उसके मुँह में सड़े हुए गन्ने का रस किसी ने बलात् ही उड़ेल दिया है। वह थोड़ा परेशान और विक्षिप्त भी हुआ। बोला—

"क्रूरता रस की निष्पत्ति नहीं उसका विसर्जन करती है ?"

"मकड़ी जब मक्खी को पकड़ती है, तो देखने वाले को क्रूर लगता है, लेकिन वह तो आनन्द का सृजन करती है···"

बी० के० का जी और घिना गया। उसने आँखें बन्द कर लीं और सीखचों के बाहर थूक दिया। उसके सामने चित्र आने लगे··· उस शराबी पिता के जो केवल नशे में डूबा रहता था, उस अंधी विनती के जिसे धीरे-धीरे मटियानी अपने वृत्त में घेर लाया था, उस ममता का जिसे उसने केवल कीमत देकर ख़रीद रखा था···स्वयं उसके कुरूप, भद्दे, मोटे शरीर का जिसके बीचों-बीच एक राक्षसी प्यास थी, एक तृष्णा थी···कुछ अपने से ऊब कर उसने कहा—"अब क्या चाहते हो···?"

"केवल जीवनदान···एक बार जेल से निकलकर मैं शरीफ आदमी बनकर रहना चाहता हूँ···चाहता हूँ मैं उन तथ्यों का भी अनुभव करूँ जिसे संसार अच्छा कहता है···मैं एक बार पिता, पति, मित्र के रूप में रहना चाहता हूँ···मेरे सात बच्चे और अँधी पत्नी···"

उस अँधरे में मटियानी की प्रत्येक बात जैसे तीव्र अनुभूति बन्द कर उभरी आ रही थी। बी० के० को लगता था, जैसे उस अँधेरे में मटियानी

की आँखें चमक रही हैं और चमकती आ रही हैं···वह तैर कर सीखचों के बाहर विस्तृत मैदान में, चहारदीवारी के पास पत्थरों को बाँधकर निकली जा रही है···आँखें···दो बड़ी-बड़ी आर्द्र आँखें···नितान्त बेबस, मजबूर और थकी हुई आँखें···दो उदास और खामोश आँखें।

बी० के० ने उलट कर देखा मटियानी वापस जा रहा था। लँगड़े पैरों से वह चहारदीवारी की ऊँचाई को लाँघ रहा था और उस पार जाकर उतर रहा था। धीरे-धीरे वह दीवार के उस पार चला गया। सहसा शोर हुआ। एक साथ शोर हुआ। मटियानी शायद पकड़ लिया गया था। बी० के० अपने वार्ड से सुन रहा था···मटियानी चीख रहा था और जैसे उस पर लाठियाँ पड़ रहीं थीं। धीरे-धीरे शोर कम हो गया। फिर लगा उसे घसीट कर ले जाया जा रहा है। चीख···भयंकर चीख···फिर धीमी चीख, चीख उस गले की जो सैकड़ों का गला दबाने के बाद भी चीखा नहीं होगा। बी० के० को लगा धीरे-धीरे सुबुकने की आवाज़ अभेद्य दीवारों को भी बोध कर भीतर चली आ रही है। रात भर बी० के० को नींद नहीं आयी। उसके सामने विनती, ममता और मटियानी की शक्लें बार-बार नाच जाती थीं···

सहसा उसने देखा सामने की खपरैल से कूद कर पूसी उसके वार्ड में आई। चारों ओर घूम कर वह बी० के० की चारपाई पर बिलकुल उसके बगल में आकर लेट गयी। बी० के० ने उसके नर्म रोओं पर हाथ फेरना शुरू किया। वह सो गयी।

सुबह जब बी० के० की नींद खुली तो उसने देखा पूसी उसके कमरे के बाहर गुर्रा रही थी और भीतर एक बहुत बड़ा मोटा चूहा आ गया था। चूहा कमरे के बाहर निकलना चाहता था। लेकिन पूसी सीखचों के बाहर खड़ी थी। चूहा दीवार से लगा दुबका हुआ बैठा था··· जैसे एक घटना महान दुर्घटना के गर्भ में पड़ी दुबुक कर सोने का प्रयास कर रही हो। बी० के० ने किसी प्रकार बड़ी कठिनाई से बिल्ली को कमरे के बाहर दरवाज़े से हटाया। चूहा एकदम से बाहर निकला।

बिल्ली ने पीछा किया लेकिन वह तब तक नालियों में जा चुका था। बिल्ली काफ़ी देर तक पाँव से मिट्टी कुरेदती रही लेकिन अंत में निराश होकर चली गयी।

दिन भर बी० के० की तबियत बोझिल-बोझिल-सी थी। वार्डर ने आकर बताया था कि रात मिस्टर मटियानी पर इतनी मार पड़ी कि आज इस समय उसे बुख़ार आ गया है। वह अस्पताल ले जाया जा रहा है। वहीं उसकी दवा होगी। उसने यह भी बताया कि मिस्टर मटियानी का जिस्म जगह-जगह फूट गया है। उसके हाथ पर जो लाठियाँ पड़ी हैं वह शायद उसके हाथ पर और भी गहरा ज़ख्म कर गयी हैं। अजब नहीं की उसका हाथ टूट भी गया हो। बी० के० ख़ामोश वार्डर की बातें सुनता रहा। उसे लगा, जैसे वह क्रूरता जिसके माध्यम से मटियानी रस का सर्जन करता था वह जब उससे पृथक आरोपित होती है, तो इतनी ही क्रूर होती है···इतनी ही कठोर होती है।

शाम को बी० के० को सूचना मिली कि अस्पताल में मटियानी की तबियत ज्यादा खराब हो गयी है। वह कुछ बेचैन-सा हो उठा। वह कुछ सोच नहीं पा रहा था कि क्या करे कि इतने में ही सूचना मिली कि बी० के० के वकील उससे मिलना चाहते हैं। बी० के० अपने वार्ड से निकल कर आफ़िस में आया। देखा वकील के साथ-साथ ममता भी थी। एक बार उसके जी में आया वह मिलने से इन्कार कर दे और वापस चला जाय, लेकिन फिर जाने क्यों वह निर्णय नहीं कर सका। वह सीधा आफ़िस में जाकर बैठ गया। वकील और ममता उसे देखने लगे। वकील ने उसके सामने कागज़ पेश किया और उस पर हस्ताक्षर करने के लिए कहा लेकिन तभी ममता बोली—

"तुमने मेरे साथ बड़ा अन्याय किया है···"

"क्यों ?" बी० के० ने प्रश्न किया।

"बिना मुझसे मिले तुम उस दिन चले गये···तुमने समझा नहीं कि मैं वह ममता नहीं हूँ, जो तुमसे कई साल पहिले बम्बई में मिली थी···"

"शायद तुम उस समय ज़्यादा ईमानदार और अच्छी थीं···"

"और अब ?"

"अब तुम उससे कहीं अधिक क्रूर और कठोर हो···"

ममता जैसे इन वाक्यों की आशा नहीं करती थी। वह समझती थी कि बी० के० को उसके भीतर जितना भी परिवर्तन हो चुका था वह उसको मान्य होगा। लेकिन बी० के० के इस वाक्य से उसमें एक विक्षिप्तता-सी जाग उठी। उसने कुछ आवेश में कहा—

"मैं अपने परिवर्तन के लिए किसी की अनुभूति नहीं चाहती लेकिन···"

"लेकिन यह जरूर चाहती हो कि उसके समर्थक स्वयं तुम्हारा समर्थन करें···मैं नहीं जानता तुममें परिवर्तन कहाँ हुआ है···मटियानी आज भी तुम्हारी आत्मा का सम्राट है······शायद वह और उसकी क्रूरता ही तुम्हें चाहिए।"

"कैसी क्रूरता ?" ममता ने पूछा।

"वह क्रूरता जो गला दबा कर रस निचोड़ सके, जिसमें दया के साथ-साथ जिस्म की कीमत लगाई जा सके···"

"जिस्म की कीमत ?" कुछ आश्चर्य से ममता ने कहा। थोड़ी देर तक कुछ और सोचती रही। बीच-बीच में तो बी० के० की ओर देख लेती, लेकिन फिर मौन होकर जैसे अपने ही विचारों में डूब जाती। अपनी विवशता में उसने कहा—"जिस्म की कीमत कहाँ नहीं लगती··· वह जो ब्याही हुई पत्नी है क्या वह अपने जिस्म की कीमत नहीं लेती या वह जो पति के साथ चिता पर जल जाती है, वह अपने जिस्म की कीमत नहीं लेती···तुम्हारे ऐसे लोग एक ही स्थित को दो पैमानों से अलग-अलग देखते हैं······मैं दोनों में कोई फ़र्क नहीं पाती···"

तुम्हें उसका अन्तर क्या मालूम होगा, तुमने दोनों में से एक का निर्वाह भी क्या किया है या क्या एक का भी निर्वाह कर सकती हो···?"

ममता बी० के० के इस अन्तिम वाक्य से एकदम विक्षिप्त हो

गयी। उसने किसी भी प्रकार का प्रतिवाद करना उचित नहीं समझा। वह उठ कर बाहर जाने लगी, लेकिन तभी बी० के० ने उसे बुलाया। ममता ने मुड़कर देखा और जहाँ की तहाँ खड़ी रह गयी। बी० के० की ओर उसने मुड़कर देखा। पहली बार बी० के० के आँखों में आँसू थे। बी० के० ने कहा—"मैं भावुक हो जाता हूँ······क्यों हो जाता हूँ मेरी समझ में नहीं आता······शायद इसलिए कि जीवन में मुझे कभी वह स्नेह मिला ही नहीं जो आदमी को उदास बना देती है·· शायद··· शायद······"

कहते-कहते बी० के० फूट पड़ा। उसके भीतर की अन्तः सलिल जैसे स्रोतस्वनी की ओज सी फूट पड़ी। जाने कितनी वेदना थी उसके अन्दर जो पिघल कर आँसू बन गयी थी। स्वयं ममता के आँखों में भी आँसू छलछला आये। ममता कुछ कहना चाहती थी लेकिन उसके मुँह से वाक्य ही नहीं निकला। वकील बेचारे की समझ में कुछ नहीं आया, कि वह क्या करे। उसने अपना कागज समेट लिया और पोर्टफोलियो में रख लिया।

सहसा आफ़िस के बाहर एक एम्बुलेंस गाड़ी आकर खड़ी हुई। भीतर कुछ शोर हुआ। थोड़ी देर बाद स्ट्रेचर पर लेटे हुए मटियानी को चार आदमी टाँगे हुए भीतर से निकले। बी० के० देखकर सन्न रह गया, मटियानी का चेहरा फूला हुआ था। आँखें बन्द थीं। और वह बेहोशी के हालत में पड़ा था। ममता भी उसे देख कर चौंक गयी। एक-दम से चीख-सी पड़ी वह। ज़ेल के वार्डन ने एक बार भद्दी आकृतियाँ बनाकर ममता की ओर देखा और काठ के मोटे भद्दे कठपुतले जैसे आफिस से मटियानी को लेकर निकल गये। थोड़ी देर बाद एक सन्नाटा-सा छा गया। ममता ने विवशतापूर्ण नेत्रों से बी० के० की ओर देखा। बी० के० ने अपनी आँखें नीची कर लीं। वकील साहब ने कहा—

"लगता है जेल-अधिकारियों ने इसे बुरी तरह पीटा है······और इसका अंग-अंग टूट गया है···"

बी० के० कुछ नहीं बोला । वह नीची निगाह किये बैठा ही रहा । ममता ने कहा—"क्या जेल में मार भी पड़ती है ।"

कोई नहीं बोला । ममता ने फिर कहा—

"जिसको मौत की सज़ा मिली होती है क्या वह भी इस तरह घायल कर दिया जाता है ।"

वकील तब भी कुछ नहीं बोला । ममता ने बी० के० के कन्धों को झिझोड़ कर फिर पूछा । बी० के० ने केवल अपनी झुकी हुई गर्दन ऊपर उठा ली और निरीह आँखों से उसने एक बार ममता की ओर देखा । ममता का आवेश जैसे शिथिल पड़ गया । वह धीरे-धीरे आफ़िस के बाहर चली गयी । वकील साहब भी पीछे-पीछे चले गये । ममता मोटर में बैठ गयी । मोटर स्टार्ट हो गयी । बी० के० आफ़िस में बैठा-बैठा उड़ती हुई गर्द को देर तक देखता रहा ।

पन्द्रह दिन तक बी० के० एक विचित्र आत्म-पीड़ा से उदिग्न रहा । इन पन्द्रह दिनों में उसके केवल दो ही मित्र थे—एक पूसी और दूसरे झुम्मन मियाँ ।

आज झुम्मन मियाँ रोज की तरह फिर बी० के० पास आ गया था । उसने फिर कहना शुरू किया था कि औरत से ज्यादा बेवफा संसार में कोई जीव होता ही नहीं । पहले तो कुछ देर तक बी० के० उसकी बात को अनसुना करता जा रहा था । वह अपनी बात सुनाता जा रहा था ।

"एक औरत के ज़ात से मुझे यहाँ ज़ेल की रोटियाँ तोड़नी पड़ रही हैं ।

मेरा व्यापार खत्म हो गया । लखनऊ के अमीनाबाद पार्क में मेवा फ़रोश था, कौन ऐसा था जो मेरे पास नहीं आता था । लेकिन एक बेवफ़ा बीबी ने मुझे आज यहाँ ला दिया···"

"यहाँ तो तुम अपनी पसंद से आये हो···तुम चाहते तो नहीं भी आ सकते थे । बीबी छोड़ कर दूसरी शादी भी कर सकते थे—"

"यही तो नहीं कर सकता था बी० के० साहब…ज़ालिम इतनी हसीन और दिल फ़रेब थी कि उसे मेरा ही होकर रहना था…मैं उसके बग़ैर ज़िन्दा नहीं रह सकता था…"

"अब कैसे ज़िन्दा हो ?" बी० के० ने पूछा।

"यह जुदाई बर्दाश्त है, बी० के० साहब" उसने एक ठंडी साँस लेकर कहा : बी० के० के समझ में नहीं आया जो व्यक्तित्व किसी के लिए इतना महत्वपूर्ण हो वह आखिर इतनी आसानी से मारा कैसे जा सकता है…वह कुछ और पूछने ही वाला था कि झुम्मन मियाँ ने खुद कहा… "लोग रूह की तारीफ़ करते हैं बी० के० साहब……मैं भी रूह का ही क़ायल था लेकिन जिस्म की हरारत भी एक चीज़ होती है। मैं उस हरारत के सामने पिघल जाता था। मैंने बरसों उसकी बेवफ़ाई जानते हुए भी उसे दरगुज़र किया और मैंने देखा, बावजूद इन सब के उसकी जिस्मानी मलाहिमत और ख़ूबसूरती में कोई अन्तर नहीं आया। मैंने उस ज़हर को पी लेना चाहा लेकिन दबी हुई तलख़ी एक दिन तूफ़ान बन गयी…"

"और तुमने उस तलख़ी के सहारे एक इन्सान की जान भी ले ली…"

"इसे छोड़िए, बी० के० साहब……उसने मुझे ज़िन्दगी दी थी नये ईमान दिये थे। मैं समझता था हुस्न कभी बेताक़त नहीं होता…" "आदमी की बुज़दिली से फ़ायदा उठाया जा सकता था…तुम चाहते तो उसे छोड़ देते और दूसरा निकाह कर लेते…वह ज़िन्दा रह जाती… तुम यहाँ न होते…"

"मैं पठान हूँ बी० के० साहब……मैं बदला लेना भी जानता हूँ…लेकिन…"

"लेकिन क्या ?"

"लेकिन बी० के० साहब…कम्बख्त मर तो गयी है लेकिन आज

भी एक दाग़ छोड़ गयी……ऐसा दाग़ ऐसी याद जिसे मैं भुला नहीं पाता…"

बी० के० ख़ामोश हो गया। वह सोचने लगा यह पठान आत्मा नाम की किसी भी चीज़ को मानता नहीं है तो क्या जिस्म, केवल जिस्म इतना आकर्षक हो सकता है कि आदमी उसकी याद में इतना डूब जाय और फिर अगर जिस्म इतना प्रभावित करने वाला था तो फिर उसकी हत्या कैसे की गयी ? बी० के० ने पूछा…"तुमने और कभी भी हत्यायें की थीं ?"

"जी नहीं।"

"फिर इतने सुन्दर ज़िस्म की तुमने कैसे हत्या की…?"

"बस एक लम्हा था जिन्दगी का साव……महज़ एक लम्हा मेरी मर्दानगी का आब जाग उठा था…मैं अब्रशार का पानी पीने वाला गन्दे तालाब पर कनायत नहीं कर सका……मैंने अपनी बन्दूक़ उठायी और बस उसका ख़ात्मा कर दिया…"

"ज़िस्म की सारी पाकीज़गी तुम भूल गये" बी० के ने कहा।

"जिस्म तो पाक था ही नहीं, मेरी नज़रों में महज़ एक नशा था जिसके टूटते ख़ुमार को उसका जिस्म सँभाल लेता था…मेरे टूटते जिस्म को एक जिस्म ही तो सहारा दे सकता था…मुझे लगा जब वह सहारा ही गन्दा हो चुका है तो…"

"और गन्दगी तुम किसे कहत हो झुम्मन मियाँ कहीं ऐसा तो नहीं कि तुम महज वहम के शिकार हुए हो…"

"वहम ?"

झुम्मन मियाँ बी० के० का सवाल दुहरा कर ख़ामोश हो गये। लगा सचमुच कहीं वहम ही तो नहीं था। बी० के० ने पूछा—

"तुम्हारे पास सबूत क्या था…या जो भी सबूत तुम्हारे पास था क्या वह क़त्ल के लिए क़ाफ़ी था…मैं कहता हूँ……तुम्हारी बीबी में कोई खराबी नहीं थी…"

"साब" झुम्मन मियाँ चीख पड़ा। बी० के० कहता जा रहा था— "चूँकि तुम्हारी बीवी जरूरत से ज़्यादा हसीन थी और तुम जरूरत से ज़्यादा बदशक्ल…बस यही कारण था और कुछ नहीं…"

बी० के० की बात सुनकर झुम्मन मियाँ एकदम से हाँफने लगे। उसकी सांस साधारण सांस से ज़्यादा तेज़ लगने लगी। उसके जिस्म में एक बेबसी रेंगने लगी। बी० के० ने फिर कहा—"क्या जो कुछ भी तुम्हारे दिमाग में शक की शक्ल में था उसको तुमने अपनी आँख से देखा था ? क्या तुम्हारे पास उसका सबूत था…"

"लेकिन साब" झुम्मन मियाँ कुछ कहना चाहता था। बी० के० जान-बूझ कर उसकी कोई बात नहीं सुनना चाहता था, लेकिन झुम्मन मियाँ ने उसकी एक भी नहीं सुनी, उसने अपनी कहानी बता दी। बोला—"मेरे पड़ोस में एक और पठान रहता था जिसका नाम था, आमीन खाँ। आमीन खाँ…मेरे टुकड़ों पर पलने वाला आमीन खाँ…मैं जब कभी भी दूकान से लौटता तो आमीन खाँ घर में होता। वही दरवाज़ा खोलता और मेरी बीवी किसी ख़ास अन्दाज़ में बैठी या बात करती मिलती। मैंने खामोशी के साथ आमीन खाँ को घर से निकाल देना चाहा, लेकिन मेरी बीवी उसे निकालना नहीं चाहती थी। आमीन खाँ से जब मैंने कहा था तो वह तुनक भरे लहजे में मुझसे बोला—मैं यहाँ जबरदस्ती नहीं रह रहा हूँ…तुम्हारी बेग़म का हुक्म है। मैं यह घर छोड़कर नहीं जा सकता। मैंने बेग़म से भी कहा, लेकिन उसने भी मुझे ही डाँट दिया। यह बात आग की तरह फैलने लगी… लोगों में काना-फ़ूसी चलने लगी। मैंने फिर भी बर्दाश्त किया…जिस जिस्म को मैंने अपनी पाकतरीन लमहात का यकीन दिया था उसे झुठलाना मेरे लिए मुमकिन नहीं था…लेकिन एक दिन…वह पलंग पर नींद में डूबी हुई पड़ी थी…उसके जिस्म पर जंगले से छन कर रोशनी पड़ रही थी…चेहरे पर एक अजीब चमक थी, एक परेशानी थी, लेकिन शुकून में डूबी हुई परेशानी। मैंने बहुत चाहा कि मैं उसका

गला दबा दूँ, उसकी आँखें निकाल लूँ, उसके नंगे जिस्म पर कुछ ऐसे दाग़ लगवा दूँ कि उसका हुस्न ही दो कौड़ी की चीज़ हो जाय, लेकिन उसके जिस्म में जाने कैसी क़शिश थी कि मेरा हाथ गले में जाकर रुक जाता। वह जाग जाती तो मैं कुछ नहीं कह पाता। वह हँस देती और मुझे गोद में छुपा लेती···मैं खामोश हो जाता। मुझे लगता जैसे मेरी उँगलियाँ गली जा रही हैं,···लेकिन मैं फिर चुपचाप उसके जिस्म की छाँह में जब बैठ जाता तो लगता जैसे मुझे नई ज़िन्दगी मिल गयी है। मैं खामोश होकर उसके आग़ोश में सो जाता···जाने कब मुझे नींद आ जाती, मैं बिलकुल इत्मीनान से सो जाता······

"लेकिन उस रोज़ कुछ अजीब हुआ। रात बारह बजे जब मैं घर पहुँचा, तो घर का दरवाज़ा खुला मिला। मैं दबे पाँव घर के भीतर चला गया, देखा एक ही जगह पर दोनों हैं। वह सोई हुई है, और वह उसके सिरहाने बैठा था···मुझे लगा जैसे वह गोशये तनहाई अपने ही में बहुत बड़ी चीज़ है, लेकिन आज इस तनहाई की कोई कीमत नहीं थी। आमीन का हाथ उसके रुख़सार पर था और वह जैसे थक कर सो गई थी······मैं अपने गुस्से को रोक नहीं सका। मैं बिलकुल घर के भीतर चला गया, मैंने अपनी बन्दूक़ उठाई। उसमें गोलियाँ भरीं और यह फ़ैसला कर लिया कि मैं आज आमीन ख़ाँ को खत्म कर दूँगा। एक हाथ में बन्दूक़ लेकर मैं आमीन ख़ाँ को घसीटता हुआ मकान की दालान में ले आया। एक ठोकर मार कर मैंने पहले उसे जगाया, और फिर उसको झंझोड़ कर मैंने एक तरफ ढकेल दिया। मैं गोली चलाने ही वाला था कि आमीन ख़ाँ एकदम चीख़ पड़ा। बेग़म की नींद खुल गई। यह नक्शा देखकर···और ज़रा जोर से चीखती हुई वह मेरी बन्दूक़ और आमीन ख़ाँ के बीच आकर खड़ी हो गई। मैंने उसे कई बार हटाना चाहा, लेकिन वह हटी ही नहीं। मैंने कई बार कहा लेकिन बेग़म नहीं मानी। मुझसे भी रहा नहीं गया। मैंने आँख बन्द करके गोलियाँ चलाईं। एक धमाके की आवाज़ हुई। मैंने देखा मेरे सामने आमीन ख़ाँ

नहीं मेरी ही बेग़म की लाश है। मैं उसी दम पुलिस थाने चला गया। पुलिस वालों ने मुझे जेल में बन्द कर लिया। जैसे जेल वह तनहाई हुई जहाँ ज़िन्दगी की थकान अपने आप मिट जाती है। ऐसा नहीं हुआ। मुझे जेल में भी एक लमहे की शान्ति नहीं मिली। मैं रात भर वैसे ही करवट बदलता रहा।"

"फिर तुमने क्या किया ?"

"करता क्या मैं जेल में बन्द हो गया। पहले कुछ देर तो मुझे कुछ महसूस ही नहीं हुआ, लेकिन फिर थोड़ी ही देर बाद मुझे लगा जैसे मैं अकेला हूँ···या मैंने ज़्यादती की है या यह कि वह ठंडा जिस्म जिसके साये में मेरी ख़ुमार में डूबी आँखें ठंडक पाती थीं, मेरे अपने ज़िस्म का दर्द जहाँ पिघल कर चन्दन की छाया-सा लगता था। कुछ शान्त हो गया है—और जैसे ज्वार उतर जाने के बाद सूखी रेत पर लहरों के निशान बन जाते हैं, और लहरें चली जाती हैं, सिर्फ़ एक धुँधली-सी लकीर दिखलायी पड़ती है। ठीक उसी तरह मुझे अपनी बीबी को सदैव के लिए खो बैठना पड़ा···।

"लहरें आईं और चली गयीं। तट पर कुछ सीपियाँ और घोंघे शेष पाये जाते हैं, उसी प्रकार मेरे अन्दर का ज्वार आया और वहीं ख़त्म हो गया।"

और तभी जेल के भीतर से झुम्मन मियाँ को बार-बार बुलाने की आवाज़ आई। झुम्मन मियाँ उस समय तो पूरे आवेश में था, लेकिन उसको दबा कर अपनी ज़बान को दाँतों से कुचल कर उसने कहा था··· "और मैंने शमा बुझा दी···" शमा बुझाने के समय मैंने देखा, वह निहायत इतमिनान से सोच रहा था···सहसा झुम्मन की बुलाहट सुनाई दी, झुम्मन मियाँ दौड़ते हुए बी० के० के वार्ड से भाग निकला।

थोड़ी देर तक सन्नाटे में खड़ा बी० के० बाहर का वातावरण देखता रहा। उसे लगा जैसे अभी-अभी चक्कर आ जायेगा। वह वहीं बैठ गया। घंटों एक हालत में बैठे रहने के बाद जैसे ख़ामोश हो गया

इसी बीच पूसी भी उसके पास आ गयी। पहले उसने बी० के० को चारों ओर से सूँघा और फिर वहीं उसके सामने पड़ रही। अकस्मात् अनजाने में उसने पूसी के ऊपर अपने हाथ फेरने शुरू किए। उसके नर्म रोएँ स्पर्श से जैसे और नर्म हो जाते हैं···उस नर्माहट के स्पर्श मात्र से जैसे उसे संतोष मिलने लगा। उसने उसे अपनी गोद में कस लिया और अपने बिस्तर पर सोने चला गया। पूसी भी वहीं सोयी रही।

सुबह जब नींद खुली तो बी० के० को लगा जैसे उसे और रोज़ से कहीं अधिक थकावट लग रही है। वह काफी देर तक तकिया के सहारे बैठा रहा फिर उठा और कमरे में विक्षिप्त-सा टहलता रहा।

मि० अनुज शर्मा ने पूरे अध्याय को गौर से पढ़ा था। उसकी समझ में नहीं आया कि आखिर मीनाक्षी ने इस अध्याय में सिद्ध क्या करना चाहा है। जिस्म की अपनी एक पावनता होती है, और उस पावनता की गरिमा को वह भी समझते थे, लेकिन मटियानी और झुम्मन खाँ दोनों उसकी पावनता की अपेक्षा चमत्कार से प्रभावित थे। चमत्कृति कर देने वाली वस्तु भी पावन हो सकती है क्या ?

अभी वह अध्याय समाप्त करके यह सोच ही रहे थे कि सहसा राजा साहब उनकी मेज़ पर आ बैठे। चश्मे के भीतर से कुछ झाँकते हुए बोले—

"आप बहुत सोचते हैं···इतना नहीं सोचना चाहिए···"

मि० अनुज शर्मा जानते थे कि राजा साहब की चाहिए वाली प्रवृत्ति बड़ी भयानक होती है और यह इतनी तेज़ी से चलती है कि उसे कोई रोक नहीं सकता। इसीलिए न तो उन्होने राजा साहब का समर्थन किया और न खण्डन। वह एकदम चुप रहे। राजा साहब ने फिर कहा—"सोचना बुरी आदत है···ब्रिटेन का प्रधान मंत्री बालपाँव कह गया है कि ज्यादा नहीं सोचना चाहिए···"

और कहते-कहते अपने स्वभाव के अनुसार राजा साहब ने उस फाइल को उठा लिया जो उनके पास पड़ी हुई थी। उसके पन्ने उलटने लगे। पहिले ही पन्ने पर बी० के० का नाम पढ़ कर जैसे उनके चेहरे पर एक शिकन-सी आ गयी। वह दो-चार पन्ने और भी उलट गये। राजा साहब के चेहरे का रंग उड़ गया। उन्हें लगा जैसे वह उस पूरी घटना से त्रस्त हैं, उनको जैसे पसीना छूट गया, जेब से रूमाल निकाल कर वह अपना मुँह पोंछने लगे। मि० अनुज शर्मा चूँकि जिस्म के चमत्कार के सदा क़ायल थे इसलिए इस उपन्यास में मि० मटियानी और झुम्मन खाँ दोनों की ही कहानी पढ़ कर उनके मन में एक आन्तरिक द्वन्द्व-सा उठ गया था। राजा साहब ने ही कहा—"आपकी नवीनतम् रचना है ?"

"जी नहीं" मि० अनुज शर्मा ने कहा।"

"आप बी० के० को कैसे जानते हैं ?"

"मेरा क्लासफेलो रहा है···हम साथ-साथ पढ़े हैं, रूम पार्टनर रहे हैं···" राजा साहब चुप हो गये। थोड़ी देर बाद बोले—"ऐसे आदमी से दोस्ती नहीं करनी चाहिए।"

"कैसे आदमी से ?" मि० अनुज शर्मा ने पूछा।

"बी० के० जैसे आदमी से।"

"क्यों ?" मि० अनुज शर्मा ने पूछा।

"इसलिए कि बी० के० जैसे लोग जिस डाल पर बैठते हैं, उसी को काटते हैं।"

मि० अनुज शर्मा राजा साहब की बात सुन कर हँस पड़े। उन्हें लगा जैसे राजा साहब जैसा दूसरा आदमी संसार में सदियों की तपस्या के बाद जन्मता है। अनुज शर्मा ने कहा—"तब तो बी० के० कालिदास जैसा जीनियस है···हमें उसकी इज्ज़त करनी चाहिए।"

"क्यों ?" राजा साहब का दूसरा प्रश्न था।

"इसलिए कि जीनियस जिस डाल पर बैठता है उसी को काटता है।"

मि० अनुज शर्मा का ये मज़ाक राजा साहब को कहाँ चोट पहुँचा रहा है वह नहीं जानते थे। राजा साहब रह-रह कर तिलमिला उठते थे। बेचैन हो जाते थे, और उन्हें लगता था जैसे कोई उनके भीतर उनके दिल को टटोल रहा है। वह फिर ज़रा हिम्मत करके बोले—"बी० के० जैसे लोग पहले दया के बल पर स्नेह लेते हैं फिर स्नेह का पाशविक दुरुपयोग करते हैं।"

"कैसे ?"

"यह फिर कभी बताऊँगा।" राजा साहब ने कहा।

और राजा साहब चुपचाप अखबार खोल कर पढ़ने लगे। पढ़ते-पढ़ते बोले—"चीन हमारा दुश्मन है।"

"है···" मि० अनुज शर्मा ने बात दोहरायी।

"दुश्मन को मारना पाप है···"

"और दोस्त को···?" मि० अनुज शर्मा ने पूछा।

"उसे भी···"राजा साहब ने निश्चयात्मक निर्णय दिया।

मि० अनुज शर्मा चुप हो गये। बाहर दरवाज़े की ओर देखने लगे। साढ़े आठ बज चुके थे न तो प्रोफेसर राज आये थे न सैम्युअल ही आया था। वह उसकी प्रतीक्षा में डूबे हुए थे। मीनाक्षी भी नहीं लौटी थी। राजा साहब ने कहा—

"दुश्मन को अपना दूसरा गाल दे दो···" क्राइस्ट ने कहा है।

"अगर वह दूसरा चपत न मारे तो······?"

"तो उससे प्रार्थना करनी चाहिए कि तुम दूसरी चपत मारो।"

"और अगर तब भी वह न मारे तो···?"

"उसका हाथ पकड़ कर गाल तक लाना चाहिए और अपने हाथ से गाल पर तमाचा लगवा लेना चाहिए······क्राइस्ट ने कहा है—जो तुम्हें एक चाटा मारे उसी से तुम दूसरा चाटा भी खाओ···"

राजा साहब यह वाक्य बी० के० के बारे में कह रहे थे और मि० अनुज शर्मा चीन के विषय में सोच रहे थे। चीन ने तिब्बत ले लिया था। मि० अनुज शर्मा ख़ामोश थे। राजा साहब के सामने काफ़ी आ गयी थी, वह काफ़ी पीने में लग गये थे। मि० अनुज शर्मा प्रोफेसर राज और सैम्यूअल के आने के प्रति अपने अविश्वास को प्राप्त कर चुके थे। काफ़ी हाऊस में रोशनियाँ गुल होने लगी थीं। मि० अनुज शर्मा उठ खड़े हुए। राजा साहब भी काफ़ी एक साँस में पीकर उठ कर खड़े हुए।

"और अब क्या होगा?" राजा साहब ने पूछा

"अब घर जाऊँगा..."

"घर...?" कह कर राजा साहब हँस पड़े।

मि० अनुज शर्मा साइकिल लेकर बाहर जा रहे थे। रास्ते भर उनके सामने विनती और बेग़म की तस्वीरें ही नाचती रहीं, दोनों ही जैसे दो प्रश्न चिह्न के रूप में उनको आतंकित किये हुए थीं।

●●

काफ़ी हाउस
की छठी शाम

•

"तुझे ऐ ज़िन्दगी लाऊँ कहाँ से"

"किन्तु एक बात है—मुझे लगता है मुझमें अब भी कुछ ऐसा है जो अशेष रह गया है और मैं उसे कोई नाम नहीं दे पा रहा हूँ। मैं कुछ कहना चाहता हूँ, लेकिन कह नहीं पा रहा हूँ, मुझे लगता है मैं इतना बड़ा कंगाल हूँ कि मेरे पास शब्द ही नहीं और जो है, वह उधार पर इतने चल चुके हैं कि उनका अर्थ समाप्त हो चुका है।"

काफ़ी हाऊस की छठी शाम

•

[१ सितम्बर १९६२]

•

आज पहली सितम्बर थी ।

मि० अनुज शर्मा को अपना मकान बदलना था । पुराने मकान से नये मकान में आने पर सारा साज़ सामान हटाने में बड़ी दिक्कत होती है । वैसे दिन भर की इस परीशानी के बाद अगर कोई दूसरा होता, तो आज काफ़ी हाऊस नहीं आता लेकिन मि० अनुज शर्मा उन आदमियों में से हैं, जो इस परीशानी में भी अपने निश्चित समय पर काफ़ी हाऊस ज़रूर आ जायेंगे । मि० अनुज शर्मा को अपने जीवन में केवल दो चीज़ें ही मिली हैं । एक प्रेम और दूसरी चीज़ काफ़ी हाऊस । इन दोनों को पकड़ कर मि० अनुज शर्मा ऐसे बैठ गये हैं, जैसे हारिल लकड़ी पकड़ कर बैठ जाता है ।

सब से अजीब बात यह हुई कि सारे दिन मेहनत करने के बाद जब मि० अनुज शर्मा नये मकान के बगल में ही स्थिति नाई की दुकान में गये, तो देखा एक पूरी साईज की बी० के० की तस्वीर लगी हुई थी । पहले तो उन्हें आश्चर्य ही हुआ । फिर विश्वास ही नहीं होता था कि बी० के० की तस्वीर और इस दुकान में लगेगी । उन्होंने उसे दृष्टि भ्रम ही समझा लेकिन जी नहीं माना । पूछ ही बैठे—"यह किसकी तस्वीर है, क्या दुकान के मालिक की ?"

"जी नहीं...यह एक ऐसे आदमी की तस्वीर है, जिसे हम लोग भूल गये हैं, जिस मकान में आप अब आये हैं, उसी मकान में वह रहते थे..."

"क्या नाम था इनका..."

"बी० के० बाबू कहते थे..."

"तुमसे कैसे दोस्ती हो गई...?"

इस प्रश्न को सुनकर वृद्ध नाई कुछ चौंका। बोला—"ग्राहक थे साहब, उनकी मेहरबानी थी..."

मि० अनुज ने कुछ और पता लगाना चाहा, लेकिन पता मिला नहीं। मि० अनुज ने हार कर उसका नाम पूछा तो बोला—"जी मुझे लोग प्रभू नाई कहते हैं...इस दुकान का भी नाम परभूज़ शाप है।"

मि० अनुज की दाढ़ी बन चुकी थी। उन्होंने जेब से दुअन्नी निकाल कर प्रभू के हाथ पर रख दिया। प्रभू नाई ने सलाम किया और मि० अनुज साइकिल पर बैठे और काफ़ी हाऊस के लिये चल पड़े।

काफी हाऊस में और कोई नहीं था केवल मीनाक्षी और ममता दोनों बैठी काफ़ी पी रही थीं। मि० अनुज के लिए कोई चारा नहीं था। वह भी उनकी मेज़ पर जा बैठे। ममता ने नमस्कार किया और इस सचेष्ट नमस्कार ही ने मि० अनुज की अन्तःसलिल कोमल भावना को और भी तरल बना दिया। मेज़ पर बैठते ही मीनाक्षी ने कहा—"आज आपने बड़ी देर कर दी...मि० खन्ना काफ़ी देर तक बैठे रहे फिर निराश होकर चले गये..."

"क्यों क्या कोई खास बात है..."

"अब यह तो वही बता सकते हैं..."

"क्या फिर आने के लिए कह गए हैं..."

"वह तो शायद न आयें वैसे मि० भल्ला और मि० चतुर्वेदी आपके घर जाने वाले..."

"मेरे घर..."

"जी हाँ आपके घर..."

अब तो मि० अनुज शर्मा और भी खिन्न हो गये थे। वह एक अजीब उलझन में उलझे हुए थे और उसी परेशानी में वह कुर्सी पर से

ममता कुछ देर तक यों ही सोचती रही फिर चुप हो गयी। उसकी कल्पना में कभी कोई ऐसा व्यक्ति आ ही नहीं सका था जिसमें इतनी भी सोशल कर्टसी की शिष्टता न हो। मीनाक्षी को पहली बार ऐसा लगा कि वह किसी ऐसे राबिन्सन क्रूसो से मिल रही है जो केवल वीरानियत का उपासक है। इलाहाबाद शहर में रहकर अपने घर को राबिन्सन क्रूसो के नये द्वीप सा निर्जन बनाये रखना भी बहुत बड़ा गुण है। मीनाक्षी ने कहा—"फिर आप काफ़ी हाऊस क्यों आते हैं?"

"क्योंकि मेरा ड्राइंग रूम यही…।"

"और घर आपका बेड रूम है।" मीनाक्षी ने व्यंग किया।

"और होटल आपका डाईनिंग रूम है?" ममता ने कहा।

"और लायब्रेरी आपकी स्टडी…।"

मि० अनुज एक साथ इतने व्यंग्यों का जवाब देने के लिए तैयार नहीं थे। उन्हें लगा यह लोग उनकी वास्तविक संवेदना को समझना नहीं चाहतीं। वह चुप हो गये लेकिन जैसे उन्हें इन महिलाओं के प्रति उनके मन में जो आदर था वह कचोट सा गया। कुछ परीशान से वे इधर-उधर देखने लगे। एक बार काफ़ी हाऊस की ओर जो नज़र दौड़ाई तो देखा राजा साहब इस समय भी चशमा लगाये अख़बार खोले हुए कुछ खबरें पढ़ने में व्यस्त थे। बगल वाली मेज पर उर्दू के बूढ़े शायर किसी से महज़ इतनी माँग कर रहे थे कि उर्दू ज़बान के सामने हिन्दी ज़बान पानी भरे। और जब थक जाते थे या जब उनको कोई ऐसा तर्क मिल जाता था जिसका कि वो जवाब नहीं दे पाते थे तो बड़े इतमिनान से कह देते थे—"उर्दू हिन्दी दो ज़बानें नहीं हैं।" उनके साथ बहस करने वाले इस असंबंधता को जल्दी पकड़ नहीं पाते थे लेकिन तीसरी मेज पर बैठने वाला कोई भी व्यक्ति उनकी इस अनर्गलता को भलीभाँति जान सकता था। मि० अनुज ने अपना ध्यान उसी ओर लगा दिया तभी बेयरे ने आकर काफ़ी के लिए पूछा। मि० अनुज ने एक स्पेशल काफ़ी का आर्डर दिया और फिर मौन होकर बैठ गये।

मीनाक्षी और ममता भी चुप ही रहीं। मीनाक्षी ने थोड़ी देर बाद कहा—

"अब इन्तज़ार करना बेकार है···वह लोग आयेंगे नहीं···।"

"ऐसा हो नहीं सकता···कम से कम दमयन्ती तो आयेगी ही···।"

"लेकिन अगर दीनानाथ को छुट्टी न मिली तो।"

"डाक्टर दीनानाथ और छुट्टी···तुम्हें मालूम नहीं है···डाक्टर दीनानाथ को हमेशा छुट्टी रहती है। इसीलिए तो वह बी० के० के डाक्टर थे···।"

"क्या मतलब ?" मि० अनुज ने कहा।

"कुछ नहीं मिस्टर अनुज···वास्तव में बी० के० की हमदर्दी ही डाक्टर दीनानाथ के साथ इसलिए थी क्योंकि उनके पास कोई मरीज़ जाता ही नहीं था। जीवन में जहाँ अनेक प्रकार के प्रयोग उन्होंने किये थे वहीं एक यह भी महत्वपूर्ण प्रयोग था···उन्होंने डाक्टर दीनानाथ की दूकान का नाम करुण होम्योहाल रखाया था और वह अकेले मरीज़ थे जो करुण होम्योहाल से दवा ख़रीदते थे···।"

मि० अनुज शर्मा अवाक् से ममता की बातें सुनकर कुछ सोचने लगे। अनुज शर्मा को लगा बी० के० वास्तव में कहीं उससे भी बड़ा व्यक्ति था। वह हमेशा कुछ न कुछ ऐसा करता रहता था जिसका संबंध देखने में ऊपरी तौर पर भले ही कुछ बेढंगा लगे किन्तु वास्तव में वह हमेशा मानव कल्याण के लिए उत्सुक रहा करता था। जाने कितनी अटूट श्रद्धा से ओत-प्रोत मि० अनुज बिलकुल गदगद मनःस्थित में थे। उस आत्मविभोर स्थिति की तन्द्रा में वह डूबे ही थे कि पीछे से किसी कार के रुकने की आवाज आयी। मि० भल्ला, मि० खन्ना, मि० चतुर्वेदी, दमयन्ती के साथ मोटर से उतरे। डाक्टर दीनानाथ नहीं थे इसको केवल ममता ने नोट किया। मि० अनुज शर्मा को लगा जैसे वह बड़ी अनिष्टकर स्थिति में फंस गये हैं। लेकिन मजबूर थे। उस मेज़ पर से उठ कर जा नहीं सकते थे।

कुर्सी खींच कर बैठते हुए मि० खन्ना में कहा—

"कहिये मि० अनुज आप यहाँ बैठे हैं और मैं सारा इलाहाबाद आपके घर के तलाश में छान आया···।"

"घर आपको मिला ?" ममता ने व्यंग में पूछा ।

"जी नहीं···किसी को आपका घर ही नहीं मालूम !" मि० खन्ना ने अत्यंत आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा । मि० अनुज की जान में जैसे जान आ गई । सहज स्फूर्ति के साथ हँस कर बोले—"आप फ़िज़ूल परीशान हुए···काफ़ी हाऊस तो मैं आता ही···।"

"चलिए खैर मनाइये मि० अनुज···आज एक अनर्थ होने से बच गया वर्ना···।"

"वर्ना क्या ?" मि० खन्ना ने बात काटते हुए कहा ।

"वर्ना मि० अनुज को बड़ा दुःख होता···आप अपने घर का पता किसी को नहीं बताते । कहते हैं घर इनकी व्यक्तिगत वस्तु है···वहाँ केवल इनको ही रहने का अधिकार है···।"

"इसीलिए आपने अभी तक शादी नहीं की !" मीनाक्षी ने व्यंग करते हुए कहा और फिर खामोश हो गयी । काफ़ी का आर्डर दिया गया । सब लोग काफी पीने लगे तभी राजा साहब दूर की मेज़ पर से उठकर मि० अनुज की मेज़ पर आ बैठे और एक-एक का चेहरा गौर से देखने लगे । लोगों को कुछ अजीब लगा । मि० खन्ना से नहीं रहा गया । कुछ खिन्न होकर बोले—

"आप इस तरह सबको क्या देख रहे हैं···?"

"कुछ नहीं···मैं जानना चाहता हूँ कि आप लोगों में से मि० बी० के० कौन सज्जन हैं···।"

"क्यों ?"

"इसलिए कि यह कार मि० बी० के० की है···यह मैरून रंग की ११०० नम्बर की फ़ियेट···।"

सब लोग चौकन्ने हो गये और मीनाक्षी की ओर देखने लगे। मीनाक्षी खुद संकोच में पड़ गयी। बोली—"आप कैसे जानते हैं…।"

"उसकी बड़ी लम्बी कहानी है…ख़ैर आप अपनी बात बताइये…।"

मीनाक्षी ने कहा—"आप बद्तमीज हैं…आपके सवाल का जबाब नहीं दिया जा सकता।"

और वह उठी और चली गयी। वहाँ बैठा हर व्यक्ति आश्चर्य चकित रह गया। किसी के समझ में नहीं आया कि क्या हुआ।



छठी कहानी

एक ज़रूरत से ज़्यादा बदसूरत औरत्त
और
मैरुन रंग की मोटर गाड़ी

मीनाक्षी के जाने के बाद सारा वातावरण सन्नाटे में आ गया। किसी की समझ में ही नहीं आ रहा था कि आखिर यह हो क्या गया है। मि० अनुज भी थोड़े परीशान थे लेकिन उनकी वह बेचैनी उस सीमा तक नहीं पहुँची थी जिस सीमा तक कि मीनाक्षी ने अनुभव किया था। सब लोगों की दृष्टि राजा साहब के हुक्का नुमा चेहरे पर उत्सुकता के साथ गड़ गयी थी। लोग आशा करते थे कि राजा साहब इस वस्तुस्थिति पर कुछ विशेष प्रकाश डालेंगे लेकिन राजा साहब कुछ बोले ही नहीं और सब लोग खामोश बैठे रहे। किसी के समझ में नहीं आता था कि आखिर बात खत्म कहाँ की जाय।

मि० खन्ना से आखिरकार नहीं रहा गया। उन्होंने बीच में ही बात छेड़ते हुए कहा—"क्या आपको इस कार की कहानी के सम्बन्ध में कुछ कहना है।"

"जी नहीं, चूँकि मैं इस कार से परिचित था और इसी कार के माध्यम से मैं मि० बी० के० को जानता था इसलिए मैंने इतना सवाल पूछ लिया···"

कहते कहते राजा साहब रुक गये। फिर बोले—"लेकिन चूँकि अभी-अभी आपके सामने मीनाक्षी जी तिलमिला कर चली गयीं इसलिए मेरे लिए आवश्यक हो गया कि मैं इसका संदर्भ आपके सामने प्रस्तुत कर दूँ···"

"अवश्य अवश्य प्रस्तुत कर दीजिए···" मि० खन्ना ने राजा साहब का समर्थन करते हुए कहा। ममता कुछ विशेष रूप से उत्सुक हो उठी। राजा साहब ने पहले अपनी एक सिगरेट जलायी और फिर उन्होंने एक कश खींचकर अपनी कथा प्रारंभ की—

जहाँ मैं रहता हूँ उसी के पास एक मकान है जिसका नाम है रतन हाऊस पूरे मोहल्ले में वह घर, उस घर की मालकिन श्रीमती हंसा देवी की मान-प्रतिष्ठा के नाते प्रायः ख्याति प्राप्त कर चुका था। साथ ही साथ श्रीमती हंसा देवी के विषय में भी वहाँ का बच्चा-बच्चा जानता था।

बी० के० जब बम्बई से वापस आया तो बिलकुल निराश्रित था। उसके रहने-सहने का कोई ठिकाना ही नहीं था। एक दिन वह मुझे, यहीं इसी होटेल में शायद इसी मेज़ पर-वैसे इत्तफ़ाक की बात है कि यह मेज़ बिलकुल वही है-मिला। काफ़ी देर तक बात-चीत चलती रही। मुझे भी बी० के० की उस दशा पर बड़ा कष्ट हुआ। मैंने सोचा बी० के० को इस परीशानी से मुक्ति मिल जाए। अपने ही मकान के पास श्रीमती हंसा देवी के मकान में मैंने बी० के० के रहने का प्रबंध करा दिया। बी० के० दूसरे ही दिन से रतन हाऊस में आकर रहने लगा।

रतन हाऊस वैसे मेरे पुराने मित्र श्री रतन सिन्हा के नाम पर पड़ा था। रतन सिन्हा की मृत्यु लगभग साल भर पहले ही हो चुकी थी। श्रीमती हंसा देवी को घर भरा पूरा रखना था इसलिए बी० के० को पाकर वह बड़ी प्रसन्न हुईं और बी० के० वहीं रहने लगा। कुछ दिनों तक तो मैंने बी० के० को केवल रिक्शों और सायकिलों पर आते-जाते देखा लेकिन सहसा महीने भर के भीतर लोगों ने देखा कि श्रीमती हंसा देवी का ड्राइवर बी० के० को लेकर इधर-उधर, यहाँ-वहाँ जा रहा है। कभी-कभी हफ़्ते दो हफ़्ते में श्रीमती हंसा देवी भी बी० के० के साथ कार में आते-जाते देखी जाने लगीं। कुछ और दिन बाद जाने किस बात पर हंसा देवी ने उस ड्राइवर को भी निकाल दिया। एक दिन वह रोता-

चिल्लाता मेरे पास आया। नौकरी से निकाल दिये जाने की सूचना उसने मुझे दी। करण पूछा तो वह चुप हो गया, कुछ बोला ही नहीं। मैंने पूछा—

"क्या तुमने वहाँ चोरी की है ?"

"जी नहीं।" उसने जबाब दिया।

"बदतमीज़ी की होगी ?" मैंने पूछा।

"जी नहीं···" ड्राइवर ने जबाब दिया।

"फिर तुमको क्यों निकाल दिया ?" मैंने पूछा।

"इसका जबाब मैं क्या दे सकता हूँ···"

मैंने उसको डाँट कर भगा दिया। वह चला गया। मैं स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकता था कि श्रीमती हंसा देवी भी किसी के मन में कोई भी तरल भाव उत्पन्न कर सकती हैं। वह देखने में स्थूल और बुद्धि की भावुक महिला थीं। हृदय तो बड़ा ही सुन्दर पाया था लेकिन हृदय की तुलना में ही उन्हें जो रूप मिला था वह अत्यंत कठोर और कुरूप था। उसमें न तो कोई आकर्षण था न कहीं से कोई लाभ। उनकी स्थूलता में सारी गतिशीलता को रोक देने की अदम्य क्षमता थी।

लेकिन बातें वन में लगी हुई आग की तरह फैलने लगीं। लोग तरह-तरह की बातें करने लगे। पहले जब कुछ लोगों ने मुझे सारी बात बतायी तो मैंने आपति प्रकट की लेकिन धीरे-धीरे यह आपत्ति भी मुझे परिचित लगने लगी। कहते हैं मिसेज़ हंसा देवी के दो रूप थे। एक तो वह साधारणतः दिन में धारण करती थीं। सफेद साड़ी, खुले बाल और नितान्त सतोगुणवाली। लेकिन इधर लोगों का कहना था कि आधी रात के बाद उनका रूप दूसरा हो गया था। इसका दोषी कौन है ? बी० के० या वह स्वयं, यह मैं नहीं जानता लेकिन मैं इतना अवश्य कहूँगा कि लोगों के कथन में काफी सत्य था। हंसा देवी बी० के० की नींद सोती-जागती थीं। बी० के० की इतनी देखभाल, खाने, नहाने, आने-जाने से लेकर लिखने पढ़ने तक में उनकी यह चिन्त उत्सुकता, व्यग्रता सबको स्पष्ट दीख रही थी। बी० के० इस परिवर्तन

और उसके परिणामों को भी जानता था। लेकिन शायद वह इतना सरल था कि वह उसके विभिन्न पक्षों पर सोच ही नहीं सकता था। एक दिन जब वह मुझसे काफ़ी हाऊस में मिला तो मैंने पूछा—

"कोई तकलीफ़ तो नहीं हैं ?"

"जी नहीं।" एक छोटा सा उत्तर बी० के० ने दिया।

"क्या राय है तुम्हारी···मुझे लगता है हंसा देवी···"

बी० के० ने हमारी बात ही काट दी। बोला—"आप जो भी कहें वैसे उनसे अच्छी औरत मुझे कोई मिली ही नहीं।"

"ऐसी बात तो नहीं है···मि० रतन सिन्हा के ज़माने में तो श्रीमती हंसा देवी बड़ी कर्कशा मानी जाती थीं···"

"कर्कशा होना कोई दोष तो नहीं है।" बी० के० ने उत्तर दिया।

मैं अवाक् सा बी० के० का चेहरा देखने लगा। कर्कशा की इतनी प्रशंसा शायद मैंने जीवन में पहली बार ही सुनी थी। उनके मन के आकर्षण और उनकी अभिरुचि से मैं विशेष परिचित था भी नहीं। मैं केवल इतना ही जानता था कि रतन सिन्हा के जीवन में वह आस-पास के महिलाओं में कर्कशा के नाम से घोषित की गयी थीं किन्तु उनके मरने के बाद से वह अत्यन्त उदार और हर एक के सुख-दुख में शामिल होने वाली भी मानी जाने लगी थीं। मैंने कहा-" कर्कशा होना भी क्या गुण हो सकता है ?"

"गुण ही है राजा साहब···स्नेह की निश्छल अभिव्यक्ति प्रायः अधिकार में व्यक्त होती है और अधिकार का सूत्र कर्कशा बना ही देता है···"

मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि बी० के० इस समय श्रीमती हंसा देवी की एक भी बुराई सुनने को तैयार नहीं। उसके स्नेहिल स्निग्ध हृदय में केवल एक भूख है जो उचित, अनुचित, नैतिक, अनैतिक कुछ भी नहीं देख सकता। शायद यही कारण है कि प्रायः सभी लोगों के व्यंग्यों का

भी प्रभाव न तो बी० के० पर पड़ता था न हंसा देवी पर। मुझे काम की जल्दी थी। मैं उठा चला गया। बी० के० वहीं बैठा रहा।

थोड़े ही दिनों बाद एक अजीब घटना घटी।

हंसा देवी का माली मेरे यहाँ आया और मुझसे हाथ पैर जोड़ने लगा कि मैं उसे अपने यहाँ रख लूँ। मैंने पूछा भी कि आखिर वह हंसा देवी के यहाँ का काम क्यों छोड़ना चाहता है तो वह बोला—"साहब अब यह घर रतन बाबू जैसा नहीं रहा। यहाँ बी० के० बाबू की हुकूमत चलती है···पैसा बीबी जी देती हैं और हुकूमत बी० के० बाबू करते हैं···मुझे ये पसंद नहीं आता।"

"तुम्हें पसंद न पसंद से क्या मतलब। काम करो अपना पैसा लो बस···"

"मुझसे उनके यहाँ का काम भी नहीं होगा।"

मुझे माली की जरुरत थी मैंने उसे रख लिया। शाम को जब टेनिस क्लब में बी० के० से मुलाकात हुई तो बी० के० ने मुझे भला बुरा कहा। बोला—"आप ने मेरे माली को क्यों रख लिया?"

"इसलिए कि मुझे जरूरत थी···"

बी० के० ने कुछ दूसरा प्रतिवाद नहीं खड़ा किया। हाँ बात-बात के सिलसिले में मुझे इतना अवश्य पता चल गया कि कार की मालकियत भी सरेआम बी० के० की हो गयी है। अजब नहीं कि कुछ दिनों में यह भी सुनाई पड़े कि रतन भवन और उससे सम्बद्ध सारी जागीर ज़मींदारी भी बी० के० के नाम हो जाती। लेकिन वह नहीं हुआ।

अभी बी० के० ने केवल इतनी ही कहानी सुनाई थी कि मि० भल्ला ने बात काटते हुए पूछा—"क्या हंसा देवी अब भी ज़िन्दा हैं···?"

"कुछ पता नहीं कहाँ है। रतन भवन एकदम उदास पड़ा है। न तो कुछ बी० के० का पता है और न हंसा देवी का···"

"बी० के० आदमी कैसा था?" मि० खन्ना ने पूछा।

"आदमी तो हीरा था..."

"क्या आप हीरा होना आदमी का गुण समझते हैं..."

"मेरे समझने न समझने से क्या होता है, दुनिया यही मानती है......"

मि० खन्ना कुछ थोड़ा खामोश हो गये और बड़े अन्यमनस्क ढंग से बोले—"दुनिया बहुत-सी चीजें मानती है, क्या आप भी उनको मानेंगे..."

इस प्रश्न से राजा साहब का खोया हुआ मूड जैसे जग गया। उन्होंने तुरन्त ही अपना अख़बार खोला और पढ़ने लग गये। जब मि० खन्ना ने दुबारा यही प्रश्न पूछा, तो नितान्त गम्भीर होकर बोले—"हमें दुनिया की हर बात मान लेनी चाहिए ?"

मि० अनुज शर्मा जो अभी तक खमोश बैठे थे, एकदम उछल पड़े। बड़े आवेश में बोले—"क्या दुनिया को आप आदमी से बड़ा मानते हैं ?"

"मानना ही पड़ेगा और कुछ चारा नहीं रह जाता।"

राजा साहब अब गम्भीर हो गये थे। राजा साहब की गम्भीरता की एक मात्र निशानी यह है कि जितने ही ठंडे दिल से वह बात करते हैं, तो साधारणतः हकलाने लगते हैं। राजा साहब की आवाज़ अब लड़खड़ाने लगी थी। मि० अनुज शर्मा को यह अवसर छप्पर फाड़ कर मिला। उन्होंने कहा—"मात्र कार की मालकियत से आपने यह कैसे सोच लिया कि एक दिन बी० के० पूरी जायदाद को बिलकुल अपनी मुट्ठी में कर लेगा..."

अब राजा साहब फिर अपनी खोल में चले गये और फिर उन्होंने चाहिए वाली शैली में बात करना शुरू कर दिया। बोले—

"प्रेम जब हृदय की जगह कार को लक्ष्य बना लेता है, तब हमें कार से मकान, मकान से जायदाद की बात सोचनी ही चाहिए..."

और इतनी सी बात बताकर राजा साहब ने अपना अखबार उठाया और बिना किसी को नमस्कार-अभिवादन किये वहाँ से चले गये।

शेष जितने लोग बचे सब में उत्सुकता वैसी ही बनी रही।

प्रश्न था राजा साहब के आते ही मीनाक्षी क्यों चली गयी ?

और कार की बात आते-आते राजा साहब क्यों चले गये ?

ममता ने कहा—"हो न हो, किसी न किसी कारण से राजा साहब भी मोटर से सम्बन्धित हैं।"

"कैसे ?" मि० भल्ला ने पूछा।

"इसलिए कि राजा साहब को जो चीज़ सबसे ज्यादा खली थी वह यह कि बी० के० मुफ्त में ही मोटर का मालिक बन बैठा था और राजा साहब पड़ोसी होते हुए भी उस कार का सुख नहीं भोग पाये।"

प्रतिवाद करने के लिए किसी के पास कोई तर्क था ही नहीं। दमयन्ती जो अब तक चुपचाप बैठी थी उद्विग्न हो उठी। बोली—

"यह राजा साहब हैं कौन···किस रियासत के राजा साहब हैं जो इतने इत्मीनान से घूमते-फिरते आते-जाते दुनिया की हर चीज़ पर अपनी राय दे जाते हैं···"

मि० अनुज शर्मा जो अब तक ख़ामोश बैठे थे और जिनको बोलने का कोई अवसर ही नहीं मिल पा रहा था एकदम से बोल पड़े—

"यह किसी रियासत के राजा साहब नहीं है। इनकी चाल-ढाल इनका रहन-सहन ऐसा है कि हम लोगों ने इनको राजा साहब कहना शुरू कर दिया···"

"चाल-ढाल में ऐसी क्या विशेषता है ?" मि० खन्ना से कहा।

"यही कि जिस टेबुल पर बैठेंगे ऐसा लगेगा कि सारी चीज़ आपकी है; लेकिन कभी किसी को एक काफ़ी के लिये भी नहीं पूछेंगे। खुद भी केवल नैतिकता बचाने के लिए काफ़ी पी लेते हैं···ताकि काफ़ी हाऊस वाले बेयरे यह न समझ लें कि हराम में बैठने जा रहे हैं···"

"और क्या ख़ासियत है उनकी ?" ममता ने पूछा।

"ज़ाहिर है अगर कोई इन्हें काफ़ी पिलाये तो यह इन्कार नहीं करेंगे। बड़ी प्रसन्नता से पी लेंगे..."

सब लोग बेतहाशा हँस पड़े। लेकिन हँसी बन्द होने के साथ-साथ ही लोगों ने देखा कि राजा साहब कहीं गये नहीं हैं। बाहर से सिगरेट पीते फिर कमरे में चले आये हैं। लोगों को इनके वापस आने की आशा नहीं थी, लेकिन राजा साहब से वह यह भी नहीं कह सकते थे कि आप चले जाइये। राजा साहब इत्मीनान से बैठ गये। मि० अनुज शर्मा फिर जैसे सकते में आ गये। सब लोगों ने देखा कि उनके चेहरे पर एक दूसरा रंग अपनी सम्पूर्ण मुर्दानी के साथ वापस लौट आया है। मस्टर खन्ना ने फिर पूछा—"लेकिन राजा साहब कहानी तो आपकी अधूरी ही रह गई..."

"मैंने पूरी कहानी सुनाने का वायदा तो किया नहीं था..."

राजा साहब ने इस उत्तेजक बात से फिर थोड़ी उद्विग्नता हुई लेकिन फिर राजा साहब ने कहा—"बी० के० स्पष्ट जानता था कि उसकी और हंसा देवी की लीला अधिक दिनों तक नहीं चलेगी।

"वह समाज और संसार में बिना प्रेम के जी रहा था। हंसा देवी ने उसे स्नेह दिया था, प्रेम दिया था इसलिए वह उनका आभारी था। एक दिन बी० के० ने व्यक्तिगत क्षण में बताया था... हंसा देवी के स्नेह के आभार से वह इन्कार नहीं कर सकता था। उसने उनके प्रत्येक आभार को उसी प्रकार स्वीकार किया था जिस प्रकार कि किसी भी सभ्य व्यक्ति को करना चाहिये....लेकिन हंसा देवी में स्वयं कहीं इतनी तीव्र प्यास थी...कुछ इतना विस्फोटक अहम था कि बी० के० उसकी प्रत्येक वृत्ति का शिकार ही हो जाता था। मुझे याद है इसी वेदना से पीड़ित होकर मेरा मित्र रतन नाथ भी मरा था। शालीन व्यक्ति होने के नाते वह हंसा देवी का कभी विरोध नहीं करता था लेकिन जीवन पर्यन्त वे उसकी मानसिक तृप्ति का कारण नहीं बन सका।

बी० के० ने एक दिन उससे कहा—"तुम इतना अच्छा कैसे गा लेती हो...।"

"यह मैं नहीं जानती...सिर्फ़ इतना ही कह सकती हूँ कि इस संगीत के रागों का कोई रूप नहीं होता...शायद उनकी अमूर्त कल्पना ही इसका कारण है।"

"अमूर्त ?" बी० के० ने पूछा।

"हाँ अमूर्त...जैसे यह रात रानी की गन्ध जैसे यह...यह... यह...।"

लोग चुप हो गये। राजा साहब कहते जाते थे—ऐसे ही एक बार हंसा ने मुझसे भी कहा था, बोली थी—"मैं केवल स्नेह चाहती हूँ केवल स्नेह...।"

"रतन जो तुम्हारा है...।"

मेरा वाक्य सुनते ही उसकी आँखें डबडबा आईं। बोली—"दुनिया यही समझती है कि रतन मेरा है लेकिन रतन का भीतरी रहस्य कोई नहीं जानता...।"

"रहस्य ?"

"हाँ-हाँ रहस्य नहीं तो और क्या ? उसने कहा।"

"मैं समझ नहीं पाया कि इस रहस्य का क्या अर्थ है। भेद खुला भी तो उस दिन जब रतन बीमार पड़ा था। शाम को कोई आदमी मुझे बुलाने आया। मैं गया तो रतन तेज बुख़ार में पड़ा था। हंसा देवी भी वहीं थी। मेरे पहुँचने पर हंसा देवी को रतन ने हटा दिया। मुझसे बोला—"राजा मैं बड़ा बदक़िस्मत आदमी था। जीवन का सारा सुख, सारा वैभव अपने पास होते हुये भी मैं इसे पूर्ण रूप से भोग नहीं सका...जिन्दगी के हर पहलू में मुझे अधूरी विजय मिली, आधा खण्डित सुख मिला। बी० के० तेज पड़ा लेकिन कभी किसी कम्पटेटिव परीक्षा में न आ सका। विवाह भी किया तो ऐसा कि जो केवल संगीत समझती है। संगीत के पीछे जो मानवीय संवेदना है उसे नहीं समझ

पाती। धन ज़ागीर है तो उसके प्रति मेरी रुचि ही नहीं रही…और अब लगता है जैसे मैं ज़िन्दा नहीं रहूँगा …।"

"मैं चिन्तित सा देख रहा था। रतन के चेहरे पर एक अजीब परेशानी थी। मैंने समझा कि मामूली बोख़ार है ठीक हो जायेगा लेकिन उसी क्षण दो गाड़ियाँ और आई। जब मैंने उन गाड़ियों में से डाक्टर रमन और सिविल सर्जन को देखा तो मुझे लगा मामला केवल बोख़ार ही का नहीं है। कुछ और संगीन बीमारी है। साथ में बाद को पुलिस कप्तान की भी गाड़ी आकर रुकी। मजिस्ट्रेट और पुलिस कप्तान भी आ गये थे। सिविल सर्जन ने उसके जिस्म पर से जब चादर हटाया तो मैंने आँखे बन्द कर लीं। रतन का सारा शरीर घायल था। पैर की हड्डियाँ बेड़ी होकर चटख गई थीं। जिस्म से अलग नहीं हुई थी लेकिन बाकी हिस्सा टूट फूट कर बराबर हो गया था। पुलिस कप्तान ने पूछा—

"आप कल रात कहाँ से आ रहे थे …?"

"मिर्ज़ापुर से…"

"यह हादसा हुआ कैसे…?"

"हो गया, मैं नहीं जानता कैसे…"

"क्या यह सच है कि यह हादसा आपने जान बूझ कर इसलिये किया है ताकि आप दोनों मर जायं…?"

"जी नहीं…" रतन ने कहा।

"तो शायद इसलिये किया कि हंसा देवी मर जायं…" रतन इस प्रश्न पर चुप रहा। कुछ बोला नहीं पुलिस सप्तान ने फिर पूछा—"लेकिन अजीब बात है…आपको इतना चोट आई और हंसा देवी बिलकुल बच गईं…"

रतन ने इसका भी कोई जबाब नहीं दिया। उसने कुछ इस तरह मुँह बनाया कि जैसे उसे बोलने में तकलीफ़ हो रही थी। डाक्टर ने मना कर दिया। रतन को बड़ी मुश्किल से स्ट्रेचर पर लिटाया और

लाद कर अस्पताल की एम्बूलेंस गाड़ी में लिटा दिया। डाक्टर ने पुलिस कप्तान की ओर देखा। पुलिस कप्तान बार-बार मजिस्ट्रेट की ओर देखता था। मजिस्ट्रेट ने हंसा देवी को बुलाया। हंसा देवी आईं तो पुलिस कप्तान ने पूछा—"क्या यह सच है कि मिर्ज़ापुर जाने के पहले आप दोनों में लड़ाई हुई थी और उसमें आप से परीशान होकर मि० रतन ने यह कहा था कि वह अकेले नहीं आपको साथ लेकर मरेंगे…"

हंसा देवी ने कोई जबाव नहीं दिया। पुलिस कप्तान ने फिर पूछा—"आप से शादी तो मि० रतन ने कर ली थी लेकिन आपसे वह संतुष्ट नहीं थे…"

हंसा देवी ने इसका भी जबाब नहीं दिया। पुलिस कप्तान ने फिर पूछा—"आप मोटर से बच गईं और मिस्टर रतन को इतनी गहरी चोट आई…इसका कोई कारण आप बता सकती हैं…?"

"नहीं" हंसा ने जबाब दिया!

"आप अपने को किसी भी प्रकार दोषी समझती हैं—"

"जी हाँ…"

"किस प्रकार से…कैसे…क्यों?"

"इसलिए कि मैं ज़रूरत से ज़्यादा बदसूरत औरत हूँ…मैंने सुना था ज़रूरत से ज़्यादा खूबसूरत होना खतरनाक होता है लेकिन शायद ज़रूरत से ज़्यादा बदसूरत होना भी कुछ कम खतरनाक नहीं होता…"

"बात खत्म हो गई। थोड़ी देर तक पुलिस कप्तान में और सिविल सर्जन में बात चीत होती रही। सिविल सर्जन ने बताया कि रतन बचेगा नहीं। ज़्यादा से ज़्यादा रात तक ही चल पायेगा…चार पाँच रिब्स तो टूट ही गई हैं साथ में दिमाग़ पर भी चोटी पहुँची है…"

इतना कहकर वे सबके सब चले गये। मैं भी धीरे धीरे घर की ओर चल पड़ा। तमाम रात मेरे दिमाग़ में यही प्रश्न गूँजता रहा कि क्या वास्तव में रतन ने यह दुर्घटना जान बूझकर पैदा की है? क्या वह सचमुच हंसा देवी की हत्या कर देना चाहता था या हंसा देवी का यह

कथन कि जरूरत से ज़्यादा बदसूरत होना ही खतरनाक है सही है। रहस्य कुछ समझ में नहीं आया। कभी लगता पुलिस कप्तान ठीक कह रहा है। कभी लगता पुलिस कप्तान का कथन सही है, कभी लगता इन दोनों में से कोई ठीक नहीं है। दुर्घटना होनी ही थी हो गई। बस।

लेकिन दूसरे दिन जब मैं सिविल अस्पताल पहुँचा तो मजिस्ट्रेट रतन का डाईंग डिक्लेरेशन ले रहा था। बड़ी धीमी धीमी आवाज़ में रतन ने केवल इतना ही कहा—मैंने हंसा से शादी की थी इसलिये कि वह बड़ी सुंदर गायिका है लेकिन मैं यह नहीं जातना था कि एक गायिका को संगीत के साथ साथ सुन्दर भी होना चाहिये। कुछ ही दिनों बाद मैंने यह अनुभव किया कि केवल संगीत से मुग्ध होकर मेरा विवाह कर लेना उचित नहीं था···नारी को इसके अतिरिक्त नारीत्व के गुणों से भी सम्पन्न होना चाहिए···यह सही है कि मैंने अपने इस बन्धन से मुक्ति चाही थी और···और···और···

कहते कहते रतन की जबान लड़खड़ाने लगी। लगा जैसे उसका दिमाग़ भी काम नहीं दे रहा है। मजिस्ट्रेट ने उसके बाद कई प्रकार से कई प्रश्न पूछे लेकिन रतन का होश वापस नहीं लौटा। मजिस्ट्रेट ने उसके अंगूठे का निशान कागज पर लिया और चुपचाप उठकर जाने लगा। अब तक सिविल सर्जन भी आ गया था। उसके पीछे एक आक्सीजन प्लान्ट और नाकों में लगाने वाली नलियाँ भी थीं। माजिस्ट्रेट ने पूछ—"क्या हालत है मरीज़ की ?"

"होपलेस···बचेगा नहीं···इनर हैमरेज है···"

मैं इधर इन लोगों की बातें सुन रहा था उधर आक्सीजन ट्यूब लिए हुये छोटा डाक्टर लौटा और उसने बताया—"ही इज़ नो मोर···"

सिविल सर्जन दौड़ा हुआ उसकी चारपाई पर गया···नब्ज़ देखी। हार्ट भी देखा। आला लगाया। सब बेकार था। मेरी तरफ मुड़कर सिविल सर्जन ने देखा बोला—

"आप इनके घर के हैं···"

"जी...जी... जी" मैंने घबराहट में उत्तर दिया।

"लाश कल मिलेगी...हादसे का मामला है...बिना पोस्टमार्टम के कुछ नहीं हो सकता..."

मैं सिर नीचे किये घर वापस चला आया। दूसरे दिन एक ओर से टूटी फ़ियट ११०० ट्रक पर लदी हुई रतन भवन में प्रवेश कर रही थी, दूसरी ओर रतन की लाश दूसरे गेट से जा रही थी।

ओर जब मैंने बी० के० को उस घर में रहने के लिये सलाह दिया मेरे मन में यही एक शंका व्याप्त थी कि कहीं ऐसा न हो कि बी० के० की भी वही दशा हो जो रतन की हुई थी। मैंने इसलिए बी० के० के प्रति बड़ी सर्तकता और सावधानी भी बर्ती थी, लेकिन बी० के० जिस तेज़ गति के साथ हंसा के साथ अपना प्रेम अलाप बढ़ा रहा था उससे मुझे लगता था कि एक दिन बी० के० की परिणति यही होगी। मैं जब कभी भी उस मैरुन रंग की फ़ियेट ११०० को देखता था और यह देखता था कि उसमें बी० के० बैठा चला रहा है, तो मुझे लगता था कि जैसे सड़क के दूसरे ओर से एक भयंकर हादसा इसी ओर तेज़ी से बढ़ता आ रहा है और बी० के० कुछ क्षणों में अभी उससे टकरा कर चूर-चूर हो जायेगा।

और हुआ भी यही।

ठीक चार महीने बाद एक दिन हंसा देवी बड़ी परेशान हाल मेरे घर आई। बोली अभी-अभी खबर मिली है चित्रकूट से लौटते समय बी० के० की गाड़ी एक पेड़ से टकरा गई है और बी० के० को सख्त चोट आई है। खबर पाते ही मैं कार से गया। देखा रास्ते में मैरुन रंग की फ़ियेट नं० ११०० उल्टी पड़ी है। आस-पास के गाँव वाले घायल बी० के० को एक पेड़ की छाया में चारपाई पर लिटाये हैं और बी० के० के साथ एक बड़ी सुन्दर महिला भी है, जिसके सर पर पट्टी बँधी है। बी० के० बिलकुल बेहोश था। मैंने उन दोनों को कार से किसी-किसी तरह गाँव वालों की मदद से बैठाया और लेकर वापस आया। चोट

ज़्यादा नहीं लगी थी। बी० के० के दायें हाथ में एक फ्रैक्चर हो गया था और वह महिला जो उनके साथ थी उसे केवल उस दुर्घटना का शाक था। बी० के० लगभग पन्द्रह दिन तक अस्पताल में रहा फिर घर वापस आ गया। वह महिला उस दिन के बाद फिर कभी नहीं मिली। बी० के० से पूछने पर इतना ही पता चला कि वह उनके किसी प्रोफ़ेसर की बहन थी। दोनों पिकनिक में गये थे और फिर लौटते समय अकस्मात गाड़ी पेड़ से टकरा गई थी। चोट दोनों को आई थी, लेकिन दर्द शायद अकेला बी० के० ही भोग रहा था।

लेकिन इस घटना का एक विचित्र प्रभाव हंसा देवी पर पड़ा था। उनकी आस्था धीरे-धीरे बी० के० पर से उठ रही थी। उन्हें लगा जैसे इन समस्त दुर्घटनाओं की जड़ वह मैरुन रंग की गाड़ी ही है। बी० के० के ठीक होते ही एक दिन इस गाड़ी को बिकवा दिया। खरीदने वाले सज्जन हाईकोर्ट के एक तरुण वकील श्री प्रकाश थे। मेरा अनुमान था कि मोटर के जाते ही एक न एक दिन बी० के० को भी मकान छोड़ना पड़ेगा। मुझे आश्चर्य तब हुआ जब इस घटना के बावजूद हंसा देवी के साथ बी० के० लगभग एक साल तक रह गया और जितनी भी अफ़वाहें इस दुर्घटना के पूर्व हंसा और बी० के० को लेकर चली थी, उनमें कुछ भी कभी नहीं हुई। इसके विपरीत उन अफ़वाहों में सदैव नई कड़ियाँ जुड़ती रहीं और लाख बी० के० के चाहने पर भी उनकी वास्तविकता को जानने की किसी ने भी चेष्टा नहीं की।

अब तक मि० चतुर्वेदी चुपचाप सुन रहे थे। सहसा बोले—

"वास्तविकता कुछ और थी ?"

"थी या नहीं मैं नहीं जानता लेकिन बी० के० बराबर यही कहता था कि लोग अफ़वाहों पर अधिक और वास्तविकता पर कम विश्वास करते हैं।"

"आप क्या समझते हैं ?"

"जो आप समझते हैं।" राजा साहब ने कहा।

"और आप दोनों कुछ समझ ही नहीं सकते।" मिस्टर खन्ना ने बड़े इत्मिनान से कहा।

लोग मि० खन्ना की ओर देखने लगे। मिस्टर अनुज शर्मा ने जैसे निश्चिन्तता की साँस ली। उनके चेहरे पर जैसे एक रोशनी भी आ गयी। जितने लोग वहाँ बैठे थे सब ने इस परिवर्तन को नोट किया किन्तु किसी का साहस नहीं हुआ कि मि० अनुज से इसका कारण पूछे। लेकिन इस स्थित से उभरने पर मि० अनुज ने कहा—

"मि० खन्ना क्या आप कुछ और सोचते हैं।"

"जी हाँ···राजा साहब उतना ही गलत समझते हैं जितना कि आप लोग···।" मिस्टर खन्ना ने विरोध करते हुए कहा और फाइल के पन्नों के बीच से एक टाइप किया हुआ कागज़ निकाल कर उन्होंने मेज़ पर रख दिया। बोले—"यह एक खत है जिसे बी० के० ने जेल में मरने के पहले एक ज़रूरत से ज़्यादा बदसूरत औरत के नाम लिखा था। मैं नहीं जानता था कि वह बदसूरत औरत और कोई नहीं राजा साहब के पड़ोसी मि० रतननाथ की पत्नी ही है।"

अब तक मिस्टर अनुज ने पत्र उठा लिया था। लोगों के आग्रह करने पर उन्होंने ज़ोर-ज़ोर से पढ़ना शुरू किया।

पत्र एक ज़रूरत से ज़्यादा बदसूरत
औरत के नाम

●

मार्फत :
रतन भवन
स्टेनली रोड
इलाहाबाद।

श्रीमती जी,

मरने के पहले तुम्हारी याद भी आना ज़रूरी थी। विशेष कर इसलिए कि तुम ने मेरे सामने एक बहुत बड़ी समस्या प्रस्तुत की है

और वह समस्या है सुन्दर और असुन्दर की। यही सही है कि तुम से अधिक कुरूप स्त्री मैंने जीवन में देखा नहीं और शायद यह सही भी है कि तुमसे अधिक कुरुपता शायद संभव भी नहीं हो सकती। मुझे याद है जब मैं तुम्हारे साथ रहता था तो लोग विशेष कर तथाकथित राजा साहब मेरी बड़ी निन्दा किया करते थे। कहते थे कि संगीत के स्वरों में क्या इतनी सजीवता इतनी चेतनता होती है कि वह मनुष्य के कुरूप से कुरूप व्यक्तित्व को भी सुन्दर बना कर प्रस्तुत कर दे। मैं कहता था यह रुचि होती है लेकिन राजा साहब इसको नहीं मानते थे। उनका कहना था कुरूपता कुरूपता ही होती है। जो लोग हृदय की सुन्दरता को शरीर की सुन्दरता से एकदम अलग करके देखते हैं वह कहीं न कहीं रोगी होते हैं लेकिन यद्यपि तुम विश्वास नहीं करोगी, मेरे लिये यह बन्धन कभी भी नहीं रहा। तुम्हारे संगीत के स्वरों के आरोह अवरोह में एकदम आत्म विभोर कर देने की अदम्य क्षमता के सामने तब भी नत मस्तक था और आज भी मुझे अपने जीवन की वह घड़ियाँ कभी भी नही भूलेंगी जब मैंने तुम्हारे ही स्वरों में अपने गीतों को स्वरबद्ध रूप में सुना था।

मुझे मालूम है मेरी स्वतंत्र एवं सुन्दर प्रशंसा और तुम्हारे अमिट स्नेह को लोग लक्षित करते थे। इसकी चर्चायें होती थीं लेकिन उसका प्रभाव मेरे ऊपर कभी भी नहीं पड़ा। शायद तुम पर भी उसका प्रभाव उस समय तक नहीं पड़ा। जब तक कि मैं कार की दुर्घटना में घायल नहीं हुआ था। सुन्दर और कुरूप में मैंने केवल यही अन्तर पाया है। कुरूपता जाने क्यों शंका, संदेह और अमिट प्रेम को भी तुमने सन्देह से देखा इसीलिए मैं अचानक एक रोज़ तुम्हारा घर छोड़ कर निकल गया। मैं जानता था कि मेरे इस तरह अचानक चले जाने के कारण तुमको कष्ट हुआ होगा किन्तु मैं क्या करता? जब तक मेरे और तुम्हारे बीच कोई शंका नहीं थी, कोई व्यवधान नहीं था तब तक मेरे लिये सब कुछ सहज़ था किन्तु जब वह सन्देह तुममें जाग गया—जो कि काफ़ी हद तक

सही भी थी—तब मेरे लिये कोई और चारा नहीं था। मैंने अपने स्वाभिमान और तुम्हारी आत्मा की तुष्टि के लिये ही घर छोड़ा था। सोचा था कभी अचानक कुछ घण्टों लिये रुक कर तुमसे क्षमा माँग लूँगा लेकिन जीवन में व्यस्त रहने के कारण मुझे एक दिन भी समय नहीं मिल पाया और अब शायद कभी जीवन जीने के लिये ही न मिले। यह पत्र लिख कर कुछ बातों का स्पष्टीकरण और कुछ क्षमा याचना कर लेना आवश्यक समझता हूँ।

तुम मानों या न मानों लेकिन जितने दिन मैं तुम्हारे साथ रहा अन्तर मन में बराबर एक ही प्रश्न उठा करता था। मैं मानता था कि आत्मा की सुन्दरता ही संसार में मूल्यवान होती है। मैं भी तुम्हारे वाह्य रूप की ओर आकर्षित न होकर तुम्हारी आत्मा में निहित सुन्दरता को देखना चाहता था लेकिन बड़े से बड़े महत्वपूर्ण क्षण में भी मैं तुम्हारे रूप की सीमा के कारण तुम्हारी आत्मा की सुन्दरता को देखने में असफल ही रहा। तुम्हारे संगीत के आरोह-अवरोह में तुम्हारी मार्मिक अभिव्यंजना में मैं बराबर ही चोट खाता रहा। जब तक आँखें बन्द कर के तुम्हारा संगीत सुनता मुझे लगता मैं किसी नैसर्गिक आनन्द को भोग रहा हूँ किन्तु जैसे ही मेरी आँख खुलती मुझे लगता इस स्वर का और तुम्हारे रूप का समन्वय कहीं बिखर गया है। मैं कुछ कह नहीं पाता था केवल अपने ही से पूछता रहता था।

तुम कह सकती हो कि जब मेरे मन में इतना संघर्ष था तो फिर मैंने यह आडम्बर क्यों किया ? नारी के जिस्म को भोगने के बाद जो उसे तिरस्कृत करे उससे बढ़कर धृष्ट शायद कोई नहीं होता लेकिन तुमको शायद विश्वास नहीं होगा मैंने तुम्हारे साथ जो भी सम्बन्ध रक्खे थे वे केवल दया वस थे उसमें मेरी आत्मा से परिचालित स्वर लहरी लेश मात्र भी नहीं थी। वह केवल तुम्हारी दीनता से द्रवित होकर उपजी थी और उसी की होकर समाप्त भी हो जाती थी।

मैं मानता हूँ हंसा किसी भी मानव व्यक्तित्व का अपमान किसी

भी परिस्थिति में इसलिये नहीं करना चाहिये कि वह कुरुप है लेकिन कभी-कभी कुछ व्यक्तित्वों की इतनी प्रधानता दिखा देती है कि आदमी मजबूर हो जाता है। जैसे मैं ममता ही की बात करता हूँ। बम्बई से लौटने के बाद भी मैंने तुम्हें बताया था शायद ममता का सौन्दर्य ही प्रधान तत्व था जिसने मुझे अभिन्न ही नहीं विवश भी बना दिया था। यह विवशता मेरे लिये उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी कि तुम्हारे साथ की उपजी हुई विवशता। हंसा मैं सोचता हूँ सुन्दरता या कुरुपता अपनी पराकाष्ठा पर एक ही प्रतिक्रिया प्रेषित करते हैं और वह प्रतिक्रिया होती है। विवशता की ज़रूरत से ज्यादा खूबसूरत और ज़रूरत से ज्यादा बदसूरत दोनों ही को मैंने बड़े निकट से भोगा है, देखा है, अनुभव किया है मुझे लगा है कि वह अनुभूति की स्थिति प्रायः उत्सर्ग पूर्ण होती है···दोनों ही में आत्मा के सौन्दर्य तक ले चलने की क्षमता नहीं होती, दोनों ही कहीं हमारे ऐन्द्रिय बोध को तीव्र बना कर एक निष्क्रियता की ओर अकस्मात ही ले जाते हैं। मैं क्या करूँ? मैंने अपने भरसक उन तत्वों-से बार-बार संघर्ष करना चाहा लेकिन मेरा प्रत्येक संघर्ष जैसे मुझ ही को तोड़ता जा रहा था। मुझे आशा है कि बावजूद मेरी कमियों के तुम भी कठिनाई को समझने की चेष्टा करोगी।

और हंसा मेरे इसी तर्क से यह भी निकलता है कि मैं उस बन्धन को नहीं स्वीकार कर पाता जिसे प्रायः तुम जैसे संस्कारी लोग विवश होकर मानती हो। तुम्हें मालूम है मुझे न तो किसी समाज ने, न किसी धर्म ने, न किसी व्यवस्था ने ही आज तक अपनाया है। मनुष्य होने पर भी मेरे साथ किसी ने मनुष्यता का व्यवहार नहीं किया है क्यों मेरे नाम में; मेरे व्यक्तित्व में, मेरे जन्म के साथ न तो कोई घर सम्बद्ध था और न कोई परिवार। खुले मकान के नीचे संस्कारबद्ध समाज के व्यंग्य जैसा ही मैं जन्मा और उसी का व्यंग्य भोगता आज तक जीवित रहा हूँ। मैंने इसीलिये कभी किसी भी संस्कार का आदर नहीं किया मुझे समाज के समस्त निर्धारित संस्कार ही व्यंग्य जैसे लगते रहे हैं।

मुझे समाज ने व्यंग्य माना, समाज मुझे व्यंग्य जैसा लगा। इसके लिये न तो मैं समाज को दोषी बनाता हूँ और न अपने को दोषी समझता हूँ। समाज मुझसे पृथक अस्तित्व है जो जी सकता है। मैं समाज में पृथक आस्तित्व तो हूँ लेकिन मैं इतना कृतघ्न नहीं हूँ कि मैं यह कहूँ कि मेरे व्यक्तित्व में समाज का कोई अंश है ही नहीं। लेकिन इसे मैं क्या करूँ कि जो भी अंश मुझे मिला है वह एक व्यंग्य का है और आज मैं उसी व्यंग्य की पूर्णाहुति भी देने जा रहा हूँ।

मैंने पूर्णाहुति की बात जान बूझकर की है क्योंकि बिना सार्थकता के महत्व को स्वीकार किये कीड़े भी आहुति पूर्ण आहुति, की पावनता पा ही नहीं सकते। तुम कहोगी वह कौन-सी वस्तु है जिसकी सार्थकता से प्रेरित होकर मैंने उसके महत्व को स्वीकार किया है—तो सुनो हंसा वह पावनता है मानव अस्तित्व की। मुझे मनुष्य होकर भी मनुष्य का आदर नहीं मिला इसीलिये मानव स्वाभिमान के महत्व को शायद मैं आवश्यकता से अधिक समझता हूँ। अभावों में पले हुये मूल्यों के विकास को यों तो मैं महत्व नहीं देता लेकिन ऐसा मैं तभी कर सकता हूँ जब वे मूल्य स्वयं में पतित और कृत्रिम हों। कभी-कभी अभावों में पले हुए मूल्य बड़े महत्व पूर्ण भी होते हैं। शायद यही कारण है कि मैं जो आज तक किसी के लिए कुछ नहीं कर सका अपना सम्पूर्ण-अर्पण करके एक ऐसे व्यक्ति के लिए उत्सर्गिक होने जा रहा हूँ जिसे न तो समाज में और न स्वयं अपने में कोई मूल्य दीखता है। मेरा क्या है? शायद यह पत्र मिलने पर तुमको कुछ दुःख हो किन्तु और किसको दुख होगा? कौन है मेरा? जो है भी वह भी शायद मुझे स्वीकार करने के लिए न हो? हंसा मेरे जीवन का अपवाद ही मुझे शक्ति देता है। इसी ने आज मुझे यह शक्ति दी है कि मैं कुरूपता और ममता के अद्वितीय रूप को एक स्तर पर भोग सकता हूँ। मेरे लिए दोनों महत्वपूर्ण हैं, दोनों मुझे विवशता की अनुभूति देते हैं दोनों ही मुझसे भूले नहीं जाते, दोनों ही मेरी आँखों में आँसू ला देते हैं—वह चाहे ममता का चमत्कृत रूप

हो या तुम्हारा। आज मेरी इसी भावना ने मुझे मनुष्य को भी अरूप बना दिया···मुझे लगता है मनुष्य का अस्तित्व उसकी संभावित कल्पना में है, अन्य किसी भी रूप में संभव नहीं है।

किन्तु एक बात है···मुझे लगता है मुझमें अब भी कुछ ऐसा है जो अशेष रह गया है और मैं उसे कोई नाम नहीं दे रहा हूँ···मैं कुछ कहना चाहता हूँ लेकिन कह नहीं पा रहा हूँ···मुझे लगता है मैं इतना बड़ा कंगाल हूँ कि मेरे पास शब्द ही नहीं हैं और जो वे उधार पर इतने चल चुके है कि उनका अर्थ समाप्त हो चुका है।

और हंसा···एक अजीब बात मैंने पिछले दिनों देखी है। मेरे पास मीनाक्षी मिलने आई थी। कार तुम्हारी थी लेकिन ड्राइव वह कर रही थी—वही मैरून रंग की फ़ियेट जिससे दो दुर्घटनाएँ हो चुकी हैं··· मीनाक्षी के पास वह कार देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मेरे जी में आया कि मैं मीनाक्षी को रोक कर उससे कह दूँ कि ये मैरून रंग की गाड़ी मनहूस है। उसे बता दूं कि आज तक जिस जिस ने इस गाड़ी को कभी भी चलाया है वह या तो दुर्घटना से मरा है या आत्महत्या से···तुम्हें पता नहीं इस पर विश्वास होगा कि नहीं पर यह सत्य है कि उस कार के साथ कुछ ऐसी परम्परा जुड़ गयी है कि हमारे लिए बिना उसके कुछ भी सोचना संभव नहीं हो पा रहा है। इस पत्र में मै तुमसे यह भी प्रार्थना करना चाहता हूँ कि तुम मीनाक्षी से मना कर दो वह उस गाड़ी को जितने शीघ्र हो छोड़ दे। मीनाक्षी के विषय में और कुछ भी नहीं बताऊँगा। मैं समझता हूँ कि तुम से केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा। तुम जब मीनाक्षी को मिलोगी तो स्वयंम् पता चल जायगा कि मीनाक्षी कौन है ? बहुत सी बातें हैं जिसके विषय में यहाँ बताने का समय नहीं है।

इस के साथ एक बात और है और वह यह कि दमयन्ती के पास भी एक डायरी है। कुछ दिनों के लिए दमयन्ती अपने पति के साथ कलकत्ते गई थी। वहीं मुझे पता चला कि यह लोग हनीमून मनाने आये

हैं। । मैंने ऐसी स्थिति में उनसे परिचय प्राप्त करना श्रेष्यस्कर नहीं समझा लेकिन एक दिन जब वह स्वयं मेरा घर ढूँढते हुए मेरे पास आये तो मैंने डॉ० दीनानाथ और दमयन्ती दोनों को एक सप्ताह के लिये अपने पास रोक लिया था। उसी बीच दमयन्ती ने मेरी डायरी उड़ा दी थी। मैंने बहुत माँगा लेकिन उसने दिया नहीं। उसमें भी कुछ बातें इतनी व्यक्तिगत स्तर की हैं कि न तो उनको जानने से किसी का लाभ होगा और न मेरा ही कल्याण होगा। कुछ बातें ऐसी भी हैं कि जिन्हें मैं अब किसी को बताना नहीं चाहता क्योंकि उन रहस्यों को जानने से कोई लाभ नहीं होगा न तो कोई मुझ में दिलचस्पी रखता है और न उन घटनाओं में। मैं समझता हूँ कि उन गड़ी हुई कब्रों को उखाड़ने में न तो कोई लाभ होगा और न उसमें कोई विशेष ज्ञान को अर्जित कर सकता है। जो कुछ है वह इसलिये मैं दफ़ना देना चाहता हूँ क्योंकि वह इतना बड़ा सत्य है कि उसको जानने के बाद किसी भी बात की इच्छा नहीं रह जायगी। वह भी संभव हो सकता है कि मात्र मेरी ही विवशता देखकर कुछ लोग अनेक प्रकार का प्रलोभन देकर कल तक की सूचना ले लेंगे। मैं समझता हूँ और निश्चय इतनी बात मुझे सत्य लगती है। इसलिये मैं मौन हूँ और आशा करता हूँ कि इसे पढ़कर तुम भी जला दोगी··· विशेष कर मीनाक्षी को इसे नहीं दिखाओगी।

तुम्हारा

बी० के०

मि० अनुज शर्मा पूरे पत्र को एक साँस में पढ़ गये और फिर काग़ज को मेज़ पर रखकर मेज़ के चारो बैठे लोगों की ओर एक गर्व भरी दृष्टि से देखने लगे। वस्तुतः उन्होंने घबराहट में ही वह पत्र ले लिया था। पढ़ भी गये थे। पढ़ कर समाप्त करने के बाद यद्यपि उनकी मुद्रा गर्व की थी। फिर भी जाने क्यों उनका दिल बैठा जा रहा था। कुछ कहना ही चाहते थे कि राजा साहब ने कहा—

"इस पत्र से तो यह सिद्ध हो जाता है कि जो भी अफ़वाह अब तक फैले हुये थे वे सब झूठे नहीं, सब के सब सच हैं..."

"लेकिन सब से आश्चर्यजनक बात तो यह है कि आखिर यह मैरून रंग की गाड़ी मीनाक्षी के पास कैसे पहुँची..." मि० भल्ला ने कहा !

"मैं इतना कह सकता हूँ कि यह गाड़ी अब श्री प्रकाश के पास भी नहीं है...कहते है खरीदने के चौथे दिन ही उसकी टक्कर एक ट्रक से हो गई थी । मोटर तो बच गई थी लेकिन बिचारा ड्राइवर दब कर मर गया था..."

"तो क्या हुआ ? क्या मोटर खरीदने के लिये पहले पहल किसी दुर्घटना में शामिल होना जरूरी है..." ममता ने बात काटते हुये कहा ।

"कुछ न कुछ प्रबन्ध तो किया ही होगा..."

"जी हाँ...और दोस्तों का भी प्रबन्ध किया होगा"

मि० चतुर्वेदी ने बात काटते हुये कहा । फिर बोले—

"लेकिन साहब यह गाड़ी मीनाक्षी के पास कैसे आई ?"

"खरीदी होगी..."

"मेरा ख्याल है दमयन्ती जी से पूछा जाय ।"

दमयन्ती आवश्यकता से अधिक गंभीर हो गई । उनके बेहरे से ही यह स्पष्ट हो गया कि उसे इस प्रकार के व्यंग्य बिलकुल ही पसन्द नहीं हैं। वह एक दम मौन हो गई मि० खन्ना जैसे वस्तु स्थिति भाँप गये । बात काटते हुये बोले—

"खैर यह तो अलग बात है लेकिन राजा साहब यह हंसा देवी कहाँ चली गई—"

बी० के० के जाने के साथ जो ग़ायब हुई तो आज तक मैंने उन्हें नहीं देखा...कुछ लोगों का कहना है कि पिछले साल कुछ दिनों के लिये वह आई थीं लेकिन फिर पता नहीं कहाँ चलीं गई..."

"उन दिनों आप कहाँ थे ?" मि० खन्ना ने पूछा

"मैं पंजाब अपनी बहन के यहाँ गया था..."

ममता बड़ी देर से मिस्टर अनुज की ओर देख रही थी और उनके चेहरे पर आते रंगों की भाषा भी समझ रही थी। महज़ एक चुटकी लेते हुये उसके कहा—"मि० अनुज आप ही कुछ प्रकाश डालिये···"

"मैं···मैं···मैं माफ़ कीजिये साब अब काफी हो चुका"

मि० अनुज ने कुछ आवेश में कहा। थोड़ी देर सोच कर बोले—

"मरने के कुछ घण्टों पहले का लिखा हुआ बी० के० का खत··· खत नहीं एक सुन्दर साहित्यिक कृति है···"

"इसलिये तो खत नहीं है···खत होता तो हंसा देवी के नाम ठीक-ठीक होता।" कुछ देर सोच कर बोले—"लेकिन आप लोग क्या जानें आपको तो अपने पैसों के एवज़ में बहुत सी सुविधायें मिल जाती हैं समाज में, लेकिन बी० के० कैसे आदमी को क्या मिला ?"

"उन्हें क्या नहीं मिला ?" ममता ने कहा।

"उसे मिला कुछ नहीं···इतनी भी सुविधा नहीं कि वह अपनी बात भी किसी से कह सके···।" मि० अनुज ने कुछ विशेष आवेश में कहा। सन्नाटा छा गया। अब लोगों को विश्वास हो गया कि मि० अनुज आवेश में हैं। लोगों ने यह भी भाँप लिया कि मि० अनुज धीरे-धीरे पूरे आवेश में आ जायेंगे। पुलिस कप्तान मि० चतुर्वेदी ने कहा—

"ठीक-ठीक तो नहीं कहा जा सकता लेकिन जब मि० अनुज पत्र पढ़ रहे थे तो लगता था कि वह आवेश में आ रहे हैं।"

"मुझे आवेश में आने की क्या ज़रूरत ?" मि० अनुज ने कहा। लोग थोड़े उत्सुक हो गये। मि० भल्ला बोले—

"बात जो भी हो – इस मैरून रंग की फ़ियेट और हंसा देवी के बीच कहीं अनुज जी भी हैं—।"

"मैं कहाँ हूँगा···?"

"यह हम लोग नहीं बता सकते लेकिन आप का घर ढूंढते ढूंढते जब

हम लोगों को पता लगा तो लोगों ने बताया कि आप अकेले नहीं रहते कोई और भी आपके साथ रहता है…" मि० भल्ला ने दुहराया।

अब तो मि० अनुज और भी आवेश में आ गये। अपने सम्बन्ध में यह सब बातें सुनना उनके लिये असह्य थीं। बोले—

"मैं स्कैण्डल्स में विश्वास नहीं करता"

"विश्वास करने की जरूरत भी नहीं है…यू आर स्कैण्डलस और मेरा विश्वास है हंसा देवी अपके साथ रहती है…"

जितने लोग वहाँ बैठे थे सन्न रह गये। सब के सब मि० भल्ला का चेहरा देखने लगे। मि० अनुज शर्मा आवेश में उठे और बाहर चले गये। मि० चतुर्वेदी ने उठते हुये कहा—

मैरून रंग की फ़ियेट मीनाक्षी के पास कैसे आई इसका पता अब भी नहीं लगा।

●●

काफ़ी हाऊस
की सातवीं शाम

•

"क्या अपने जी को लगते हैं कुछ अजनबी से हम"

"राजा पोरस ने हार कर भी भारत की प्रतिष्ठा बढ़ाई थी"
"भारत हार कर भी अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाये रखता है"
"भारत हारता है तब भी और जीतता है तब भी प्रतिष्ठा बनाये रखता है"
हारने वाला ही प्रतिष्ठित होता है....हमें अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखना चाहिये"

काफ़ी हाऊस की सातवीं शाम

•

[२-९-१९६२]

•

हाईकोर्ट इतवार होने के नाते बन्द था ।

काफ़ी हाऊस में छुट्टियों की वजह से भीड़ भी आज ज्यादा थी। काफ़ी शोर ओ गुल था। राजा साहब जब आये तो उन्हें थोड़ी देर खड़ा रहना पड़ा। जब खिलाड़ियों की टोली काफी पीकर निकली तब जा के तीन मेज़ें एक साथ ख़ाली हुईं। राजा साहेब उन्हीं में से एक पर आ बैठे और नियमानुसार अपना अखबार खोल कर पढ़ने लगे। थोड़ी देर बाद रोज़ की तरह मि० अनुज शर्मा अपने निश्चित समय पर आये और राजा साहब से अलग एक कुर्सी पर जा बैठे। आज उन्होंने निर्णय किया था कि राजा साहब के साथ न बैठेंगे और न उनसे कोई बात ही करेंगे। पिछली रात दमयन्ती ने मीनाक्षी के बारे में जो कुछ बताया था मि० अनुज शर्मा ने आज उसे लिपिबद्ध कर लिया था। सब कुछ लिख चुकने के बाद ही वह काफ़ी हाउस आये थे। सोचा था काफ़ी हाउस में ही बैठ कर पढ़ेंगे। आज इतवार होने के नाते मि० भल्ला, मि० चतुर्वेदी, मि० खन्ना, ममता आदि में से कोई भी नहीं आने वाला था। सोचा था अपना ही लिखा हुआ अंश वह वहाँ फिर से पढ़ लेंगे और कल मि० खन्ना को क्षेपक रूप में मीनाक्षी की कहानी को भी बी० के० की कहानी

में जोड़ने के लिये दे देंगे। लेकिन जैसे ही शर्मा जी अपनी चिर परिचित मेज़ पर बैठे वैसे ही राजा साहब अपनी गहन गंभीर मुद्रा में आकर उनके सामने बैठ गये। बड़ी तटस्थता से बोले—"चीनी हमला होकर रहेगा।"

मि० अनुज शर्मा भारत के उन बौद्धिक जीवनों में से हैं जो चीन के हमले को कौन कहे वोट की बात करने को भी राजनीति समझते हैं और साहित्य को राजनीति से उतनी ही दूर रखना चाहते हैं जितनी दूर कि गधे के सिर से सींघ रहती है। राजा साहब ने जैसे ही अख़बार खोल कर यह सूचना सुनाई तत्काल ही अनुज शर्मा बोले—"देखिये साहब हम लोग साहित्यकार लोग हैं हमसे राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं है। हम तो महज एक बात जानते हैं और वह यह कि राजनीति साहित्य को गन्दा बना देती है और·····"

राजा साहब एक दम आश्चर्य से मि० अनुज शर्मा की ओर देखने लगे। बोले—"साहब चीन हमारे देश पर हमला कर रहा है और इस हमले के बारे में बात करना राजनीति और गन्दी राजनीति बता रहे हैं····आप कायर हैं·····"

मि० अनुज शर्मा थोड़े गम्भीर हो गये। उनका चेहरा भी कुछ टेढ़ा मेढ़ा हो गया। कुछ क्रोध भी आया लेकिन फिर बोले—

"हम बात करके भी क्या कर लेंगे····हम शश्वत मूल्यों में विश्वास करने वाले लोग—हमेशा प्रेम, शान्ति, अहिंसा आदि रागात्मक सम्बंधों में विश्वास करते हैं।"

"रागात्मक सम्बन्ध क्या होता है शर्मा जी ?"

"जैसे प्रेम का सम्बन्ध·····"

"और यह प्रेम का सम्बन्ध क्या मित्र शत्रु का भेद नहीं पैदा करता·····"

मि० शर्मा चुप हो गये। वह समझ गये कि जो कुछ वह कहना चाहते हैं उसे वह समझ नहीं सकते। राजा साहब हमेशा मोटी-मोटी बातों के पीछे पड़े रहते हैं। उन्हें चिन्ता रहती है "मैरुन रंग की गाड़ी

कैसे मीनाक्षी के पास पहुँची" "चीन कैसे भारत की सीमा पर पहुँचा", "मिसेज़ शिप्ले का एलसेशियन सेर गोश्त क्यों खाता है" इन बातों से बढ़ कर जो मानव की अन्तर्मन की करुणा है इसे वह कभी भी नहीं देख पाते। इसीलिये अनुज शर्मा ने कुछ भी बहस करने की अपेक्षा मौन ही रहना उचित समझा। राजा साहब फिर बोले—

"राजा पोरस ने हार कर भी भारत की प्रतिष्ठा बढ़ाई थी।"

मि० अनुज शर्मा इस पर भी चुप रहे।

"भारत हार कर भी अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाये रखता है।"

मि० अनुज और गहराई के साथ चुप हो गये। राजा साहब ने फिर कहा —

"भारत हारता है तब भी और जीतता है तब भी प्रतिष्ठा बढ़ाये रखता है...."

मि० अनुज अब कुछ कुढ़ से उठे थे। राजा साहब ने फिर कहा—

"प्रतिष्ठा की हार जीत से कोई सम्बन्ध नहीं है...."

मि० अनुज भीतर ही भीतर उत्तेजित हो रहे थे। राजा साहब ने आगे कहा—

"हारने वाला ही प्रतिष्ठित होता है....हमें अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखना चाहिये...."

अब तो अनुज शर्मा से नहीं रहा गया। आवेश में बोले—"आप तो अजीब आदमी हैं....चाहे कोई सुने या न सुने आप सुनाने से नहीं बाज़ आयेंगे....मैं कहता हूँ मुझे इन सब में कोई दिलचस्पी नहीं है...."

राजा साहब अपनी मोंछ के नीचे मुस्करा रहे थे वह यही चाहते थे। वह इस बहाने यह भी जानना चाहते थे कि मि० अनुज शर्मा साधारणतय: किन किन बातों से चिढ़ते हैं। उन्होंने थोड़ी शरारत भरी दृष्टि से भी अनुज शर्मा की ओर देखते हुये कहा—"कल भी प्रतिष्ठा की बात थी...."

"वैसी प्रतिष्ठा...."

"मि० भल्ला को सीमाओं का अतिक्रमण नहीं करना चाहिये था....."

मि० अनुज के सामने अब सीमा का अतिक्रमण, प्रतिष्ठा, हार जीत सब का अर्थ स्पष्ट हो गया। उन्हें लगा इतनी लम्बी चौड़ी भूमिका राजा साहब ने केवल कल की अधूरी बात को पूरा करने के लिये ही उठाया है। मि० अनुज उस बात से आज भी कतरा जाना चाहते थे। इस बात में कहीं न कहीं उनकी कोई कोर दबती थी। एक तो शायद इसलिये कि बी० के० उनका मित्र था दूसरे शायद इसलिए कि कहीं वह स्वयं बी० के० के इस उपन्यास के एक पात्र थे। यह तो सभी अनुभव भी करते थे लेकिन कहाँ किस मोड़ से यह कहानी मि० अनुज शर्मा के हाथ में आती है यही नहीं पता चलता था। राजा साहब भी एक दिन की ही बातचीत में इस गहराई तक पहुँच गये थे। बोले—

"आदमी को आवेश में नहीं आना चाहिये" और फिर अपना अख़बार खोल कर जहाँ भी नज़र पड़ी वहीं से पढ़ना शुरू कर दिया।

"कौन आवेश में आता है।" आवेश में ही मि० अनुज ने कहा।

"कल आप आवेश में आ गये थे"

"तो क्या हुआ"—कुछ चिढ़े हुये स्वर में मि० अनुज ने कहा।

"आवेश में आने से बनती हुई बात भी बिगड़ जाती है"।

"क्या मतलब....?"

"यही अगर आप आवेश में आ जायेंगे तो सीमाओं के अतिक्रमण का जवाब नहीं दे पायेंगे....."

"मुझे किसी भी अतिक्रमण का जवाब नहीं देना है....मैं शान्ति चाहता हूँ....प्रेम चाहता हूँ....." मि० अनुज ने कहा।

"आप के चाहने से क्या होता है....आप का चाहना आपके शत्रु पर आधारित है। वह अगर आपकी नाक काटना चाहेगा तो क्या आप अपनी नाक दे देंगे....." राजा साहब ने कहा।

अब तो अनुज शर्मा को और भी आवेश आ गया। कुछ खिन्न होकर

वह मौन हो गये। उन्हें लगा राजा साहब ने आज जहाँ तक बात करने का निश्चय किया है वहाँ तक करके रहेंगे। जितनी सीमा का अतिक्रमण करने का संकल्प उन्होंने किया है वहाँ तक तो यह करेंगे ही। बीच में शत्रु को रोकने से कोई लाभ नहीं! उसके बाद तो वह स्वयं वापस हो जायेंगे। आज के अतिक्रमण का यही नियम हैं। इसलिए मि० अनुज शर्मा ने मन ही मन यह संकल्प कर लिया कि वह अब किसी भी प्रकार का प्रतिवाद नहीं करेंगे। लेकिन राजा साहब कब के मानने वाले। उन्होंने कहा—

"हंसा देवी आज भी वैसे ही, जिन्दा हैं जैसे दलाई लामा, और आपने उन्हें शरण दिया है लेकिन ऐसे चुपके-चुपके कि कोई जान भी नहीं पाता....."

मि० अनुज ने मुँह दूसरी तरफ़ कर लिया। उनकी सबसे बड़ी मजबूरी यह थी कि वह एक बार जिसका साथ पकड़ लेते थे फिर छोड़ते नहीं थे और इस समय वह अपनी चिरपरिचत मेज़ का साथ पकड़े हुए थे। उसे छोड़ना उनके लिये असम्भव था। कोई रास्ता दीख नहीं पड़ता था और राजा साहब एक दंड प्रतिज्ञा की भाँति अपनी पूरी बात सुनाने में लगे थे। बचने की कोई सूरत भी नज़र नहीं आ रही है।

ऊब कर उन्होंने अपनी नज़र दूसरी ओर उठाई और देखा काफ़ी हाऊस में अकेले मि० सैम्यूअल प्रवेश कर रहे थे। मिस्टर सैम्यूअल काफ़ी हाउस के उन व्यक्तियों में से थे जिनको देख कर राजा साहब ऐसे ग़ायब होते थे जैसे नीबू को देख कर अफीम का नशा ग़ायब हो जाता है। मि० अनुज शर्मा ने अपनी मेज़ ही पर से सैम्यूअल साहब को आवाज़ दिया। सैम्युअल साहब ने मि० अनुज शर्मा की आवाज़ तो सुनी ही लेकिन केवल सैम्यूअल का नाम राजा साहब के लिये काफी था। राजा साहब ने तुरंत अपना अख़बार समेटा और उस मेज पर से उठ खड़े हुये। मि० शर्मा इतने अधिक आतंकित हो चुके थे कि वह उठे भी नहीं। चुपचाप राजा साहब को चले जाने पर यद्यपि उन्होंने बाध्य नहीं किया लेकिन

चीनी फौज की तरह उन्हें भागना ही पड़ा। अब जाकर मि० शर्मा को कुछ आराम मिला। उन्होंने अब अपने चिर परिचित बेयरे को बुलाया। उसे एक सादा दोसा और मद्रासी चटनी के बाद काफ़ी का आर्डर दिया। जेब से दिन भर का लिखा हुआ कागज़ निकाला और उलट पलट कर पढ़ने लगे। कुछ इधर उधर देख कर उन्होंने कागज़ को फिर जेब में रख लिया। सोचा काफ़ी पीकर पढ़ेंगे लेकिन इस बीच उनके दिमाग़ पर मैरून रंग की ११०० फ़ियेट गाड़ी और तत्सम्बन्धित दुर्घटनायें वैसे ही सजीव हो उठीं जैसे दिव्य चक्षु मिल जाने से संसार का सारा मिथ्या भ्रम, माया, मोह एक सांस में समाप्त हो जाता है।

लेकिन मि० अनुज शर्मा जैसे कोमल भावनाओं वाले व्यक्ति के लिये यह कल्पना करना कि मीनाक्षी भी एक दिन कार की दुर्घटना मे मर जायगी असह्य था। उन्होंने तुरन्त अपना सिर हिला कर अपने दिमाग़ से इस बात को ऐसे निकाल फेंका जैसे अहीर या हलवाई उबलते हुये दूध में पड़ गई मक्खी को निकाल फेंकते हैं। सिर हिलाने से ही मि० अनुज को थोड़ी सी शान्ति मिल गई। वह जालीदार खिड़की से उन चार चर्च की मीनारों को देखने लगे जो अनन्त में मौन और उदास खड़े थे। उनकी यह तंद्रा तब भंग हुयी जब बेयरे ने आकर मेज पर काफ़ी और दोसा रख दिया। मि० अनुज फिर अपनी भूख प्यास में डूब गये। जब काफ़ी पी चुके तो अपना लिखा हुआ काग़ज़ खोला और पढ़ने लग गये।

सातवीं कहानी

"मैं जानती हूँ....इसमें प्रकाश का कोई दोष नहीं था" दमयन्ती ने कहा।

अनुज शर्मा को विश्वास नहीं हो रहा था। करुणा मेडिकल हाल में दोनों बैठे थे। डा० दीनानाथ ने अब गंगा के किनारे शिव कुटी पर नेचरो

रंग की फियेट गाड़ी प्रकाश ने जान बूझ कर मीनाक्षी को क्यों दे दिया ? मीनाक्षी देहरा एक्सप्रेस से देहरादून जा रही थी । एम० ए० पास करने के बाद उसकी नियुक्ति सरकार द्वारा प्रिंसपल के पद पर हुई थी । लखनऊ स्टेशन पर प्रकाश जी की भी सीट उसी कम्पार्टमेंट में रेजर्व थी। उसे भी देहरादून जाना था । दिन भर लखनऊ में एक्टर और एक्ट्रेसेस के बीच एन० डी० एफ० की सहायतार्थ क्रीकेट मैच देख कर प्रकाश लौट रहा था उसके साथ कोई और नहीं था इसलिए अपनी सीट पर होलडाल फैला कर वह चुपचाप लेट गया था । बग़ल वाली सीट पर एक वृद्ध सज्जन लेटे थे जो क्रिकेट मैच देखकर स्वयम् पराभूत होकर लौट रहे थे। प्रकाश को कुछ पहचानते हुये उन्होंने कहा—"आप तो अभी मेरे पास ही बैठे थे....."

"जी हाँ....."

"मैच अच्छा रहा।" वृद्ध महोदय ने कहा ।

"जी हाँ, अच्छी तफ़रीह थी....पचीस रुपये में यह नाटक कुछ बुरा नहीं था....."

अपना पाईप जलाते हुये वृद्ध महोदय ने फिर कहा—

"हाँ साहब पच्चीस रुपये में ढेर सारी औरतों को देखना कभी भी बुरा नहीं होता ।"

"जी हाँ, ख़ास कर जब आप जैसे बुज़ुर्ग साथ हों"

वृद्ध थोड़ा मुस्कराया और फिर अपना पाईप जला कर पीने लगा । उसने एक बार अपना बिस्तर झाड़ा । खिड़की जो खुली थी उसे बन्द किया और चुपचाप एक किताब खोल कर पढ़ने लगा। मीनाक्षी बग़ल वाले बर्थ पर लेटी थी । एक महिला और थी जो उसके सामने वाली बर्थ पर जब से आई थी बेहोश ही सी सो रहीं थी । ऊपर प्रकाश की बर्थ थी । जब वह अपना कपड़ा बदल कर स्लीपिंग गाऊन पहन कर ऊपर चढ़ने लगा तभी उसके जेब का सिगरेट केस मीनाक्षी के हाथ पर पड़ा और उसकी दो चूड़ियाँ टूट कर हाथ में धँस गईं । मीनाक्षी उठ बैठी । उसने एक बार

गुस्से के लहजे में प्रकाश की ओर देखा। प्रकाश ने बड़ी ही नम्रता से क्षमा माँग लिया। दूर पर लेटे वृद्ध ने इस घटना को देख लिया। तेजी से उठा। बोला—

"क्यों साहबज़ादे खून बहा दिया न ?"

प्रकाश मन ही मन कुढ़ गया। उस वृद्ध के इस वाक्य से जैसे उसकी क्रोधग्नि प्रज्जवलित हो उठी। डाँट कर बोला—

"वेल मिस्टर ओल्ड मैन यू मस्ट लर्न मैनर्स—"

"दैट आई मस्ट···"वृद्ध ने कहा और उठकर बैठ गया। मीनाक्षी ने भी क्रोध भरी दृष्टि से उसकी ओर देखा और मौन होकर बैठ गई। धीरे धीरे कम्पार्ट में पड़ी काँच की कनियों को बटोरा और बाहर फेंका ···फिर अपते ज़ख्म को बैनेटिबेग से पोछने लगी लेकिन खून निकलना बन्द ही नहीं होता था। वृद्ध इतनी देर में अपनी जगह से उठकर मीनाक्षी के पास आ गया था। एक डाक्टर्स बैंग खोल कर उसने मैक्रोकूम निकाला रूई का फाहा लिया। घाव साफ किया और लाल दवा लगा कर बोला—

"दैटस आल राईट···नाऊ यू स्लीप·····"

इस घटना ने जैसे प्रकाश और मीनाक्षी का क्रोध शान्त कर दिया। प्रकाश चुपचाप उस वृद्ध को देख रहा था। अजीब मस्त आदमी था। उठने लगा तो बोला—

"जहाँ चार बर्तन होवे हैं आवाज़ होती है····जहाँ चार आदमी होते हैं हादसात हो ही जाते हैं····यह दवा का बैग लेकर मैं आया था क्रिकेट के मैच में, वहाँ किसी को ज़रूरत नहीं पड़ी लेकिन आखिर यहाँ काम आ गया·····"

प्रकाश ने धन्यवाद देते हुए कहा·····"थैंक यू डाक्टर·····"

"नो नो नो····मैं डाक्टर नहीं हूँ जनाब।"

अब तो प्रकाश और मीनाक्षी दोनों की उत्सुकता बढ़ गई। डाक्टर न होते हुये भी दवा का बाक्स रखना। इतनी सफाई से दवा लगा देना

और इतनी जानदार और दिलचस्प बातें करना उनके लिये अपेक्षित था : वृद्ध बोला--

"यह भारत है जनाब, डाक्टर अपनी सनद से नहीं जाना जाता बक्स से जाना जाता है और विद्वान आदमी बुद्धि से नहीं लाइब्रेरी से होता है....."

और वह अपने बिस्तर पर जा कर लेट गया। क्रिकेट मैच के ऊपर जो किताब वह पढ़ रहा था उसे पढ़ने लगा। बोला—

"गुगली बालिंग को क्रीकेट के मैच से निकाल बाहर करना चाहिये .. अजीब हाल है....यह भी कोई बात हुई गुगली बाल एक स्पीडोमय की तरह आउट करता चला जाता है....."

प्रकाश ने सोचा धन्यवाद और आभार के रूप में उसे कुछ बातें इस वृद्ध से करनी ही चाहिये। बोला—"क्रिकेट का खेल खुद भी तो स्पीडोमय है जनाब ...तीन दिन पाँच दिन तक लगातार मैच देखना क्या पैरा टाईफ़ाईड की बीमारी से कम है।"

"यह तो अपने मन पर है भई...वैसे तो यह ज़िन्दगी ही मुझे बीमारी लगती है....."

और तभी बग़ल में लगातार सोती आती मुई महिला उठी। ज़रा तेज़ लहजे में बोली—"आप लोगों को नींद न लगने की बीमारी है.... शायद"

वृद्ध महोदय यह नहीं जानते थे कि बिल्कुल उनके ही क़रीब कोई उन्हीं की उमर की वृद्ध महिला ने रेल-यात्रा में अखण्ड निद्रा का व्रत ले रखा है। वृद्ध महाशय ने एक बार उसकी ओर देखा और सिटपिटा कर सो गये। अपना कम्बल खींचा और किताब बन्द की और नींद में आगये जैसे वह सभ्रान्त महिला स्त्री न होकर एक स्लीपिंग डोज़ हो।

लेकिन मीनाक्षी नहीं सो सकी। एक मामूली सी घटना ही जैसे जीवन की अनेक संभावनाओं को प्रशस्त कर गई। चोरी चुपके उसकी नज़र ऊपर की बर्थ की ओर चली आती जहाँ एक मोटी सी किताब

लेकर प्रकाश लाल नीली पेन्सिलों से निशान लगाता जा रहा था। कभी कभी दोनों की निगाहें मिल जातीं। मीनाक्षी की आँखें लज्जित होकर वापस हो आतीं।

रात में जब भी नींद खुली मीनाक्षी ने प्रकाश को पढ़ते ही पाया। वही लाल नीली पेन्सिल। सिगरेट और किताब।

आखिर रात कटी। सुबह सुबह किसी स्टेशन पर गाड़ी रुकी। वृद्ध महोदय ने चाय मंगाई। प्रकाश और मीनाक्षी ने चाय मंगाई। चाय पी जाने लगी। प्रकाश ने वृद्ध को सम्बोधित करते हुये कहा—"डाक्टर साहेब आप तो रात ऐसे सोये कि फिर करवट ही नहीं बदली।"

"करवट बदलने की उम्र ही खत्म हो गई मियाँ....जब उम्र थी तो रात भर करवटें ही बदलते रहते थे....खैर लो चाय पीओ...."

अब तक अखण्ड निद्रा अभियान करने वाली वृद्धा भी जाग गई थी। उन्होंने एक बार सबको देखा फिर मीनाक्षी से बोली—

"कहाँ जा रही हैं आप....?"

"देहरादून...."

और फिर उन्होंने प्रकाश की ओर देखा। प्रकाश चाय खत्म कर चुका था और अपनी फ़ाईल उलट रहा था। फ़ाईल के ऊपर छपा था। मिस्टर प्रकाश, एडवोकेट, हाइकोर्ट, इलाहाबाद। वृद्धा ने उसे ग़ौर से देखा। तब तक वृद्ध महोदय ने पूछा—

"और आप कहाँ जा रही हैं...."

"मुझे भी देहरादून ही जाना है...." कुछ कुढ़कर वृद्धा ने कहा।

"मुझे भी देहरादून ही जाना है...." वृद्ध ने कहा।

"तो मैं और कहीं क्यों जाऊं, जहाँ दुनिया जा रही है वहीं मैं भी जाऊँगी...."

"लेकिन दुनिया दुनिया है साहबजादे।" फिर दाँत पीस कर वृद्ध बोला।

"कहीं इसी दुनिया के पीछे ज़िन्दगी न गंवा देना...."

मीनाक्षी ने व्यंजना जैसे समझ लिया। उसने तकिये के नीचे से मोटी लाजिक की किताब निकाली और पढ़ने लगी। बी० ए० तक उसने दर्शन शास्त्र पढ़ा था, कालेज में उसे भारत का प्राचीन इतिहास या लाजिक पढ़ाना था। उसने लाजिक ही पढ़ाने का निश्चय किया था। वह उसके फ़ेल्सीज़ का अध्याय खोलकर बैठ गई। प्रकाश फ़ाईल पर पढ़ पढ़ कर निशान लगाने लगा। वृद्ध ने अपने बक्स से टूथ ब्रश, तौलिया और साबुन निकाला और लैवोटरी खोल कर भीतर चला गया।

प्रकाश ने पढ़ते पढ़ते मीनाक्षी से पूछा —

"देहरादून में आपको कहाँ जाना है ?"

"सिविल लाईन्स मे····मेरी एक सहेली है उसी के यहाँ सामान रक्खूँगी और फिर गवर्नमेंट गर्ल्स कालेज जाऊँगी····

"गवर्मेंट गर्ल्स कालेज·····"

"जी हाँ····वहीं·····"

अब तक वृद्ध महोदय लैवोटेरी से निकल आये थे। बाहर प्रकाश और मीनाक्षी को बातें करते देख कर थोड़ा मुस्कराया। प्रकाश ने उसे देखा और दोनों मौन होकर अपनी किताबें पढ़ने लगे।

देहरादून में मीनक्षी ने गवर्नमेंट गर्ल्स स्कूल में अपने पद का भार ले लिया। उसने कालेज के स्थानापन्न प्रिन्सपल को अपने आने की सूचना दे दी थी इसलिए स्टेशन पर पहुँचते ही लगभग आठ दस अध्यापिकायें उसके स्वागत के लिये आगई थीं। वैसे वहाँ पहुँच कर उसने सोचा था कि दमयन्ती के मामा के घर जाकर टिकेगी लेकिन स्वागतर्थ आई हुई अध्यापिकाओं ने यह स्वीकार नहीं किया। स्थानापन्न अध्यक्ष उन्हें अपने साथ ले गई। हास्टेल का एक खाली कमरा मीनाक्षी को रहने के लिये दे दिया गया और उसके अपने प्रिन्सपल्स हाउस की सफाई शुरु कर दी गई। सभी अध्यापकिओं को मीनाक्षी की नियुक्ति पर बड़ा आश्चर्य हुआ

था क्योंकि अभी तक सरकार द्वारा सीधे प्रिन्सिपल के पद पर बहुत कम नियुक्तियाँ होती थीं। मीनाक्षी सब की आदर्श बन गई थी।

दूसरे दिन मीनाक्षी ने सोचा कि वह दमयन्ती के मामा के यहाँ जा कर उन लोगों को अपने आने की सूचना दे दे कि सहसा वही मैरून रंग की गाड़ी कालेज के कपाउण्ड के बाहर रुकी और एक व्यक्ति बिलकुल काला लिबास पहने गाऊन कालर लगाये उतरा। धीरे धीरे वह प्रिंसिपल के कमरे की ओर बढ़ने लगा। सामने दाई को एक चिट देकर प्रतीक्षा करने लगा। थोड़ी देर बाद दाई ने बुलाया। वह भीतर गया। मीनाक्षी देख कर सन्न रह गई बोली—"आप ?"

"जी हाँ मुझे प्रकाश कहते हैं····दमयन्ती दीदी का पत्र-आया था आप हमारे यहाँ ठहरने वाली थीं····"

"जी····"

"घर पर माता जी, भाभी वगैरह बड़ी चिन्ता में थीं कि आख़िर बात क्या है आप आईं भी या नहीं आयीं !"

"आपसे क्या कहा ?" कुछ शरारत भरी मुद्रा में मीनाक्षी ने उत्तर दिया और लाल पेन्सिल से मेज पर पड़े ब्लाटिंग पैड पर यों ही मन चाहा सा निशान लगाने लगी।

"मैं क्या कहता ?" सिर्फ इतनी ही सूचना दी कि गाड़ी सही सलामत आ गई है····आप आ गई हैं यह मैं नहीं जानता····"

"खैर अब कह दीजियेगा मैं आ गई हूँ और शाम को सेवा में हाज़िर हूँगी।"

प्रकाश ने धन्नवाद दिया और चिक उठा कर जाने लगा। बाहर निकल कर फिर अन्दर आया और बोला—"माफ़ कीजियेगा, आप की चोट कैसी है ?"

मीनाक्षी का ध्यान तुरन्त अपने हाथ के घाव पड़ा। जख्म अभी था लाल दवा वैसी ही अभी लगी थी। पपड़ी के नीचे एक मीठी सी कसक

शेष थी। बोली····ठीक है···· काँच से टुकड़े धंसे है····उनका ज़ख्म इतनी जल्दी कहाँ ठीक होता है।"

"आई एम सो सारी मीनाक्षी जी····उस घटना के बाद से मैं जब कभी भी सिगरेट जलाता हूँ अपनी बेवकूफी याद आ जाती है।"

"थैंक यू" मीनाक्षी ने एक गाढ़ी रेखा ब्लाटिंग पर खींचते हुए कहा।

प्रकाश कोई जवाब नहीं दे सका। कालेज की अन्य अध्यापिकायें कमरे के बाहर आकर खड़ी हो गईं। प्रकाश एक सकते के आलम में निकला और धीरे-धीरे अपनी कार की ओर जाने लगा।

कमरे में पहुँच कर मीनाक्षी से अध्यापिकाओं ने पूछा—"यह कौन थे?"

"मीनाक्षी ने अचकचाते हुए कहा—"मेरी एक सहेली के भाई मि० प्रकाश।" कुछ ने एक दूसरे को देखा कुछ ने मीनाक्षी के लहजे में छिपी लज्जा को नोट किया। कुछ सिर्फ़ मुस्करा कर रह गई और कुछ ने जैसे नोटिस ही नहीं ली। बात वही खत्म हो गई।

शाम को कालेज में छुट्टी होने के बाद मीनाक्षी ने एक तांगा बुलाने को चौकीदार को आदेश दिया और खुद जाने की तैयारी करने लगी। मीनाक्षी के मन में आज एक अजीब किस्म की गुदगुदी लगी। एक अजीब उल्लास था उसके मन में। तांगे पर बैठी तो होस्टल की सारी लड़कियाँ अपने-अपने कमरे से निकल आईं। इतना रूप शृंगार और साज देख कर सभी मोहित सी हो गईं। तांगा सिविल लाईन्स की ओर चल पड़ा।

शान्ति विला के सामने जैसे ही तांगा रुका वैसे ही पीछे से हार्न सुनाई दी। सामने देखा तो प्रकाश गाड़ी चलाता आ रहा था। मीनाक्षी ने मुँह मोड़ लिया। तांगा फाटक में प्रवेश करके पोर्टिको में रुका। पीछे-पीछे गाड़ी भी आ कर रुकी। प्रकाश ने गाड़ी से उतरते ही कहा —"मैं आप के कालेज गया था और आप यहाँ····

"आप ने यह तो कहा नहीं था कि·····"

"फिर भी मैं यह नहीं जानता था कि आप कालेज से छुट्टी पाते हैं फ़ौरन चल पड़ेंगी·····"

मीनाक्षी को प्रकाश का यह वाक्य जैसे चुभ गया। उसे लगा जैसे चोर स्वयम उसके मन में कहीं है। वह जानती है कि उसे इतनी जल्दी नहीं आना चाहिये था। कुछ आवश्यकता से अधिक अधीर वह हो उठी थी। नहीं होना चाहिये था। उसे लगा जैसे इस बात को स्वयं प्रकाश ने नोट कर लिया है। वह जहाँ की तहाँ खड़ी ही रह गई। प्रकाश ने आगे बढ़ कर कहा·····"आइये····आइये न"

पर्श से पैसे निकाल कर ताँगे वाले को देने के बाद मीनाक्षी कमरे में धीरे-धीरे चलने लगी। प्रकाश ने भीतर जाकर सूचित किया। प्रकाश की भाभी और छोटो बहन एक साथ निकल कर बाहर आई। मीनाक्षी सबसे अपरिचित थी। प्रकाश ने सब का यरिचय कराया। भाभी और मंजू मीनाक्षी का हाथ पकड़ कर भीतर ले गईं। ड्राइंग रूम देख कर मीनाक्षी दंग रह गई। कितना सुन्दर सजा सजाया कमरा था। उसे लगा इस धर के सभी लोग अच्छे हैं।

"हम लोग दिन भर इन्तज़ार करते रहे थे····कम से कम फ़ोन तो कर दिया होता·····"

"जी मुझे अभी यह भी नहीं मालूम कि आपके यहाँ फ़ोन है कि नहीं·····"

"क्यों क्या दमयन्ती ने नहीं बताया ?" प्रकाश ने पूछा।

"जनम से ही अधूरी बातों में विश्वास करने वाली बीबी जी क्या बताती। यह कहो कि उनको इतनी ही खबर है कि देहरादून में कोई मामा जी रहते हैं·····"

"तुम तो भाभी दीदी के बारे में हमेशा अजीब अजीब बातें करती हो····और बात ही हैं भूल गई होगी बिचारी·····"

"इसे भूलना नहीं कहते मंजू····इसे लापरवाही कहते हैं·····"

"लापरवाही ?"

बात दमयन्ती पर ही जाकर रुक गई थी। प्रकाश अपने कमरे में कपड़ा उतारते-उतारते सुन रहा था। वहीं से बोला—भाभी यह अच्छी खातिरदारी कर रही हैं आप....

अरे भाई कुछ नाश्ता का इन्तज़ाम होगा कि....

देवर की बात सुनकर भाभी की विनोदपूर्ण त्योरियाँ चढ़ गयी थीं। भीतर-भीतर उन्हें यह सारी बात अच्छी लग रही थी। वह प्रकाश जो विवाह और औरतों के नाम से चिढ़ते थे सहसा इतने लाल हो गये यह भाभी के लिये अजीब प्रसन्नता की बात थी। जाते-जाते बोली—"अरे गलती हुई बाबू, लाई....अभी चाय लाई" और चाय तयार करने चली गई। साथ ही मंजू भी उठकर चली गई....कमरे में अकेले मीनाक्षी और प्रकाश ही बचे। प्रकाश ने पूछा—अभी तो आपने देहरादून देखा न होगा।"

"जी नहीं।"

"वैसे बड़ा अच्छा शहर है।"

"किस अर्थ के विषय में।"

"अर्थ का विषय पूछती हैं आप ?"

"जी हाँ किस अर्थ में ?"

देहरादून एक शांत शहर है। जितनी गोद में काव्य कला और साहित्य यह सब विकसित होते हैं। कोई किसी को हानि पहुँचता ही नहीं....

"लेकिन आप ही जैसे लोग शांति भंग करते होंगे।" मीनाक्षी ने व्यंग्य में कहा।

"क्यों", प्रकाश ने पूछा।

मीनाक्षी उत्तर देने ही वाली थी कि सहसा भाभी जी खुद ट्रे में थोड़ी सी चाय की प्याली और तश्तरियों को लेकर आई। पीछे से मंजू मिठाई और नमकीन की प्लेटस लेकर आई। मेज़ पर खाना लगा दिया और

भाभी चाय छानने लगी। बीच-बीच में कुछ वहाँ यहाँ की बातें भी हुई। बड़ी देर तक मंजू और भाभी मीनाक्षी से बातें करती रहीं। उनके दिमाग़ में जाने कहाँ-कहाँ की पूछ-ताछ की जिज्ञासा जाग उठी थी। मंजू को यह जानकर प्रसन्नता हुई की मीनाक्षी ही उसे लाज़िक पढ़ायेगी तो उसकी प्रसन्नता की कोई सीमा नहीं रही। वह अत्यन्त घुल मिल कर मीनाक्षी से बातें करने लगी। मीनाक्षी भी दो ही घन्टे में इतना अधिक हिल मिल गई कि भाभी और मंजू के प्रति उसकी सहज स्नेह भावना अकस्मात ही उमड़ आई।

रात हो गई। प्रकाश ने मीनाक्षी को पहुंचाने के लिए कार निकाली। वह लेकर कालेज की ओर चला। मीनाक्षी रास्ते में एक दम मौन ही बैठी रही। आधे रास्ते पहुँच कर प्रकाश ने कहा—"आप बोलना नहीं चाहती, शायद कम...."

"बोलती हैं....मेरा मतलब...."

"जी" एक छोटा सा उत्तर देकर मीनाक्षी मौन हो गई।

कार कालेज के कम्पाऊन्ड तक पहुँच गयी थी। मीनाक्षी बाहर ही उतर गयी। वह कमरे में आई तो लड़कियाँ फिर कमरे से बाहर निकल पड़ीं। एक टक वह उसे देखती ही रही। मीनाक्षी सीधे अपने कमरे में चली गई।

एक इतवार की शाम

•

महीने भर बाद प्रकाश इलाहाबाद से देहरादून आया था।

इतवार की शाम को मीनाक्षी शान्ति बिला भाभी से मिलने गई। घर में कोई नहीं था। केवल प्रकाश बैठा किसी मोकदमें की तैयारी कर रहा था। मीनाक्षी को देखकर उसने किताब बन्द कर दिया। उसने पूछा—"कैसा लगा देहरादून ?"

"अच्छा है...."

"अगर तुम्हें यहीं रहना पड़े तो····"

"तो क्या, मैं तो रह ही रही हूँ····"

"मेरा मतलब····इस घर में रहना पड़े तो····"

मीनाक्षी धक से हो गई। इतनी जल्दी प्रकाश ने इस बात को कह डाला कि मीनाक्षी को समझ में नहीं आया कि क्या जवाब दे। वह चुप लगा गई।

"तो यह घर तुम्हें नापसन्द है····"

"जी ऽऽ····"

"मेरा मतलब इस घर के लोग दोस्त हो सकते हैं अपने नहीं····"

"दोस्त और अपने में क्या अन्तर है?"

"अन्तर····? होता है····"

कह कर प्रकाश भीतर चला गया। नौकर से चाय लाने का आदेश देकर वापस आया तो देखा मीनाक्षी चुपचाप उदास सी बैठी थी। प्रकाश से बोली—

"भाभी नहीं है····"

"नहीं····"

"और मंजु?"

"वह भी नहीं····एक जगह शादी में गई है।"

"तो चलूँ····" कहकर मीनाक्षी उठ खड़ी हुई।

"लेकिन चाय आ रही है।" प्रकाश ने कहा।

"दोस्त की चाय नहीं पीनी चाहिये····"

"मैं दोस्त तो नहीं हूँ····"

"आप क्या हैं?" मीनाक्षी ने पूछा।

प्रकाश इस उत्तर की आशा नहीं कर रहा था। वह कुछ सोचने लगा। मीनाक्षी कमरे के बाहर निकल आई। प्रकाश देखता रहा। मीनाक्षी घर के बाहर जा रही थी। प्रकाश कमरे से निकला। गराज से उसने गाड़ीनिकाली और एकदम मीनाक्षी के पास खड़ी करके उसने

फाटक खोल दिया। मीनाक्षी हंस पड़ी। मोटर में बैठकर दोनों किसी दूसरी दिशा की ओर चले गये।

सिनेमा हाल

क्रिस्यमस की छुट्टियाँ थीं।

मीनाक्षी इलाहाबाद नहीं गई। माँ को सूचित करके वह वहीं रह गई।

छुट्टियों में इलाहाबाद से प्रकाश देहरादून आ गया था।

सर्दियों के दिन थे। मौसम भी गुदगुदा सा था और मीनाक्षी भी साल भर तक देहरादून में रह लेने के बाद कुछ अधिक उत्फुल्ल और प्रसन्न थी। उसके स्वास्थ में भी परिवर्तन आ गया था। वह कुछ अधिक सजीव और सचेत लगती थी। प्रकाश अबकी बार जब आया तो मीनाक्षी को पहचान ही नहीं पाया। वह जब कमरे में बैठी बातें कर रही थी तो प्रकाश किसी और को समझ कर कमरे में गया नहीं। जब वह चली गई तो भाभी ने प्रकाश का बड़ा मज़ाक उड़ाया। प्रकाश चुप रह गया।

दूसरे दिन शाम को एब्सेन्ट माईन्डेड प्रोफेसर देखने मीनाक्षी अकेले गई थी। हाल में प्रवेश करते ही प्रकाश मिल गया। दोनों पास पास बैठे। फ़िल्म शुरू होने के पहले ही दोनों चुपचाप बैठे थे। प्रकाश ने कहा—

"क्या तुमने चुप ही रहने की कसम खाई है?"

"हूँ, चुप ही रहना चाहिये...."

"लेकिन कब तक....?"

"जब तक निभ सके...."

"क्यों ...?"

"दम घुटने का भी एक मज़ा होता है न...."

"लेकिन अगर यह मौत बन जाय तो....."

"अभी और आगे सोचा नहीं है....."

और बस पर्दे पर चित्र शुरू हो गया। दोनों में से किसी की तबियत नहीं लग रही थी। दोनों ही को उस एब्सेन्ट माईन्डेड प्रोफेसर में दिलचस्पी नहीं थी। इन्टरवेल में दोनों अपनी सीट ही पर बैठे रहे। सीट ही पर चाय आ गई। दोनों पीने लगे। एक दम गुमसुम। चित्र समाप्त हुआ। प्रकाश के कार पर ही मीनाक्षी भी बैठ गई। शहर के बाहर एक चर्च की लान में दोनों जा बैठे। मीनाक्षी अब भी ख़ामोश थी। प्रकाश ही कह रहा था—

"जाने कैसा लगता है ? कुछ अजीब सा हो रहा है।"

"क्यों ?" एक घास को दाँत के नीचे कुतरते हुये मीनाक्षी ने कहा।

"यह तो मालूम नहीं....शायद हर खूबसूरत चीज़ एक दर्द पैदा करती है....कर ही देती है....."

"खूबसूरत चीज़ बुरी ही होती है ?"

"नतीजे बुरे होते हैं....."

"कौन सा नतीजा बुरा कहलाता है....?"

प्रकाश ने कहते कहते मीनाक्षी के दाँत के नीचे दबे तिनके को एक झटका दिया। वह टूट गया। मीनाक्षी ने कुछ आँखें तरेरते हुए कहा—"तुम लोगों को तोड़ना ही आता है।"

"तोड़ना ?" मीनाक्षी चुप रही। नर्गिस का एक फूल तोड़कर प्रकाश ने जूड़े में लगा दिया। मीनाक्षी ने विरोध नहीं किया। घास के तिनके से प्रकाश ने माथे पर के बिखरे बालों को तरतीब देना चाहा। घास का तिनका शरीर से लगते ही एक मेज़राब की तरह सारे शरीर को झनझना गया। मीनाक्षी बोली—"क्या फ़ायदा ?"

"क्यों ?" प्रकाश ने कहा।

"इसलिये कि ये सब घटनाएँ केवल एक गहरा दाग़ दे जाती हैं.... शायद इतना गहरा कि बस....."

"सुनो......."

"ऊं......."

"चलो घर चलें...."

और हर ज्योति स्तम्भ को पीछे छोड़ती हुई गाड़ी आगे बढ़ती जाती थी।

ओक विभू



नये साल का नया दिन।

प्रकाश को आज ही रात इलाहाबाद वापस जाना था। शाम को दोनों ओक विभू पर मिले। प्रकाश बोला—"माँ से क्या कह दूँगा ?"

"जो जी में आये...."

"सच मीनाक्षी ?" उत्सुक स्वरों में प्रकाश ने पूछा।

"हूँ कह देना...." मीनाक्षी ने ठण्डे दिल से कहा।

"तो तो मीना...."

मीनाक्षी हँस पड़ी। बोली— "बस"

"क्यों ?" प्रकाश ने पूछा।

"तुम्हारी खुशी भी उतनी ही सरल है जितनी नाराजी।"

"नाराज तो मैं कभी होता नहीं...."

"फिर भी"

प्रकाश चुप हो गया। उसने देखा मीनाक्षी एक दम स्थिर थी। उसके भीतर किसी भी प्रकार की भावना जैसे उद्वेलित ही नहीं हो रही थी। प्रकाश को लगा जैसे मीनाक्षी प्रकाश का समर्थन सदैव इसी तरह करती है। लगता है उसके अन्तरमन में कोई बड़ा गंभीर मर्म है, कोई इतनी गहरी चोट है या वेदना है जिसे वह बार-बार अपने अन्तर से निकाल बाहर करना चाहती है लेकिन कर नहीं पाती। वह उदास थी। मौन थी। लेकिन आँखों में जैसे कुछ था जो खुली हुई तो थीं लेकिन

स्वप्नरत थीं। स्वप्न जिसमें जीवन महज एक तनाव बनकर रह गया था। प्रकाश ने कहा……

"तुम इतनी उदास क्यों हो ?"

"नहीं तो…" संभलते हुये मीनाक्षी ने कहा ?

"नहीं कोई बात जरूर है।" प्रकाश ने दुहराया।

"कल तुम जो जा रहे हो…' मीनाक्षी ने कहा।

"न जाऊँ ?"…प्रकाश ने पूछा।

मीनाक्षी ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। वह फिर चुप हो गई। उदासी उसकी और भी गाढ़ी हो गई। उसकी बरौनियाँ कुछ गीली हो गईं। पार्क में पड़ी हुई बेंच पर वह अधेलटी सी बाँह ऊपर किये पड़ी रही। थोड़ी देर बाद बोली—"मैं तुम्हें अच्छी लगती हूँ ?"

"बहुत, बहुत…" प्रकाश ने कहा।

"मुझमें क्या अच्छाई है ?" मीनाक्षी ने पूछा।

"तुम सुन्दर हो…"

"और…" मीनाक्षी ने पूछा

"और…और…और…"

मीनाक्षी मौन से मुखर हो गई। वह एकदम अल्हड़ हँसी हँसने लगी, बोली,

"तुम लोग अपनी पसन्द भी नहीं जानते ?"

"तुम जानती हो क्या ?"

"हूँ…"

"क्या ?" प्रकाश ने पूछा।

"मुझे तुम्हारे हाथ अच्छे लगते हैं…तुमने जब कभी भी इन उँगलियों से मुझे स्पर्श किया है…मुझे अच्छा लगा है…अगर मैं कहूँ, मुझे तुम्हारे हाथ ही अच्छे लगते हैं तो…"

"तो क्या ?" कहते कहते उसने अपने हाथों से प्रकाश का हाथ पकड़ कर अपने कपोलों से लगा लिया। प्रकाश का माथा स्नेह से

उसके वक्षस्थल पर झुक गया। दो सिल्वर ओक के बीच आकर जैसे चाँद फँस गया। दोनों जब उठे तो लगा जैसे जिस्म टूट रहा है।

आर्ट एक्जिबीशन



हाईकोर्ट तीन दिनों के लिए बन्द हुआ था। प्रकाश फिर देहरादून ही आ गया।

मीनाक्षी ने पहले ही से वकील आर्ट हाऊस में होने वाली चित्रकला प्रदर्शनी का प्रोग्राम बना रक्खा था। प्रकाश के साथ वह वहीं देखने गई। प्रवेश करते ही वह ठिठक गई। सामने बी० के० खड़ा था। साथ में एक और महिला थी। जिसे वह जानती नहीं थी। क्षण भर में ही मीनाक्षी पसीने से तर हो गई थी। बी० के० ने देखा मीनाक्षी किसी के साथ है पर वह कुछ नहीं बोला। मीनाक्षी ने सोचा बी०के० उसका अभिवादन करेगा लेकिन मीनाक्षी के प्रवेश करते ही वह हाल के बाहर चला गया। एक बार देखने के बाद फिर उसने उलट कर देखा ही नहीं। प्रकाश को लगा जैसे मीनाक्षी फिर किन्हीं कारणों से आवश्यकता से अधिक उदास हो गई है। उसने कारण जानने की कोई आवश्यकता नहीं अनुभव की। वह चित्र देखने में व्यस्त हो गया। पहाड़ी चित्रकार नौटियाल के चित्र थे। नितान्त आधुनिक शैली में। प्रकाश ने कहा— "देखती हो यह है कैम्यूफ्लाग" मीनाक्षी ने झाँक कर देखा। नगा रंगों का यह एकाकीपन नितान्त उदास है। आगे बढ़ते हुये प्रकाश ने कहा— ,'वियाण्ड दे हराईजन" मीनाक्षी ने उसे भी देखा। महानील के उस अनन्त वैभव में जैसे उसकी श्याम पुतलियाँ खो गई। उसे चक्कर सा आ गया। वह एकदम गिरने गिरने को हो गई। प्रकाश ने हाथ लगा दिया और सहारा देकर बाहर मोटर तक लाया। मोटर में बिठा कर डाक्टर के यहाँ दौड़ा दौड़ा गया। डाक्टर की समझ में भी बीमारी नहीं आई।

उसने पूछा—"इज शी आन फ़ैमिली वे" । प्रकाश जैसे सन्न रह गया । बोला "जी ?" डाक्टर समझ गया । उसने एक कोरेमीन की सुई दी और कुछ दवायें । प्रकाश उन्हें लेकर कालेज के प्रिन्सिपल बंगलों तक ले गया । सहारा देकर उसे बेड रूम तक ले गया । कालेज की और अध्यापिकायें आ गईं । सब ने पूछना शुरू किया लेकिन प्रकाश की समझ में नहीं आता था कि क्या जवाब दे । दो तीन खूराक दवा देने के बाद रात बारह बजे तक वह बैठा रहा । घर पर भाभी और मंजू को भी फोन से बुला लिया लेकिन मीनाक्षी एक दम पथराई नजरों से सब को देखती । जैसे उसके मुँह से आवाज ही नहीं निकलती थी ।

थोड़ी देर बाद प्रकाश को ध्यान आया । वह आदमी और कोई नहीं बी० के० ही था । बी० के० जिसने उससे कार ख़रीदी थी लेकिन उसको देख कर मीनाक्षी की यह ,हालत क्यों हुई उसकी समझ में नहीं आया । उसने सोचा होटेल्स में जाकर पता लगाये, कहीं न कहीं तो वह ठहरा ही होगा लेकिन उसने इसको भी बेकार समझा । भाभी ने कहा—"कोई चोट लगी है शायद ?" प्रकाश ने कोई जबाब नहीं दिया वह चुप चाप सुनता ही रहा । भाभी ने कहा—"तुमने कोई ऐसी वैसी बात कहीं होगी ।" प्रकाश ने भाभी के इस आरोप का भी जबाब नहीं दिया । किसी ने कहा— "कालेज का काम इतना ज्यादा करती हैं कि स्वास्थ का ध्यान ही नहीं रखतीं" प्रकाश सब की बातें सुनता जा रहा था । सभी मौन मुद्रा में बैठे हुये थे । बारी बारी में जबाब देते जाते थे । धीरे धीरे सब लोग चले गये । कमरे में केवल प्रकाश और मीनाक्षी रह गये । मीनाक्षी ने कहा—"पानी"

प्रकाश ने गिलास से निकाल कर पानी पिला दिया । मीनाक्षी पानी पी कर लेटी तो एक सूखी हँसी हँस कर मौन हो गई । प्रकाश ने पूछा "कैसी तबीयत है ?" मीनाक्षी न इशारे से कहा—"दम घुट रहा है" प्रकाश ने पूछा "क्यों ?" मीनाक्षी जैसे कारण नहीं बताना चहती थी । हाथ से इशारा करके कहा—"पता नहीं ।" प्रकाश ने एक खूराक दवा

और दी। मीनाक्षी को जैसे नींद आने लगी। प्रकाश भी कब लम्बी आराम कुर्सी पर लेटे-लेटे सो गया उसे पता नहीं चला।

लैण्डसडाऊन : १

सुबह जब नींद खुली तो मीनक्षी सो रही थी।

जिन्दगी जब गहराईयों की ओर जाती है तो उसकी गति में धीमापन आ जाता है। किन्तु जिन्दगी के सन्धि स्थल पर जो खतरे होते हैं शायद उनसे बचना कठिन नहीं तो आसान भी नहीं होता।

गर्मियों की छुट्टियों में मीनाक्षी ने इलाहाबाद न जाकर मंसूरी में ही रहना पसन्द किया। हाईकोर्ट के बन्द होते ही प्रकाश भी लैण्डस डाऊन चला गया। थोड़े दिन मंसूरी रहने के बाद मीनाक्षी भी लैण्डस डाऊन आ गई। वहाँ करती क्या, दिन भर घूमने के सिवा और कोई चारा ही नहीं था। प्रकाश अपनी कार लेकर आया था। होटलों में खाना खाना और लैण्डस डाऊन और मंसूरी के बीच नित्य नये नये प्रोग्राम बनाना और रात तक लैण्डस डाऊन आकर रहना यही जीवन हो गया था। प्रकाश एक जिन्दगी चाहता था? एक ऐसी हरारत जिसमें गति हो। मानसिक स्तर पर, व्यवहारिक स्तर पर झंझोड़ देने की शक्ति हो। मीनाक्षी में भी इधर बड़ा परिवर्तन आ गया था। लगता था जैसे धीरे धीरे वह एक ऐसे आत्म समपर्ण की ओर बढ़ गई थी जहाँ उसके व्यक्तित्व का कोई अंश ऐसा था ही नहीं जिसमें प्रकाश की दृष्टि, उसकी रूचि, उसके विचारों के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा न हो। प्रकाश ने जिस सम्बन्ध को कल्पना के आधार पर बनाया था। प्रकाश भी अपनी ओर से मुक्त था। जीवन की गति बहुत ज्यादा तेज़ गति से चल रही थी। शायद इतनी तेज़ गति के झटकों को मीनाक्षी के लिए सहन करना कठिन था। लेकिन जीवन के कुछ क्षण ऐसे होवे हैं जब कि उसकी गति अपने हाथ से निकल चुकी होती है। शायद मीनाक्षी भी उन्हीं स्तरों से गुजर रही थी।

एक छोटा सा होटेल और भीनी भीनी सी शाम !

संगीत के मधुर स्वरों के बीच एक ललकती हुई प्यास ! एक मेज़ पर प्रकाश और मीनाक्षी बैठे थे । जीवन में इतना रस वैसे ही व्याप्त था । किसी नशे की जरूरत नहीं थी । प्रकाश नहीं माना । शाम का भीनापन और मौसम की गुदगुदी में डूबा प्रकाश उस रस को भोगना चाहता था जो अनन्त से उसकी नस नस में एक मधुर पीड़ा बन कर व्याप्त था । तबियत नहीं मानी । रम का एक पेग उसने मंगा ही लिया....एक....दो ....तीन, मीनाक्षी डर गई । बोली –"बस" और उसने हाथ रख दिया गिलास पर । ऊपर से प्रकाश ने भी हाथ रख दिया । मीनाक्षी को लगा प्रकाश का हाथ अधिक गर्म था । मीनाक्षी उठ पड़ी । प्रकाश भी उठ पड़ा । दोनों के हाथ बंधे रहे । काउण्टर पर प्रकाश ने बिल चुकाया और धीरे धीरे होटेल के बाहर आ गया । रेलिंग के पास दोनों खड़े हो गये । अन्धेरा कुछ और घना हो रहा था । कुहासा और गाढ़ा । मीनाक्षी को सर्दी लग रही थी । अपने पेस्टर का कालर उसने सीधा कर लिया । दोनों का हाथ बंधा ही रहा । प्रकाश ने उसके हाथ को चूम लिया । मीनाक्षी के जिस्म में जैसे एक बिजली सी दौड़ गयी । बेबस सी वह प्रकाश के कन्धों पर झुक गई । प्रकाश ने उसे सहारा दिया । दोनों कार तक आये । मीनाक्षी ने कहा—"मैं ड्राईव करूँगी ।" प्रकाश ने विरोध नहीं किया । कार धीमे धीमे लौण्सडाऊन की ओर चल पड़ी । रास्ते में प्रकाश मीनाक्षी के कन्धों पर हाथ रख कर सो गया । मीनाक्षी कार ड्राइव करके अपने होटल में गई । प्रकाश को जगाया । प्रकाश होश में नहीं था । मीनाक्षी ने किसी तरह उठाया और उसे उसके कमरे में डाल कर अपने कमरे में चली गई । उसे नींद आ रही थी लेकिन शायद वह सो नहीं सकती थी ! कमरे की खिड़की खोलकर वह बाहर देखने लगी । दूर सुदूर पहाड़ियों से जैसे कोई गूँज उठती थी और अन्तरिक्ष में डूब जाती । अपने पलंग को उसने और खिड़की से सटा लिया और दूर के विराम चिन्हों को देखते देखते सो गई ।

लैण्डसडाऊन : २

•

सुबह प्रकाश बहुत देर तक सोता रहा। उठा तो जैसे सारा बदन टूट रहा था। उसने जेब से सिग्रेट केस निकाला। सिग्रेट जलाया और दो उँगलियों के बीच केस नचाता हुआ ख़ामोश बैठ गया।

मीनाक्षी अभी तक नहीं आई थी। वह नहा धोकर तैयार भी हो गया था। उसने कमरे का दरवाजा खोल दिया। मीनाक्षी अब भी नहीं आई वह धीरे-धीरे उसके कमरे की ओर गया। मीनाक्षी खाली बैठी जाने क्या सोच रही थी। प्रकाश ने कहा—"मीनाक्षी" —

मीनाक्षी ने एक बार सिर ऊपर उठा कर देखा। प्रकाश बेहद थका हुआ था।

प्रकाश ने कहा—"तुम फिर एक दम मौन हो गई हो।"

"नहीं तो····लेकिन समझ में नहीं आता तुमसे क्या बात करूँ।"

"क्यों····?"

"तुम्हें एक नशा चाहिये····वह चाहे मैं हूँ या शराब हो या····"

"नहीं मीनाक्षी····नहीं···· मुझे केवल तुम्हारा तुम चाहिये····"

"मेरा मैं····अपना मैं"

मीनाक्षी एक सूखी सी हँसी हँसकर फिर मौन होगई। सोचने लगी– क्या है मेरा मैं····शायद वह है ही नहीं····है भी तो खंडित है····लाख जोड़ने की चेष्टा करती हूँ जुड़ता नहीं····लाख पाने की चेष्टा करती हूँ पाती नहीं····लाख····तभी प्रकाश ने कहा—"तुम फिर चुप हो गई"

"होना पड़ता है प्रकाश····मैं चुप होना नहीं चाहती····लेकिन शायद मैं इतना टूट चुकी हूँ कि अब जुड़ नहीं सकती····"

"आज तुम्हें स्पष्ट बताना होगा मीनाक्षी····मैं अधिक नहीं सहन कर सकता····बिल्कुल नहीं शायद····"

और मीनाक्षी अपनी चूड़ियों को देखने लगी। चूड़ियों को देखने

देखते उसकी दृष्टि अपने हाथ के उन जख्मों पर जा पड़ी जो ठीक आज से साल भर पहले उसे ट्रेन में लगे थे। कुछ गहरे और दाग़ जो आज भी ज़िन्दा थे लेकिन काले पड़ गये थे। उसकी आँखे छलछला आईं। उसने जैसे अपने से कहा नहीं....नहीं....नहीं....और आँखे बन्द कर ली। अपने माथे को कुर्सी के पुश्ते से टिका दिया। आंखे बन्द कर के वह छत के ऊपर देखने लगी। उसके उस मौन में जैसे कुछ था ही नहीं।

प्रकाश ने फिर कहा—"बी०के० कौन है तुम्हारा?...."

मीनाक्षी जैसे चौंक गई। बोली...."कोई एक"

"कोई एक कौन होता है....मैं जानता हूँ वह कोई मैं नहीं है...."

"हाँ तुम नहीं हो...."

"बी० के० है...."

मीनाक्षी फिर चुप हो गई। कहना चाहती थी "है, लेकिन वह हो नहीं सकता"—लेकिन कह नहीं पाती थी।

प्रकाश ने फिर पूछा—"बी० के० ही है" मीनाक्षी फिर भी नहीं बोली।

प्रकाश एक तेज झोंके में कमरे से निकल गया। थोड़ी देर बाद अपने ही कमरे से मीनाक्षी ने देखा प्रकाश बड़ी तेजी के साथ कार लिये जा रहा था। उसके जी में आया कि वह दौड़ कर प्रकाश से कहे—रुको रुको....लेकिन जैसे बात उसके हाथ से निकल गई थी। वह होटल के ऊपर खड़ी देख रही थी। कार ठीक उसके सामने ऊँचाई पर तेज गति से चली जा रही थी। थोड़ी देर बाद वह जाने किस सूनेपन में खो गई।

थोड़ी रात गये होटल का मैनेजर आया।

मीनाक्षी के कमरे की घण्टी बजी। मीनाक्षी ने सोचा प्रकाश है उसने दरवाजा खोला। मैनेजर था। एक दम परीशान। बोला—"प्रकाश इज डेड।"

मीनाक्षी को जैसे तमाचा सा लगा। उसके मुँह से अनानक निकला—

"कहाँ ? कैसे ?"

"एक्सीडेंट''''मोटर एक्सीडेंट"

मीनाक्षी समझ गई। शराब के नशे में चूर प्रकाश तेज ड्राईव करता वापस आ रहा होगा। वह होती तो यह एक्सीडेंट न होता। वह खुद कार ड्राईव करके लाती। कल रात भी वही ड्राईव करके लाई थी। एक्सीडेंट तो कल ही हो जाता। वह क्यों नहीं साथ गई''''क्यों नहीं उसने प्रकाश को रोका''''

"फिर आप तैयार है''''"

मीनाक्षी ने चेस्टर पहना। पिक अप पर बैठी और अस्पताल की ओर जाने लगी। मैनेजर बीच बीच में बोलता जाता था—"मिसेज प्रकाश''''"

और जितनी बार वह मिसेज़ प्रकाश कहता था उतनी बार मीनाक्षी को क्रोध आ जाता था लेकिन वह कुछ विरोध नहीं कर पा रही थी। थोड़ी ही देर में वह अस्पताल के सामने थी। जाने क्यों भीतर जाते समय मीनाक्षी के पैर काँप रहे थे। भीतर गई तो देखा चादर से ढँकी हुई प्रकाश की लाश पड़ी थी। वह एक दम से चीख पड़ी। मैनेजर ने उसे संभाला।

डाक्टर ने पूछा—"इनके घर का पता"

पहले तो उसे इतनी तीव्र सिसकियाँ आई कि उसके मुँह से आवाज़ ही नहीं निकली फिर बोली—"शान्ति विला, सिविल लाइन्स, देहरादून' और डाक्टर ने तार लिख कर दिया। बोला लाश पोस्ट मार्टम के बाद मिलेगी।" मीनाक्षी एक दम शून्य दृष्टि से डाक्टर को देखने लगी। डाक्टर उठ कर जाने लगा। मीनाक्षी ने कहा—"मैं देख सकती हूँ।"

डाक्टर ने मुड़ कर देखा। बोला—"यू विल नाट फेस इट"—और लौट पड़ा। जिस कमरे में लाश रक्खी थी वहाँ गया और उसने अचानक

चादर हटा दिया। मीनाक्षी चीख पड़ी। डाक्टर बिल्कुल तटस्थ भाव से लाश को कुछ देर खोले रहा। फिर उसने धीरे-धीरे बन्द कर दिया। मैनेजर ने मीनाक्षी को सहारा दिया। वह पिक अप पर आकर बैठ गई। गाड़ी फिर लैण्डस डाउन की ओर चल पड़ी। कल रात वह इसी समय प्रकाश के साथ लौटी थी। सामने होटेल भी मिला जहाँ दोनों रात भर रहे थे ....वह मोड़ भी मिले जहाँ गाड़ी को मोड़ते मोड़ते मीनाक्षी को लगा था कि गाड़ी टकरा जायेगी लेकिन उसकी कार नही टकरायेगी। वह सुरक्षित होटल पहुँच गयी। उसने अपना कमरा खोला और काँपती हुई प्रवेश करने लगी। जाने कितना भय उसके अन्तर में समा गया था। उसने रोश्नी जलाई। एक छिपकली वहीं कोने से दौड़ कर छत के दूसरे कोने पर जा बैठी। उसे लगा जैसे किसी तेज ब्लेड से किसी ने उसके चमड़े पर खरोश पैदा कर दिया वह उसी हालत में कुर्सी पर बैठ गई। अपना सर उसने अपने हाथ में ले लिया। फूट-फूट कर रोने लगी। जाने कितने स्रोत थे उस मार्मिक वेदना के जो एक साथ फूट पड़े। उसकी समझ में नहीं आता था कि वह कल क्या कहेगी भाभी से, मंजू से, प्रकाश के बड़े भाई से....

और शायद हर घड़ी उसके सामने यही प्रश्न चिन्ह प्रस्तुत होते रहे....क्या कहेगी वह !

अपनी ही लिखी हुई कृति को मि० अनुज ने दुबारा पढ़ा था। कहीं कहीं उन्होंने संशोधन किये थे लेकिन तबियत भरी नहीं थी। यह स्पष्ट हो पाया था कि वह गाड़ी जिसे प्रकाश चलाया करता था सहसा कैसे टकरा गई और फिर कैसे मीनाक्षी के हाथ आ गई। हो सकता है प्रकाश ने ही मीनाक्षी को प्रयोग करने के लिए दे दी हो क्योंकि जिस दिन से प्रकाश ने गाड़ी खरीदी थी उस दिन से वह देहरादून चली आई थी। उसने अपने लिए गाड़ी खरीदी भी नहीं थी। अपने भाई दादा के लिये खरीदी थी लेकिन जाने कैसे वह मैरून गाडी और उसका इतिहास प्रकाश की भाभी को मालूम हो गया था। उन्होंने भाई दादा को गाड़ी

पर चढ़ने ही नहीं दिया था। प्रकाश जितने दिन देहरादून में होता उस गाड़ी को चलाता, नहीं होता तो गाड़ी गैरज में ही बन्द रहती। प्रकाश भी जब गाड़ी चलाता तो एक बार भाभी उसे जरूर रोकती लेकिन वह मानता ही नहीं। पिछली बार जब वह आया था तो उसकी भाभी उस पर बहुत बिगड़ गयी थी। प्रकाश ने ऊब कर गाड़ी मीनाक्षी को दे दिया था। कह दिया था कि उसने मीनाक्षी के हाथ बेच दी है। उसकी भाभी जानती थी कि मीनाक्षी क्या गाड़ी खरीदेगी लेकिन वह करती भी क्या उन्हें तो उस गाड़ी से पिण्ड छुड़ाना था, लेकिन वह छूट न सका। उसी से उसकी मृत्यु हुई। अब तो भाभी के चलते वह गाड़ी कम्पाऊण्ड में एक मिनट तक भी खड़ी नहीं रह सकती। मजबूरन प्रकाश के बाद भी मीनाक्षी को वह गाड़ी चलानी पड़ती। शहर में लोग तरह तरह की बातें करते, व्यंग्य बोलते। बहुत लोग तो उस गाड़ी को खूनी गाड़ी कहते लेकिन मीनाक्षी सब सह लेती। जैसे जैसे प्रकाश की स्मृति पुरानी होती गई वैसे वैसे लोगों का कहना तो कम जरूर हो गया लेकिन उस कार की परम्परा से लोग चौंक जाते थे।

मि० अनुज अभी इन्ही विचारों में डूबे हुए थे कि सहसा मि० भल्ला आकर सामने बैठ गये। मि० अनुज ने देखा वह आज कुछ चिंतित थे। चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। पूछने पर उन्होंने बताया कि राजा साहब ने बी० के० के विषय में कुछ और पता लगाया है। इस सिलसिले में उनसे पास दो पत्र हैं। एक 'परभू नाई' के नाम दूसरा 'दमयन्ती' के नाम। यह दोनों पत्र उसे मिले हैं और उनके पढ़ने से यह पता चलता है कि बी० के० चाहे जो भी हो अन्ततः एक भला नितान्त भावुक और करुणा से द्रवित व्यक्ति था। उसे जो स्नेह कहीं भी नहीं मिला वह सदैव प्रत्येक पीड़ित एवम दुखित व्यक्ति को देने में विश्वास करता था।

"उसे कौन सा स्नेह नहीं मिला मि० भल्ला...."

"वही प्रेम का, सहानुभूति का...."

"कौन कहता है....."

"स्वयं उसी का पत्र यह बतलाता है....."

"नहीं, यह बात बिल्कुल गलत है....बी० के० जैसा भाग्यवान व्यक्ति और कोई नहीं है। उसे हर जगह से इतना स्नेह मिला है कि वह उसकी सार्थकता को अनुभव ही नहीं कर सका....."

मि० भल्ला चुप हो गये। थोड़ी देर तक तो वह कुछ सोचते रहे फिर बोले.. "कभी-कभी कोई एक अभाव का क्षण ऐसा होता है कि वह समूचे जीवन पर छा जाता है...शायद बी० के० की भी मानसिक दशा कुछ ऐसी ही रही हो।"

अब मि० अनुज अधिक देर तक अपने को नहीं रोक पाये। कुछ व्यंग्य मिश्रित भाव से बोले—"अरे क्या धरा है इन बातों में, प्रेम का एक क्षण अभाव के हजार क्षणों को मिटा सकता है।"

और उन्होंने मीनाक्षी पर लिखी कहानी उनकी ओर बढ़ा दी। मि० भल्ला ने उसे उलट-पलट कर देखा और बोले—"यह क्या है.. "

"मैरुन रंग की फियेट ११०० और मीनाक्षी की कहानी।"

"अपने लिखी है...."

"जी हाँ..."

मि० भल्ला उसे उलटने लगे फिर उन्होंने अपनी फाईल खोली और राजा साहब से पास मिले दोनों पत्रों के बीच उस अंश को रख दिया। मि० अनुज ने कहा—

"और अगली किश्त कब मिलेगी?"

"कल—बहस करने के बाद...."

"आज क्यों नहीं?" मि० अनुज ने पूछा।

"आज अभी मुझे इसमें बहुत कुछ पढ़ना है।"

मि० अनुज चुप लगा गये। अब तक मि० सैम्युअल और प्रो० राज भी आ गये थे। मि० सैम्युअल अपनी फ्रेंचकट दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए बोले—

"इज देयर एनी थिंग न्यू मि० अनुज ?"

"नया क्या हो सकता है।"

"प्रेम की फ़िलास्फ़ी का नया दौर..."

मि० अनुज चिढ़ गये। बोले—

"मि० सैम्युअल प्रेम मजाक नहीं है...आप क्या जाने प्रेम क्या होता है...प्रेम साधना की चीज है..."

"ओह यू मीन साधना ? साधना एक्ट्रेस मि० अनुज !"

"नो नो ..मि० सैम्युअल" राज ने कहा—"प्रेम इज नाट ऐ जोक।"

"कौन कहता है बाबा कौन कहता है," पाईप को दाँतों के नीचे दबाते हुये मि० सैम्यूअल ने कहा—"प्रेम इज साधना" और वह चुप हो गये फिर कुछ सोच कर बोले...."एण्ड प्रेम ईज साधना, प्रेम इज साधना, साधना बोस दोनों बराबर हैं।"

अब तो मि० अनुज का चेहरा और भी लाल हो गया। कुछ तमक कर बोले—"यू से प्रेम इज साधना बोस—प्रेम में बी एनी थिंग बट यू...."

"हाँ हाँ साहब आप बिलकुल ठीक कह रहे हैं...प्रेम हमेशा औरत की आत्मा में बसता है..."

"और मर्द ?"

"मर्द तो कुंजी है जो औरत और प्रेम दोनों को ढोता है..."

मि० अनुज कुछ कहने जा रहे थे कि क़ाफी हाउस की बिजली गुम हो गई। लोग उठने लगे। मि० अनुज को भी मजबूरन उठना पड़ा।



काफ़ी हाउस

की आठवीं शाम



हम वहाँ हैं जहाँ से हमको भी
कुछ हमारी खबर नहीं आती

"जिस समाज ने मुझे कभी आदमी माना ही नहीं उस समाज द्वारा मुझ पर आरोपित दण्ड क्या अर्थ रखता है ? लेकिन नहीं जेल के भीतर रहो या बाहर, समाज के आभारी रहो या समाज द्वारा बहिष्कृत...समाज का अपना एक नियम है, एक अपनी समस्या है और एक अपना निदान भी। सुनते हैं, गाय का गोबर और गाय का पेशाब पिला कर पहले लोग शुद्ध किये जाते थे। आज की व्यवस्था भी वसे ही गोबर ग़लीज़ खिलाकर हमको तुमको शुद्ध करना चाहती है। मुझे दोनों से नफ़रत है क्योंकि आदमी में कहीं अपने लघुत्व के प्रति आस्था ही नहीं रह गई है।"

काफ़ी हाऊस की आठवीं शाम

●

अनुज शर्मा को मि० भल्ला ने जो पिछली शाम सूचना दी थी वह शायद मि० अनुज के भीतर उत्सुकता पैदा करने के लिए पर्याप्त थी। दिन भर तक कठिन साध्य परिश्रम करने के बाद जब वह तौलिया साबुन लेकर नहाने गये थे तभी उनके मन में असाधारण जिज्ञासायें जाग गई थीं। किसी तरह नहा धोकर वह धुले हुये कपड़े पहन काफ़ी हाऊस के लिये चलने लगे तो उनको अपने पर्स में पड़ा हुआ एक कार्ड मिला। सहसा वह चौक पड़े। उन्हें ध्यान आया कल स्टेट बैंक के काउण्टर पर एक महिला ने यह कार्ड देकर आज दोपहर में ही काफ़ी हाऊस में मिलने के लिये कहा था। देखने में वह सुन्दर थी लेकिन अत्यन्त परीशानी के कारण उसका रूप थका-थका सा लगता था। मि० अनुज को एक मार्मिक पीड़ा साल गई थी। स्त्रियों को समय देना या उनसे किसी बात का वादा करके पूरा न करना सबसे बड़ा गुनाह समझ वह थोड़े चिन्तित हो गये। कर भी क्या सकते थे। बहुत मुर्झाये से वह उठे और अपने ही से जैसे पूछ बैठे……"क्या वह वही मिसेज़ सैम्सन है" शायद एक जवाब उनके अन्तर्मन ने सहसा दिया और वह भुनभुनाते हुये साइकिल लेकर घर से निकल पड़े।

काफ़ी हाऊस पहुँचे तो बेयरा ने एक कार्ड दिया। कार्ड मिसेज़ सैम्सन का ही था लेकिन उस पर लिखा था—पी० टी० ओ०। उलट कर देखा तो पता चला कि मिसेज़ सैम्सन तो वहाँ ठीक बारह बजे आ गई

थी। राजा साहब ने लिखा था कि वह मिसेज़ सैम्सन को लेकर मि० सैम्युअल से मिलने क्यों गई है....मि० सैम्युअल तो सदैव कुंआरा रहने का निश्चय कर चुका है फिर यह राजा साहब जो उसके नाम से ही भागते हैं मिसेज़ सैम्सन को लेकर उसके यहाँ क्यों गये हैं? लेकिन जैसे इन रहस्यों को अकेले काफ़ी हाऊस की मेज़ पर बैठ कर हल करने में वह अपने को असमर्थ पा रहे थे।

सहसा मि० अनुज शर्मा का जी धक से हो गया। मेरून फ़ियेट ११०० आकर खड़ी हो गई थी। मीनाक्षी, ममता, भल्ला, खन्ना और मि० चतुर्वेदी उसमें से उतरे। आज मि० खन्ना के चेहरे पर एक हँसी थी और वह कुछ अधिक प्रसन्न दीख रहे थे। लेकिन मीनाक्षी को देख कर मि० अनुज को जैसे एक कचोट सी पहुँची। वह कुछ उदास हो गये।

यह लोग आकर उनकी मेज के चारो ओर बैठ गये। नियमानुसार बेयरा आया। आर्डर लेकर चला गया। मि० शर्मा वैसे ही बैठे रहे। मि० भल्ला ने कहा—

"आज आपने यह अच्छा प्वाईन्ट उठाया कि वह रह रह कर पागल हो जाया करता था। हो सकता है बी० के० ने उस पागलपन की हालत में वह आत्महत्या करके किसी तरह फाँसी घर में मरा हुआ पाया गया हो और फांसी वाले ने मटियानी को पैसा लेकर बचा लिया हो?"

"लेकिन मेरी बात मानता कौन है?" मि० खन्ना ने कहा।

"देखिये साहब कोई भी बात अपने से नहीं मानी जाती, वह प्रायः मनवा ली जाती है।" मि० भल्ला ने कहा।

"लेकिन कोई ऐसा भी तो हो जो हँस हँस कर अपनी बात मनवा ले....यहाँ तो गहन गंभीर मुद्रा से बैठे हुये जजों को देख कर कोई प्रेरणा ही नहीं मिलती....."

"तो क्या आप यह चाहते हैं कि औरतों को जज बनाया जाय" मि० राज ने कहा।

"जी हाँ·····"

"और वह फाँसी की सजायें दें·····"

"तो बुरा क्या है ?" मि० अनुज ने बात काटते हुये कहा—

"बुरा कुछ नहीं है·····मरने वालों की संख्या बढ़ जाएगी·····" राज ने कहा।

"न जाने कितने तो यहीं ही मौत के तलबगार हो जायँगे।" मि० भल्ला ने दोहराया।

"और·····" कहते कहते मि० अनुज रुक गये।

"और इन तलबगारों में उर्दू शायरों की संख्या सब से अधिक होगी·····"

मि० अनुज शर्मा चुप हो गये। उन्हें लगा उनकी बात यों ही खत्म हो गई। मन में थोड़ा कुढ़े। नारी स्वतंत्रता और उनकी समानता के प्रति राज और खन्ना की गन्दी धारणाओं से उनको बड़ा कष्ट पहुँचा। उन्हें लगा यह सब लोग गन्दे हैं।

अब तक मीनाक्षी और ममता जो पास ही किसी दुकान से कुछ खरीदने गई थीं वापस आ गईं। मेज़ पर वह भी बैठी हुई थी। बात वहीं खत्म हो गई। सब के सामने मि० खन्ना का प्रश्न था—"आखिर औरतों को जज क्यों नहीं बनाया जाता····?"

बात टालते हुये मीनाक्षी ने कहा—

"छोड़िये भी इनको अब बताइये कल क्या होगा ?"

"क्यों क्या कल कोई खास बात है ?"

"जी····कल आखिरी बहस है।"

"जज का क्या रुख है···"

"रुख तो बहुत सख्त है कोई उम्मीद नहीं है। इन सबको सजा हो जायगी·····"

"लेकिन यह तो अन्याय होगा।"

मि० अनुज शर्मा जैसे कहते कहते चीख पड़े। उन्हें लगा जैसे इस अन्याय का प्रतिकार होना ही चाहिये। मौन अपलक नेत्रों से वह मि० खन्ना को देखते रहे फिर ममता और मीनाक्षी की ओर देख कर कहा—

"आप लोगों ने क्या सोचा है....हमें कुछ करना चाहिये।"

"क्या किया जा सकता है मि० अनुज ?"

"कुछ भी....." मि० अनुज ने कहा।

"क्या हनुमान चालीसा पढ़ने से यह लोग बच सकते हैं ?"

"हो सकता है, इस ढंग से भी सोचा जा सकता है।"

मि० अनुज के इस उत्तर के बाद सब लोग जैसे ठहाका मार कर हँस पड़े। हनुमान चालीसा, इन्डियन सर्विसेज़ एक्ट और ताज़ीराते हिन्द का यह समन्वय सब को जैसे रुचिकर लगा। हँसी के बाद ही मि० अनुज ने अनुभव किया कि उनसे कोई बड़ी भारी गलती हो गई है तुरन्त अपने को सुधार कर बोले—

"मेरा मतलब मोर थिंग्स कैन वी नाट बर्ड प्रेयर

दैन दिस वर्ड कैन थिंक ऑफ

मीनाक्षी मि० अनुज को देखने लगी। घबराई हुई सी बोली—

"तब फिर बहस करने की क्या जरूरत....फिर हनुमान चालीसा ही पढ़ा जाय....."

सब लोग चुप हो गये लेकिन मि० अनुज जैसे सहज ही में भावुक हो उठे। उन्हें लगा जैसे जीवन के किन्हीं नितान्त आत्मसात किये हुए मूल्यों से वह च्युत हो रहे हैं। बोले—

"और उस कैदी का क्या होगा जिसको बचाने के लिए बी० के० ने अपनी जान तक दे डाली....."

"फांसी उसे भी होगी....."

"वह कैसे ?....." ममता ने पूछा

"वह इसलिये कि उसने धोखे से दूसरे को फांसी पर चढ़ा दिया।"

"इससे क्या हुआ ? जिस तारीख को न्यायधीश ने एक व्यक्ति को फाँसी का हुक्म दे दिया उसे दुबारा फाँसी का हुक्म नहीं दे सकता....." ममता ने कहा।

"लेकिन उसको फाँसी हुई कहाँ ?" मि० खन्ना ने कहा।

"लेकिन क्या एक आदमी को दो बार फाँसी की सज़ा दी जा सकती है ?" ममता ने कहा।

"यह प्रश्न विवेक का है तर्क का नहीं" मि० अनुज ने अपना मत प्रकट करते हुए कहा और चुपचाप कुछ सोचने लगे।

"लेकिन हमारे लिए कोई अन्तर नहीं पड़ता....अगर तर्क के माध्यम से हम मुजरिम को बचा सकते हैं तो तथाकथित विवेक को हम त्याग देंगे....."

लोग चुप हो गये। भल्ला के चेहरे पर उद्विगनता कुछ ज्यदा बढ़ गई। ममता का चेहरा कुछ आवश्यकता से ज्यादा गंभीर हो गया और मि० अनुज शर्मा चुपचाप कुछ सोचने लगे.... वातावरण में एक तनाव आ गया। लगा जैसे कोई घुटन है जो उनको पीसे जा रही है। मि० चतुर्वेदी जो इस आशंका से ही प्रताड़ित थे बोले....

"कोई न कोई रास्ता निकलना होगा....."

"कोई रास्ता नहीं है।" मि० खन्ना ने कहा।

ममता को लगा जैसे उसके पैर के नीचे की जमीन खिसक गयी। एकदम से विनती की याद आ गई। अपने उन महत्वपूर्ण क्षणों की याद ताजा हो गई जिन दिनों वह स्वयं मि० मटियानी के साथ रहती थी। वह जेसे बेचैन सी हो गई। मीनाक्षी को ममता की यह मुद्रा बहुत ही बुरी लगी। उसने कहा—

"इसमें परेशान होने की क्या बात है ?"

तुम नहीं समझती, बिल्कुल ही नहीं समझती..." ममता ने उत्तेजित होकर कहा।

ममता की इस उद्विगनता का प्रभाव सब पर पड़ा। मीनाक्षी की भी आकृति जेसे बिगड़ गई। उसे लगा—कौन है यह ? बी० के० इसके रूप इसके सौन्दर्य की इतनी प्रशंसा करता था....इसके लिए एक प्रकार से उसने अपना जोवन समाप्त कर दिया लेकिन यह है कि बी० के० के विषय में कभी एक शब्द भी नहीं बोलतो। सारो चिन्ता और उद्विग्नता उस मटियानी के लिए है जिसके जीवन का श्रेय पाप के सिवा कुछ है ही नहीं। कुछ व्यंग्य में बोली—

"बैठिये ममता जी....चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है....मि० मटियानी हर हालत में बच जायेंगे...."

ममता ने व्यंग्य का लहजा समझ लिया। उसे लगा जैसे मीनाक्षी का यह व्यंग्य काफी कटु और एकदम से छील देने वाला है। मि० खन्ना ने कहा—"यह कानून है। इसमें परीशान होने से कुछ नहीं होता....कानून की अपनी गति होती है....उसे कोई बदल नहीं सकता।"

"मनुष्य की नियति उसे भी बदल देती है...."

"मनुष्य बदल जाता है, उसकी नियति बदल जाती है लेकिन कानून अपने अन्धेपन के साथ चलता ही रहता है...."

मि० अनुज जैसे मि० खन्ना की इस बात को समझ ही नहीं पाये। थोड़ा सोच कर बोले—"आप भी कानून को अन्धा मानते हैं...."

"बिल्कुल ! घास में छिपे साँप की तरह जब तक पैर नहीं पड़ता कुछ नहीं होता लेकिन अचानक जब पैर पड़ जाता है तो अपना सारा विष उगल कर वह फिर अन्धा होकर बैठ जाता है...."

ममता कुछ और गम्भीर हो गई। उदास उदास हो वह सारे वातावरण को देखने लगी। मि० अनुज ही चिन्तित थे : ममता ने मि० अनुज की ओर देख कर कहा—"शायद स्थिति की ट्रेजडी को आप ही सबसे ज्यादा समझते हैं...."

"केवल समझने की चेष्टा करता हूँ समझ नहीं पाता, इसीलिये सारा का सारा व्यंग्य के समान लगता है...."

मि० खन्ना अब तक काफ़ी पी चुके थे। चलने लगे तो मि० अनुज ने कहा—"और वह फाईल"—मि० खन्ना ने आगे बढ़ा दिया। मीनाक्षी मौन देखती रही, बोली—"आपने मुझसे कभी नहीं माँगा—नहीं तो मैं आपको पूरी प्रतिलिपि दे देती। टुकड़े टुकड़े पढ़ने में क्या मजा आयेगा।"

"कोई बात नहीं, मैं पुराना टुकड़ा खरीदूँगा।" कहकर अनुज जी हँस पड़े। किसी की समझ में यह मज़ाक नहीं आ सका।

जेलखाने में बड़ा शोर था।

डिप्टी जेलर महोदय की बड़ी लड़की जिसने बड़ी कोशिश करके झबरी बिल्ली को लिया था सहसा पिछली रात घर छोड़ भाग गई थी। पहले तो डिप्टी जेलर ने इस सूचना को छिपा देना चाहा लेकिन वह छिप नहीं सकती थी। धीरे धीरे यह खबर सारे कैदियों को मालूम हो गई थी। झुम्मन खाँ उस रात सो नहीं सका था। बी० के० के पास आया और बोला—"सुना साहब डिप्टी जेलर की लड़की भाग गई।"

"तो क्या हुआ?" बी० के० ने कहा।

"होगा क्या, मेरी ही बात सही निकली....मैं कहता हूँ औरत जात से ज्यादा बेवफ़ा कोई नहीं होता....।"

"भागे तो दोनों ही हैं झुम्मन मियाँ मर्द और औरत फिर तुम औरत ही को बेवफा क्यों कहते हो?"

"मर्द का क्या? इसमत तो औरत की गई साहब।"

"और मर्द की इज्जत.... ?"

"मर्द तो बहता पानी है....लेकिन औरत—वह तो मन्दिर है....वह पाक है.... ।"

बी० के० ने देखा कि झुम्मन खाँ के पास कोई जबाब नहीं था। केवल भावुकता थी जिसके आधार पर वह स्त्री को तो पवित्र रखना चाहता था किन्तु पुरुष को उस प्रकार की अन्य भावनाओं से मुक्त रखना

चाहता था। स्त्री जैसे पुरुष के बावजूद भी पवित्र ही रहना जानती है और यह पवित्रता की धारणा भी क्या है? क्यों है? कैसे है? लेकिन झुम्मन खाँ यह सब कुछ नहीं जानता। उसे परम्परा से, इतिहास से, सब से यही बतला दिया गया है कि औरत को पवित्र रहना चाहिये झुम्मन खाँ उसी को रटता जा रहा है।

झुम्मन खाँ के जाने के बाद ही आज फिर दीवार लाँघ कर मटियानी आया। जाने कहाँ से उसने आज एक चोर बत्ती पा ली थी। घसिटता हुआ वह बी० के० के वार्ड में पहुँचा। बी० के० समझ गया कि कोई और नहीं हो सकता। मटियानी को देखकर उसने पूछा—"तुम फिर आगये?....."

"हाँ आ गया हूँ.....परसों मेरी फाँसी होगी—सोचा तुमसे अकेले में मिल लूँ..... ।"

"लेकिन तुम अपनी हवालात से निकले कैसे..... ?"

"बस निकल आया—यह जो चरखा छाप बीड़ी है न इसमें बड़े-बड़े करामात है.....गाँधी जी ने जब इसी चर्खे से देश स्वतंत्र करा दिया तो मैं तो हवालात से तुम तक ही आया हूँ....." और वह हंसने लगा।

"क्या चाहते हो?"

"कुछ नहीं.....यों ही चला आया....."

बी० के० ने देखा उसके चेहरे पर एक शिकन तक नहीं थी। कोई परीशानी नहीं थी। यह परिवर्तन उसमें सहसा कैसे और कहाँ से आ गया वह समझ नहीं पाया। इससे पहले मटियानी जब कभी भी उससे मिला था उसके चेहरे में स्पष्ट परीशानी दीख पड़ती थी। वह बार बार विनती की भी बात करता था। अपने विषय में भी बात करता था लेकिन आज वह एक दम गम्भीर, किसी भी विषय में कुछ भी बात नहीं करना चाहता था। बी० के० ने पूछा—

"अपने बच्चों के विषय में क्या तै किया..... ?"

"नहीं"

"यह गलत है।" मटियानी ने कहा।

"नहीं"...हमें जो कुछ पाप पुण्य लगता है उसमें बहुत कुछ ऐसा है जिसे दूसरों ने बार-बार कह कर हमारे मानसिक चेतना को प्रभावित कर रक्खा है..."

बी० के० के इस उत्तर से मटियानी जैसे चौंक उठा। उसके सामने वह दृश्य उभर आया जब सर्वप्रथम उसने विनती को, अंधी विनती को अपने बाहुपाश में जकड़ लिया था और उसकी पत्थर जैसी आँखों में शून्य विवशता, पथराई तरलता पिघल गई थी। पीछे से किसी ने जोर से एक वार किया। बी० के० ने चौंक कर पीछे देखा। विनती का शराबी पिता था। जाने कहाँ से उसमें इतना साहस आ गया था। मटियानी ने विनती का हाथ छोड़ दिया था। एक हाथ से उसने उस वृद्ध पिता को पकड़ लिया था और एक मामूली झटका देकर उसे अलग फेंक दिया था। दरवाज़े के देहलीज पर वह वृद्ध मुँह के बल गिर पड़ा था। मटियानी का पैर अकस्मात उस वृद्ध की गर्दन पर जा पड़ा। वृद्ध की आँखे उसकी आँखों जा मिली थीं, वह चुप हो गया था। पैर उसने खिसका लिया था। खूँटी पर टंगे कोट को उसने अपने कंधे पर डाल लिया था और चुपचाप कमरे के बाहर चला गया था। उसकी आँखे नीचे थीं। उसे लगता था जैसे कुछ है जो उसके भीतर भारी होता जा रहा है... भारी... और भारी...और भारी...उसके पैर एक एक मन के होते जा रहे थे। उसे लगता था जैसे वह एक कदम भी आगे नहीं उठा सकता, सामने एक टैक्की गुजरी। उसने उसे रोका और चला गया। उसने पीछे पलट कर देखा भी नहीं लेकिन उसका मन स्वयं भारी होता जाता था। उसे लगता था जैसे उसके मन पर एक भारी बोझ है।

"पाप का बोझ है जो अपने आप महसूस होता है।"

"अपने आप?"

"हाँ बिल्कुल अपने आप···"

"तो सुनो · जो अपने आप न अनुभव हो तो ?"

"तो नहीं कह सकता···"

बी० के० हँस पड़ा। उसे अपने जीवन की घटनायें याद हो आईं। लगा जो कुछ भी उसके मन में है, अन्तर में है वह भी तो उसका नहीं है। उसका बहुत बड़ा हिस्सा संस्कार का है, समाज का है, दूसरों का है। आदमी स्वयं पाप से परिचित नहीं होता। उसे पाप से परिचित कराया जाता है···"

"क्यों ?" उसने जैसे अपने आप ही से पूछा।

"यह सवाल झूठा है" मटियानी ने कहा।

"सच क्या है ?" बी० के० ने कहा।

"पाप जिसे हमारा मन बराबर जानता है, पहचानता है।"

"लेकिन मन सबका समान नहीं है।"

"तो क्या हुआ ?"

"तो क्या पाप की कोई एक परिभाषा नहीं है···"

"नहीं···" मटियानी ने कहा।

"लेकिन पाप की परिभाषा सामान्य ही होती है।"

मटियानी चुप हो गया।

उसने विनती के पिता की हत्या नहीं करनी चाही थी। कभी नहीं लेकिन उस वृद्ध में इतनी तीव्र प्रतिशोध की भावना थी कि वह धीरे-धीरे उसके और उसके जैसे लोगों की पूरी सूचना देने लग गया था। मटियानी को लगा वही नहीं उसका सारा गिरोह पकड़ा जायगा। पुलिस ने सारे घर को घेर लिया था। मटियानी का तीन दिन तक घर से निकलना कठिन हो गया था। चौथे दिन वह अपने को नहीं रोक पाया। वह एक काले बेट का छुरा लेकर वृद्ध के कमरे में घुस गया। वह शराब में बेहोश था। उसने छुरे को उसके पेट में भोंक दिया। एक

चीख हुई। बूढ़ा ऐंठ कर वहीं मर गया। चारों ओर जब शोर हुआ तो भी वह उसी कमरे में ही डटा रहा। पुलिस ने उसे भागने का मौक़ा दिया लेकिन वह भागा नहीं। पुलिस ने उसे गिरफ़्तार कर लिया। बहुत चाहा कि अपनी बचत का रास्ता निकाल ले लेकिन उसने बचने की कोशिश ही नहीं की। उसने कोई वकील भी नहीं किया। सरकार ने ही उसे वकील दिया। वहाँ भी उसने कोई जवाब नहीं दिया। शुरू से अन्त तक उसने केवल यही कहा—"मैंने कतल किया है" और फिर हर अदालत से उसे सिवा मौत के सज़ा के और कोई बात हुई ही नहीं। स्वयं अन्धी विनती ने भी उससे कहा, लेकिन किसी ने उसकी बात ही नहीं सुनी। खामोश हो गई तो बोला—

"मुझे आज तक जीने का मजा मिला ही नहीं विनती। मैं अब ऊब चुका हूँ। मुझे केवल मौत चाहिये मौत....." विनती रो पड़ी। अन्धी विनती, अपने अपहार्य जीवन की विवशता में जैसे उसे एक भी आशा की रेखा नहीं मिली। उसने कब मटियानी से प्रेम करना चाहा था। उसने कब इसकी इच्छा ही प्रकट की थी। सारा सम्बन्ध ही एक दुर्घटना से शुरू हुआ था। वह जानती थी कि आदमी को जीने के लिए कभी-कभी इन दुर्घटनाओं को स्वीकार करना ही पड़ता है। वह चुपचाप वापिस चली गई।

"फिर तुम्हें चिन्ता किस बात की है..."

"थी, लेकिन आज नहीं है..."

"तुम जिस हालत में हो क्या उससे संतोष मिलता है।"

मटियानी ने इसका कोई जवाब नहीं दिया। उसने सिर्फ एक शंका की दृष्टि से बी० के० की ओर देखा और चुपचाप सिर नीचा किये कमरे के बाहर चला गया। बी० के० भी उठ कर जाने लगा। बी० के० ने उसे रोकना चाहा लेकिन वह रुका नहीं।

उसके जाने के बाद बी० के० ने अपने सेल का दरवाजा बन्द कर दिया। उसके दिमाग़ में बार-बार यही आता कि यह मटियानी कैसा

आदमी है ? मरना भी चाहता है लेकिन जैसे इस मरने और जीने में कोई अन्तर ही नहीं दीखता । जैसे जीवन भी उसके लिये महत्वपूर्ण है । जैसे मरना भी उतना ही महत्वहीन है जितना जीना ।

यही सोचते सोचते वह जाने कब सो गया ।

सुबह भी बी० के० का मन भारी था ।

अभी इसी चिन्ता में डूबा था कि किसी ने सूचित किया कि बी० के० से मिलने कोई महिला आई है । यह सोच नहीं पाया कि वह कौन सी महिला है लेकिन जब बाहर आया तो देखा मीनाक्षी खड़ी थी । फाटक के बाहर उसकी चिरपरिचित मैरुन रंग की गाड़ी थी और उस गाड़ी पर लगे हुए दो गहरे निशान थे । बी० के० को लगा यह निशान ठीक उस समय के है जब चित्रकूट से लौटते समय उसकी गाड़ी सहसा एक पेड़ से टकरा गई थी । सामने मीनाक्षी को देखकर वह फिर जैसे अपनी भूली हुई दुनिया में पहुँच गया । बोला—"मीनाक्षी तुम !"

"हाँ मैं ही हूँ ।"

"तुम्हें कैसे पता चला कि मैं जेल में हूँ ।"

"ममता ने बताया···"

"ममता ?" सुनते ही बी० के० गंभीर हो गया था ।

"तुम्हें कहाँ मिली ?"

"कार्लटन होटल में ।"

"और कुछ कह रही थी ?"

"हाँ, बस यही कि तुम उससे सख्त नाराज़ हो ।"

"और वह···"

"वह तो बिल्कुल परीशान थी···कहती थी—बी० के० मुझे कभी भी नहीं समझ पायेगा···कभी भी नहीं···"

"तो क्या हुआ ?" बी० के० ने पूछा ।

"तो ग़लत समझोगे—शायद समझते भी हो ।"

बी० के० को लगा जैसे मीनाक्षी ममता की बातों का स्पष्टीकरण करना चाहती है। उसके जी में आया कि वह मीनाक्षी से कह दे कि वह जाय लेकिन फिर जाने क्या सोच कर सिर्फ मौन हो कर रह गया। मीनाक्षी को एक बार ऊपर से नीचे देख कर बोला—"तुम क्या चाहती हो ?"

" कुछ नहीं····सिर्फ़ इतना कि तुम उसे क्षमा कर दो····एक बार तुम ममता को उसकी परिस्थितियों में रख कर देखो····"

"उसकी परिस्थिति है अपवाद की, व्यंग्य की, कटुता की, कठोरता की और इन सबके बीच जीने वाली एक स्त्री की····"

"और तुम्हारी ?" बी० के० ने सहसा यह प्रश्न किया। मीनाक्षी इस प्रश्न की आशा नहीं करती थी क्योंकि वह जानती थी कि बी० के० ने शुरू से ही उसके साथ उपेक्षा का व्यवहार किया था। समस्त अनुभूतियों के बावजूद जाने क्यों उसे उपेक्षित ही रक्खा था। इसीलिए सहसा जब बी० के० ने पूछा तो उसका चेहरा तमतमा उठा। उसके जी में आया कि वह उसे कुछ कहे लेकिन वह फिर खमोश हो गई। उसने कहा,

"मेरी स्थिति छोड़ो···समझ लो···"

"समझने की जरूरत नहीं है मीनाक्षी···शायद तुम मेरी मजबूरी नहीं समझती····"

"मैं खूब समझती हूँ····लेकिन अब मेरे जीवन में रह क्या गया···"

"प्रकाश ····?" कुछ व्यंग्य मिश्रत स्वर में बी० के० ने कहा।

प्रकाश का नाम सुनते ही मीनाक्षी जैसे कतरा गई। उसे लगा जैसे उसके शरीर को कोई बिजली चकनाचूर करके आर-पार हो गई है। सारी वेदना जैसे उसे शराबोर कर गई। वह टूटी और सहमी सी सिर पकड़ कर वहीं बैठ गई। उसे लगा जैसे वह बेहोश हो जायेगी। बी० के० ने जैसे इसे जान लिया। बोला—

"मैं जानता हूँ मीनाक्षी तुम्हें कटु लगा होगा लेकिन क्या तुम यहाँ भी प्रकाश के साथ आई हो ?"

मीनाक्षी ने कोई उत्तर नहीं दिया। एकदम सूखी-सूखी आँखों से उसने बी० के० की ओर देखा। उसकी उदास आँखें कुछ कह रही थीं। बी० के० कुछ भी समझ नहीं पाया। तीव्रतम व्यंग्य से उसने कहा—

"मीनाक्षी ? क्या सच...."

अब तो मीनाक्षी को जैसे सहारा मिल गया। उसने कहा—"हाँ"

"क्यों...तुमने उसे भी अपना नहीं बनाया...?"

मीनाक्षी चुप थी। उत्तर भी वह क्या देती।

बी० के० चुपचाप बैठा रहा। मीनाक्षी के उदास चेहरे पर जो भय और आतंक गहरा बन कर छा गया था शायद उससे उसके रूप में एक नया आकर्षण आ गया था। बी० के० ने उसे बहुत दिनों बाद देखा भी था। उसे लगा जैसे मीनाक्षी में आवश्यकता से अधिक शक्ति और चेतना उसे दीख पड़ी। उसने एक बार फिर मीनाक्षी की ओर देखा। वह खामोश बैठी थी। सामने का आँचल सरक गया था, बालों के जूड़े में लापरवाही से लगा हुआ बेले का एक फूल भी वृत्ति के बाहर था। किसी एक बाल में उलझ कर उलटा लटका हुआ था। लगता था हल्की सी हवा लगते ही गिर पड़ेगा। भरी हुई कलाइयों में एक पतली घड़ी भी जैसे समय की उदासी से ओत-प्रोत थी। वातावरण की घुटन से ऊब कर बी० के० ने कहा—

"माँ कैसी है...?"

"पता नहीं..."

"पता नहीं...? क्यों ?"

"आज छः साल से घर नहीं गई हूँ...माँ मुझे देखना नहीं चाहतीं। कहती है बिना ब्याह के मैंने वैधव्य अपना लिया है।"

"ठीक ही तो कहती है माँ"...बी० के० ने कहा

"तुम्हें तो हर चीज़ ठीक लगती है..."

"सिर्फ तुम्हें छोड़कर"

और वह मीनाक्षी को घूर-घूर कर देखने लगा । मीनाक्षी को लगा जैसे वह उसे पी जायेगा ।.मीनाक्षी की पलकें नीची हो गईं । उसे लगा जैसे वह डूब रही है । उसने कहा—

"मैं तो तुम्हें कभी भी ठीक नहीं लगी···"

"आज भी नहीं···" बी० के० ने समर्थन किया ।

"क्यों ?" मीनाक्षी ने पूछा ।

"इसलिये मीनाक्षी कि जीवन जीने के लिए है । जीना जिसका अर्थ है, हर नीरस क्षण से भी रस निचोड़ लेने की क्षमता···"

"नीरस से रस लेने की कल्पना ही अमानुषिक है, वीभत्स है ।"

"लेकिन जीवन का यही तक़ाज़ा है···इसके बिना तुम जी नहीं सकतीं..."

"मैंने जीने की इच्छा ही कब की···"

"बिना इच्छा के जीना ? जीवन कोई मजबूरी नहीं है ।"

"न हो लेकिन उससे रुचि कहाँ है····उस मजबूरी से, उदासी से ।"

बी० के० चुप हो गया । उसने अनुभव किया कि मीनाक्षी किसी गहरे दर्द से परीशान है । बात टालते हुए उसने कहा—"और दमयन्ती कैसी हैं ?"

"नीरस जीवन के क्षणों से रस लेने की चेष्टा में टूटी जा रही है ।"

"और डा० दीनानाथ ?"

"प्राकृतिक चिकित्सा का भूगोल लिख रहे हैं···"

"प्राकृतिक चिकित्सा का भूगोल ? क्या मतलब ?"

"सुना है उन्होंने घर छोड़ दिया है और गंगा किनारे एक प्राकृतिक आश्रम बना कर रहते हैं··"

"और दमयन्ती ?"

"वह घर ही पर रहती है···कभी भी चिकित्सालय नहीं जाती। महीने दो महीने पर जब डा० दीनानाथ घर आते हैं तो···"

"तो···"

"तो बाहर के कमरे में दो चार दिन रहकर चले जाते हैं···उनकी चिन्ता भी अजीब है···"

बी० के० के सामने दमयन्ती का पूरा चित्र उभर कर आ गया। उस समय उसने शादी करते समय भी डा० दीनानाथ की इस सनक पर विचार नहीं किया था। एक आत्महीनता से ही उसने उनसे शादी की थी···शायद दयावश डा० दीनानाथ ने स्वीकार भी कर लिया था उसे उस शाम को जब प्रो० आनन्द के लान पर मैंने वायलेन का एक सम्पूर्ण वादन बजाया था तो मीनाक्षी मुग्ध हो गई थी। मेरा मन भी मीनाक्षी के इस समर्पण की मुद्रा से ओत-प्रोत हो गया था। कन्सर्ट समाप्त होने के बाद मैंने मीनाक्षी से कहा—"तुम चुप क्यों हो"

"कुछ नहीं शायद इतना संगीत सहन नहीं कर सकती।"

"क्यों ?" मैंने पूछा।

"इतनी स्वर लहरियों में आलोकित जीवन लगता है फूट पड़ेगा··· टूक-टूक हो जायगा...."

दमयन्ती भी पास ही खड़ी थी। मैं उसे देख नहीं पाया था। मुड़ के देखा तो वह एक अजीब उदासी में खड़ी थी। मीनाक्षी ने कहा—

"डाक्टर साहब कहाँ हैं ?"

"नहीं आये।"

"क्यों नहीं आये ?"

"संगीत से उन्हें रुचि नहीं है।"

"नेचर क्योर वालों को नीम की चटनी अच्छी लगती है, संगीत नहीं···" मीनाक्षी ने व्यंग्य किया।

"क्लासिकेल संगीत नीम की चटनी ही है मीनाक्षी।"

और दमयन्ती तेजी से उठी और चली गई ।

मीनाक्षी खामोश उसकी गति को देखती रही ।

"लगता है मेरे वायलेन बजाने से मीनाक्षी को कष्ट हुआ ।"

"तो क्या आप वायलेन बजाना छोड़ देंगे ?"

"नहीं फिर भी ...." कहते कहते बी० के० रुक गया । पीछे प्रो० आनन्द खड़े थे । गोरे, चिट्टे, छरहरे जिस्म के व्यक्ति । अभी इसी साल तीन वर्षों तक इङ्गलैण्ड में रहकर आये थे । मनोविज्ञान के विशेषज्ञ । आई० क्यू० के नवीनतम प्रयोगों और अनुसंधानों के फलस्वरूप वह काफ़ी ख्याति अर्जित कर चुके थे । मीनाक्षी के यहाँ उनका आना जाना था । मीनाक्षी मि० आनंद को बेहद पसन्द थी । इधर उधर से मीनाक्षी की शादी की भी बात चलाई जा रही थी । उनमें मि० आनन्द की भी दिल-चस्पी थी । यह आयोजन मि० आनन्द ने मीनाक्षी से बातचीत व्यवहार के साथ साथ आई० क्यू० जानने के लिए भी किया था । मीनाक्षी और बी० के० को इस तरह अकेले बात करते देख उन्हें विस्मय तो नहीं हुआ लेकिन कुछ अजीब लगा । थोड़ी देर बाद हाथ में दो आईसक्रीम की प्यालियाँ लिये हुये वह लौटे और मीनाक्षी और बी० के० को देते हुये बोले—

"संगीत के बाद यह ठण्डी चीज़ अच्छी लगेगी....."

बी० के० ने एक रहस्यात्मक दृष्टि से उनकी ओर देखा और आईस-क्रीम खाने लगा । पीछे पीछे मीनाक्षी की माँ दौड़ी दौड़ी आई । कुछ कहने वाली थी कि बी० के० को देखकर उनकी भवें तन गईं । क्रोध से चेहरा लाल पीला पड़ गया । कुछ कर्कश स्वरों में बोली....."यहाँ क्या कर रही हो ?"

"आईसक्रीम खा रही है ।" मि० आनंद ने कहा ।

"सो तो मैं भी देख रही हूँ....भीतर माता जी कई बार पूछ चुकी हैं । जरा भी ख्याल नहीं है ।"

माता जी से मतलब आनन्द की माता जी से था। बी० के० मीनाक्षी की माता जी की बात समझ गया। यह कोई नई बात नहीं थी। पिछली कई घटनायें उसे याद थीं इसलिये वह केवल मुस्करा कर रह गया। मीनाक्षी मजबूर थी। वह चुपचाप चली गई। मि० आनन्द और बी० के० ही बच रहे। मि० आनन्द ने कहा—"शी इज़ इमेंसली इन्ट्रेस्टिंग"

"जी....." बी० के० ने कुछ चौंक कर कहा।

"मीनाक्षी को वायलेन बहुत पसंद है।" मि० आनन्द ने कहा।

"वह बजाती भी बहुत सुन्दर है।"

"आप ने सुना है।" मि० आनन्द ने कहा।

"जी हाँ....अक्सर ही सुना है"....बी० के० ने उत्तर दिया।

"आह, हाऊ फ़ारच्यूनेट यू आर ?"

"यस दैट आई एम..." बी० के० ने कहा।

मिस्टर आनन्द खामोश हो गये। उनके चेहरे पर एक साथ कई रंग आये और ग़ायब हो गये। क्षण भर में उनका चेहरा उदास हो गया। बोले—

"एक सिटिंग की योजना और है ...आप और मीनाक्षी..."

"जी नहीं....यह आज मैंने आख़िरी बार वायलेन बजाया है। आज से फिर नहीं बजाऊँगा।....."

"क्यों ?" मिस्टर आनन्द ने पूछा।

"इसलिये कि संगीत मूर्खों के लिए नहीं है और मैं देखता हूँ इसके प्रति दिलचस्पी उन लोगों की ज्यादा है जो मूर्ख तो हैं ही साथ ही क्रूर, कठोर और व्यभिचारी भी हैं..."

यह कहकर बी० के० एकदम चल पड़ा था। मि० आनन्द एकदम स्तम्भित से खड़े होकर उसका मुँह देखने लगे थे।

और दूसरे दिन मीनाक्षी ने अपने छत पर से देखा...बी० के० अपने

कमरे में अनवरत वायलेन बजाता रहा था। शाम को जब वह मीनाक्षी से मिलने गया तो अपने साथ अपना वायलेन भी लेता गया था। मीनाक्षी को वायलेन देते हुये वह बोला.....“मीनाक्षी इसे अपने पास रख लो।”

“क्यों.....”

“अब इसे नहीं बजाऊँगा।”

“क्यों....?”

बी० के० ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया था। दमयन्ती भी बैठी थी। उसे लगा शायद उसने जो व्यंग कर दिया था इसलिए बी० के० ने यह निर्णय ले लिया है। वह कुछ कहना चाहती थी कि बी० के० ने उसकी बात ही काट दी। उधर ध्यान ही नहीं दिया। मीनाक्षी ने भी उस वायलेन को अपने पास रखने में कई बहाने बनाये लेकिन एक भी काम नहीं आया। बी० के० ने अपना वायलेन वहाँ छोड़ ही दिया। मीनाक्षी की माता जी बी० के० के जाने के बाद जब कमरे में आईं तो प्रवेश करते ही उन्होंने वायलेन को कमरे के बाहर फेंक दिया। एक झनझनाहट की आवाज़ के साथ सारा घर गूँज गया। वायलेन चटख गया लेकिन उसके तार नहीं अलग हुये। मीनाक्षी ने उसे उठा लिया था और जोड़ कर अपने कमरे में रख लिया था। माँ क्रोध से विवश होकर देख रही थीं। वह उसको इस बार कूड़े में फेंक देना चाहती थीं लेकिन जाने वैसी विवशता थी कि वह अपने इस संकल्प में चाहते हुये भी फली-भूत नहीं हो पाती थी।

“मेरा टूटा वायलेन कहाँ है?” बी० के० ने पूछा।

मीनाक्षी जैसे चौंक गई। उसे सारी घटना नये सिरे से याद हो आई। बोली.....“मेरे पास है।”

“उसे जला दो।” कुछ विक्षिप्त होकर बी० के० ने कहा।

“क्यों?” मीनाक्षी ने पूछा।

“इसलिये कि मेरे पास जितना भी कोमल था, स्वरमय था वह मर चुका है—शायद वह अब कभी भी नहीं वापस आयेगा।”

"तो क्या हुआ ? उसकी जरूरत भी क्या है ?"

"यह तुम कहती हो मीनाक्षी ?"

"हाँ, यह मैं कहती हूँ....शायद ठीक कहती हूँ।"

बी० के० ने आश्चर्य से मीनाक्षी को देखा। उसे लगा जैसे वह उस संगीत, उस स्वर के बिना भी जी सकता है। उसको सहसा अपने भीतर एक नई चेतना प्रवाहित हुई सो दीख पड़ी। उसे लगा जैसे उसके रोम रोम से एक नई करुणा फूटी पड़ रही है वह उसमें शराबोर किसी अज्ञात आकांक्षा की लालसा में ही ऊपर उठ रहा है। उसने अपनी आँखें बन्द कर लीं। शायद खोलने से क्षण भर का वह आह्लाद, वह सान्त्वना, वह उन्माद और वह आशा उसके जीवन की संजीवनी शक्ति बन गई है।

"तुम सो गये क्या ?" मीनाक्षी ने कहा।

"नहीं तो—सोच रहा हूँ मीनाक्षी....सोच रहा हूँ, तुमने आज मुझे बहुत बड़ी आशा दे दी है....एक अनन्त जीवन स्त्रोत से मुझे ला जोड़ा है...."

"मैंने क्या किया है बी० के० । मैंने तो तुम्हारे ही वाक्य दोहरा दिये हैं। तुम्हीं तो कहते हो जीवन जीने के लिये है...हर नीरस क्षण से भी रस निचोड़ लेने का नाम जीवन है....।"

"और जीवन अनन्त है...."

"और जीवन सीमित है बी० के०...कभी कभी जीवन का एक छोटा सा क्षण ही सारे जीवन के ऊपर छा जाता है...।"

"नहीं...नहीं....नहीं मैं इसे नहीं मानूँगा।"

"तो उठो...इस वकालतनामे पर दस्तखत करो। ममता तुम्हें जेल से छुड़ाना चाहती है। बी० के० तुम्हें...।"

बी० के० को यह आशा नहीं थी कि मीनाक्षी यहाँ एकमात्र इसी उद्देश्य से आई है। उसने कहा—"नहीं मैं ममता का दिया हुआ जीवन नहीं जीना चाहता है...वह क्रूर है...कठोर है...।"

"वह सिर्फ इन्सान है, बी० के०···लो दस्तखत करो।" जाने क्यों बी० के० ने उस पर दस्तखत कर दिया।

समय हो चुका था। वार्डर ने दरवाजा खोल दिया। मोनाक्षी बाहर चली गई। बी० के० खोया खोया सा अपने सेल को लौट आया।



दमयन्ती के नाम



डॉ० दीनानाथ
c/o करुणा होमिया हाल
कल्याणी देवी स्ट्रीट
इलाहाबाद

प्रिय दमयन्ती,

कुछ दिन पहले मीनाक्षी आई थी। मेरी समस्त स्मृतियों को कुरेद कर चली गई। जितनी देर रही सिवा इसके कि मेरे सामने एक व्यापक अन्धेरे के और कुछ भी शेष नहीं रहा। मैंने बहुत चाहा कि उन अतीत की स्मृतियों से मुक्ति लेकर मैं कुछ और खोजूँ। मरने के पहले जो दो चार क्षण अपनों से मिलने के लिए अचानक आ गये हैं उन्हें अपनी सम्पूर्ण सहृदयता के साथ निभा दूँ, लेकिन शायद मीनाक्षी को यह मन्जूर नहीं था। बात चलते चलते उस टूटे हुये वायलेन पर आ पहुँची, जिसे मैंने अपार स्नेह के साथ मीनाक्षी को दिया था लेकिन जिसे टूटना ही था और वह मीनाक्षी के ही घर टूटा और ऐसा टूटा कि शायद उसके पर्दों और तारों में छिपे समस्त स्वर ही विलीन हो गये। खो गये। मीनाक्षी कहती है कि वह उस टूटे हुए वायलेन को सुरक्षित रक्खे हुए है—टूटे हुये की सुरक्षा, खण्डित की जीवन विविधता, इसका अर्थ क्या हो सकता है भला? तुम्हें भी लगता होगा कि ये समस्त शब्द निरर्थक हैं, इसका कोई महत्व नहीं है—इनका कोई आशय नहीं है। मैं बड़ी देर तक सोचता रहा—वही खण्डित वायलेन और अपने बारे में।

मि० आनन्द को भी बात छिड़ गई थी। पता चला उन्होंने किसी यूरोपियन महिला से शादी कर ली है और वह इंगलैंड में ही रहते हैं। भारतियों के बारे में उनकी बड़ी बुरी राय है। सुना है वह भारत भी आना पसन्द नहीं करते, लेकिन मीनाक्षी को आनन्द को खो देने का या उनसे शादी न करने का निर्णय लेने का तनिक भी क्षोभ नहीं था। मैंने कई तरह से पूछा लेकिन वह कुछ नहीं बोली। न तो उसने मुझे प्रकाश के ही विषय में कुछ बताया और न आनन्द के....लेकिन दमयन्ती जब मीनाक्षी मुझसे मिल कर जा रही थी तो वह जरूरत से ज्यादा उदास थी....मैंने जब उससे जीवन को जीने के लिए आग्रह किया तो वह हंस पड़ी, उसने कोई सही उत्तर नहीं दिया और चली गई।

दमयन्ती—पता नहीं तुम्हें यह बुरा लगेगा या अच्छा, पता नहीं तुम इसे पाप समझोगी या पुण्य—बात जो भी हो—मेरे मन में आज भी मीनाक्षी के लिए वही स्थान है जो आज से दस वर्ष पहले था लेकिन दमयन्ती तब जैसे मैं बहुत सी चीजों का मूल्य समझता ही नहीं था। आज मीनाक्षी को दस वर्ष बाद देखकर मुझे ऐसा लगता है जैसे मैं ही टूट गया हूँ, खंडित हो गया हूँ...मीनाक्षी अब भी वैसी ही है, उतनी ही पवित्र, उतनी ही सौम्य और उतनी ही अटूट। मुझे याद आता है—

एक शाम के समय तुम मीनाक्षी के साथ यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी में मुझ ही से मिलने आई थी। मैंने कहा था इस समय यहाँ—और तब तुमने मीनाक्षी की ओर संकेत करते हुए कहा था—"मैं क्या करूँ....यह जो नहीं मानती" और फिर वह झेंप सी गई थी। तुम उसे अकेली छोड़कर जाने कहाँ चली गई थी। वह मेरे पास ही बैठी रही। फिर कुछ हिम्मत करके बोली थी...."आप ने मेरे यहाँ आना क्यों छोड़ दिया ?"

"कोई खास बात नहीं...." मैंने कहा

"फिर भी...."

"फिर भी क्या ? माँ की बात का आप फिर बुरा मान गये....मैं कहती हूँ...माँ यों ही कभी कभी उलझ जाती है।"

मैं चुप रहा उसने फिर कहा—"माँ कभी किसी का बुरा नहीं चाहतीं।" मैं फिर भी चुप रहा। —"लोग कहते हैं माँ बड़ी सीधी थी······ लेकिन समय की चोट ने उन्हें चिड़चिड़ा बना दिया।"

मैं और भी चुप हो गया। मीनाक्षी ने एक बार मेरी ओर देखा था और सहज भाव से लज्जित हो गई थी। बात बदलते हुये उसने कहा—"शायद आप कुछ भी नहीं सुन रहे हैं।"

मैं कुछ भी नहीं बोला था। खामोश उसकी बातें ही सुनता रहा था। उसने मुझे अगले रविवार को बुलाया भी था लेकिन मैं नहीं गया था। तुम भी मुझसे नाराज़ हो गई थी। काफ़ी दिनों तक तुमने मुझसे बात तक नहीं की थी।

उस दिन स्टेशन पर सहसा तुम मीनाक्षी के साथ मिली थीं। तुमने कहा था—

"मीनाक्षी"··· मैंने देखा वह दूर खड़ी थी। मैं उसके निकट गया था। तुमने कहा·····"बी० के०"·····तो वह मुड़ कर मुझे देखने लगी। मेरी समझ में नहीं आया कि मैं उससे क्या बातें करूँ? मैं जानता था मेरी बात की ओर उसका ध्यान नहीं है। वह केवल मुझे ही देख रही थीं। मैं जानता था जिस रास्ते मीनाक्षी चलना चाहती थी वह कठोर के साथ कठिन भी था। उस रास्ते पर शायद चलना सम्भव नहीं था। मीनाक्षी के हाथ में भी एक एटेंची थी और एक प्लेटफार्म टिकेट। मैंने पूछा·····"कहाँ जाओगी?" "जहाँ आप जायेंगे" और मेरे पैर के नीचे की ज़मीन खिसक गई थी। मैंने कहा था·····"मेरे साथ"·····और उसने अपने नाखून कुतरने शुरू कर दिये थे। मैंने कहा—"तुमने कभी सोचा है इसका मतलब" और वह एक दम सूनी-सूनी सी नज़रों से मुझे देखने लगी। बोली ही नहीं निकल रही थी उसके मुँह से। मैंने कहा·····"कुछ दिन और। वह जितना ही सोचेगी उतना ही अच्छा होगा।"

गाड़ी ने सीटी दी। मैं चला गया।

"फिर क्या हुआ ?" मीनाक्षी ने पूछा था और मैंने सब कुछ बता दिया था। वह उदास हो गई थी। ममता के विषय में उसने जैसे कुछ पूछा ही नहीं। बोली—"यह सब क्यों होता है" मेरे पास उसकी इस जिज्ञासा का कोई उत्तर नहीं था। मेरा एक मित्र है वह कहता है....इन सब का कोई अर्थ नहीं होता। आदमी महज़ अपना स्वभाव जीना चाहता है। संस्कार उस स्वभाव पर छा जाना चाहते हैं। स्वभाव की सहजता और संस्कार के इस विरोधाभास में आदमी का पर्त पर्त टूटता जाता है.... टूटना जैसे अनिवार्य है....लेकिन मैं मीनाक्षी को क्या उत्तर देता। पढ़ी लिखी सम्भ्रान्त....शायद वह उसकी उत्सुकता थी। उसकी जिज्ञासा थी। उसका कौतूहल था। उसकी अपनी विवशता थी। बोली—

"सौन्दर्य क्या है ?"

"मैं नहीं जानता ।"

उसने मुझे एक विचित्र भङ्गिमा से देखा था। फिर चुपचाप कुर्सी पर बैठी बैठी जाने क्या गुनगुनाने लगी थी। मैं सो गया था।

वर्षों बाद मैंने देहरादून में उसे प्रकाश के साथ देखा था। वह अत्यन्त प्रसन्न और उत्सुक थी। मेरे जी में आया—वकील आर्ट गैलरी में मैं उसे रोक कर पूछूँ....."सौन्दर्य क्या है ?" "यह सब क्या होता है ?"....लेकिन बेकार था। मैं नहीं चाहता था कि उसके उस मुक्त वातावरण में मैं किसी भी प्रकार की बाधा पहुँचाऊँ। मैं एक ओर हो गया। मीनाक्षी जाने किस उल्लास में डूबी थी। शायद उन्हीं पेन्टिंग्स में उसे पता भी नहीं चला। मैं लगभग छः सात दिनों तक देहरादून में रहा। मैं उसे रोज देखता था। लेकिन वही मुझे नहीं देख पाती थी। मैंने इन सात दिनों में यह जान लिया कि जीवन की विभिन्न अभिव्यक्तियों में से केवल साहचर्य का इतना बड़ा महत्व होता है कि आदमी उसकी तृप्ति की आकांक्षा को ही उपलब्धि मान लेता था। मैं नहीं जानता कि प्रकाश और मीनाक्षी का क्या सम्बन्ध रहा है लेकिन मैं इतना अवश्य कह

सकता हूँ कि उस मुक्त वातावरण में, उदासी का एक पुट था जो हर क्षण उसके भीतर से उभर कर ऊपर आ जाता था। मैंने चाहा कि उससे पूछूँ लेकिन फिर जाने क्यों मैं रुक जाता था।

* * *

कुछ दिनों बाद वह मुझे कलकत्ते में भी मिली थी। प्रकाश के साथ ही टेस्ट मैच देखने आई थी। कुछ वह घटना घटनी थी। घटी। मैं पैवेलियन में जाकर बैठा ही था कि वह प्रकाश के साथ आकर बिल्कुल मेरे पास बैठ गई। मीनाक्षी का रूप जैसे धुला धुला सा था। उसके मन पर चेहरे पर एक अनिवार्य चमक थी। एक भोगे हुये जीवन की मांसलता में एक प्रकार की चमक होती ही है, प्रौढ़ता होती है, लोच होती है....यह सब उसके हाव भाव में था। मुझे देख कर सन्न रह गई। बोली—"तुम"—प्रकाश ने भी देखा। उस दिन दिन भर हम साथ रहे। मीनाक्षी का जी टेस्ट मैच में भी नहीं लग रहा था। टी० के समय जब मैं रेस्तोराँ में चाय पी रहा था वह अकेली मेरे पास आकर बैठ गई। बोली—"कहाँ हो आजकल" "कलकत्ते में" मैंने कहा। "कहाँ रहते हो "कलकत्ते ही में"—और बस....मैं उससे अधिक बात नहीं करना चाहता था। उसकी पूर्णता को खण्डित नहीं करना चाहता था। उसने फिर पूछा—"कब मिलोगे", "यहीं पर कल"

और मैं जानता हूँ वह मेरी प्रतीक्षा कर रही होगी। लेकिन मैं नहीं गया। नहीं जो जाना चाहता था! उसके व्यक्तित्व की गहराइयों में उलझना नहीं चाहता था।

* * *

मीनाक्षी का एक पत्र जेब में मिला है। प्रकाश के बारे में उसने कुछ नहीं लिखा है। मैंने बहुत चाहा था कि मेरे जेल जाने की सूचना किसी को न मिले लेकिन जाने कैसे सभी सूचित थे। मीनाक्षी ने लिखा था कि वह समझ नहीं सकती कि मैं कैसे इस संगीन जुर्म में फांस दिया

गया । मैं भी नहीं समझ पाता था । लेकिन डा० सेठी के विरुद्ध मैं कुछ करना नहीं चाहता । आखिर वह भी तो उस समाज का अंग है जिसमें यह सब हर क्षण होता रहता है । खाने के सामान में. कपड़ों में, स्याही में, किस चीज़ में धोका नहीं दिया जाता । इसी जेल में एक बनिया भी कैद है । बजरे के आटे में सीमेन्ट मिलाकर वह बेचता था । मजदूर खरीदते खाते थे । सैकड़ों की तादाद में मज़दूर इसलिये मर गये होंगे क्योंकि बजड़े और सीमेंट का रंग ऐसा हो जाता कि दोनों एक दूसरे को खपा ले जाते हैं । बनिया कहता था कि सीमेन्ट वज़नी होता है । हल्का बजरे का आटा वज़नी सीमेन्ट पा कर कम चढ़ता था ज्यादा पैसा लाता था । लेकिन सीमेन्ट भी तो उसे आसानी से नहीं मिल पाता होगा....वह जो नेता हैं जिसने मुझे परमिट दिला कर सीमेन्ट दिलाया है और फ़ी बोरी कुछ न कुछ रिशवत लिया है उसे कोई नहीं पकड़ेगा और अगर पकड़ भी गया तो क्या छः महीने की सज़ा काट कर आयेगा । दुकान दूनी चलेगी। मि० सेठी भी वही करते हैं । लोग उस नेता, बनिया और डाक्टर सेठी में फ़र्क करना चाहते हैं लेकिन मुझे कोई अन्तर नहीं दीख पड़ता । जब मैं इन सब को कोई सज़ा नहीं दे पाता तो फिर अकेले मि० सेठी को क्यों सजा दूं । मैंने मिस्टर सेठी से कह दिया है कि ड्रग इन्स्पेक्टर की रिशवत वह बढ़ा दे । उसकी रिशवत बढ़ा भी दी गई है । मैं जानता हूँ कि अपनी बचत के लिये ही मि० सेठी ने मुझे फाँसा है लेकिन फिर मैं मि० सेठी को दोष क्यों दूँ । अपनी बचत के लिये सभी एक दूसरे को फाँसते हैं । नेता वोटर को फाँसता है, वोटर गाँव में एलेक्शन के नाम पर पैसा बाँटने वाले को और ज़ात बिरादरी को । न्याय भी कहाँ है ? तीन तीन साल से जेल में क़ैदी पड़े रहे हैं । जुर्म की सज़ा ही नहीं मिली है । बिना जुर्म के जब आदमी तीन साल की सज़ा भोग सकता है तो जुर्म के नाम पर छः महीना और सही । क्या बनता बिगड़ता है इसमें । मैं तो बाहर भी सज़ा भोग ही रहा था । बिना माता पिता का होने के नाते, बिना जात बिरादरी का होने के नाते फिर क्या जेल में तो

सभी खाने भरे है। जेलर कह रहा था माँ बाप के खाने में उसने मेरे नाम के आगे गाली लिख दी है। गाली के मतलब हरामी घोषित किया है। वह इतना बेवकूफ़ है कि इतनी जरा सी बात नहीं समझता। असली बाप वाले के लिये हरामी गाली हो सकती है लेकिन मेरे लिये तो वह असलियत है। ठीक वैसी ही जैसी किसी भी संत के लिये १००८।

मैंने इसीलिये मीनाक्षा के पत्र का कोई उत्तर नहीं दिया। ममता की भी बात नहीं मानी। सुना है मुझे साल भर की सजा हुई है। सजा आदमी को दी जाती है। जिस समाज ने मुझे कभी आदमी माना ही नहीं उस समाज द्वारा मुझ पर आरोपित दण्ड क्या अर्थ रखता है? लेकिन नहीं जेल के भीतर रहो या बाहर, समाज के आभारी रहो या समाज द्वारा बहिष्कृत, समाज का एक अपना नियम है....एक अपनी समस्या है और अपना निदान भी। सुनते हैं गाय का गोबर और गाय का पेशाब पीकर पहले लोग शुद्ध किये जाते थे। आज की व्यवस्था भी वैसे ही गोबर और गाय का पेशाब खिला पिला कर हमको तुमको शुद्ध करने के चक्कर में रहती है। मुझे दोनों से नफ़रत है क्योंकि आदमी में कहीं अपने लघुत्व के प्रति आस्था ही नहीं रह गई। सब केवल महान के आश्रित हैं, उसी की दया पर जीना चाहते हैं। अपने अस्तित्व की बलि देकर वह उस महानता को रक्षित रखना चाहते हैं। फिर मेरी सहानुभूति उनके साथ भी कैसे हो सकती है। मैं को महज इतना जानता हूँ कि मौजूदा हालत में जुर्म एक सिलसिला है....जिसका क्रम हम नहीं बनाते.... उसका सिलसिला बनता ही चला आ रहा है। दुनिया महज पाप पुण्य, जुर्म सजा, जिन्दगी और मौत की ही बात सोचती है लेकिन ऐसी भी जिन्दगियाँ हैं जो न पाप है न पुण्य, न जुर्म है न सजा, न जिन्दा है न मरी.... यह जो दो स्थितियों के बीच की स्थिति है उसके विषय में समाज मौन ही रहता है और तब यह जेलखाना केवल निरर्थक व्यंग्य सा लगता है........

इस व्यंग्य से मुक्ति कहाँ है ?

* * *

खैर छोड़ो इन बातों को। इस पत्र से संलग्न मेरा एक वसीयतनामा है। इसे मेरे मरने की सूचना मिलने के बाद खोलना। एक वसीयतनामा मीनाक्षी के नाम है जिसने मेरे लिये सब से अधिक यातनायें सही हैं। मैं उसके लिये कुछ भी नहीं कर सका हूँ। तुम कह सकती हो यह भी मैं अपने को धोखा देने के लिये कर रहा हूँ लेकिन मैं करूँ क्या? जब ईमानदार से ईमानदार बात भी धोखा ही लगती हो तो उससे निष्कृति मिल कैसे सकती है। चाहो तो तुम भी धोखा ही समझना।

दूसरा एक पत्र है, उस सन्तान के नाम जो मेरे मरने के बाद भी नहीं जन्मेगी। इस खत को तुम चाहना तो छपवा कर बाँट देना। मैं जानता हूँ कि इनका भी कोई खास मतलब नहीं निकलेगा लेकिन फिर भी····

लेकिन कौन सुनता है मेरी बात। क़ैदियों ने इस एक घटना को लेकर बड़ा शोर मचाया। भूख हड़ताल शुरू कर दी। लेकिन मैंने किसी का साथ नहीं दिया। मेरे सामने खाना आया तो मैंने खा लिया। अजीब शोर-ओ-गुल मचाओ। बोले "मैं गद्दार हूँ"। यह पहला शब्द है जिसे मैंने पहली बार सुना है। शायद गद्दार और ईमान्दार में थोड़ा ही अन्तर होगा।

तुम्हारा
बी० के०

पत्र का अन्तिम वाक्य पढ़ते पढ़ते मि० अनूज शर्मा ने तीन बार अपने रूमाल से अपना मुँह पोंछ चुके थे। कैसा आदमी है बी० के०? कैसा था? कैसा हो गया? शायद वह वह आदमी है जो दुनिया की तराजू से बार बार इसलिये उतार दिया जाता है। शायद इसलिये कि वह हर बार हर बाट के साथ नाप से अलग निकलता है, अतिरिक्त हो

जाता है । शायद उसी ज़िन्दगी का व्यंग्य है जो वह हर क्षण भोगता है लेकिन सब के साथ नहीं—सब से अलग ।

सहसा मैरून रंग की मोटर स्लिप करती हुई काफ़ी हाऊस के सामने आ लगी । मिसेज़ सैम्सन और सैम्यूअल के साथ साथ मीनाक्षी भी थी । मिसेज सैम्सन को देखकर मि० अनुज शर्मा कुछ चौंके । स्कर्ट ब्लाऊज में यह महिला भारतीय संस्कृति के प्रतीक मि० अनुज शर्मा को कुछ अजीब लगी । वह चाहते थे कि वह मिस्टर सैम्यूअल के साथ अलग ही बैठे लेकिन सैम्यूअल खुद ही मेज पर आ बैठा । मिसेज़ सैम्सन भी आकर बैठ गई । मीनाक्षी भी । मि० सैम्यूअल ने जेब से निकाल कर एक कार्ड दिया । आगामी रविवार को डिनूर में शामिल होने की दावत थी । कार्ड पढ़कर मि० अनुज कुछ चौंके । एक बार उन्होंने सैम्यूअल की ओर देखा और नमस्कार करके बैठ गये । सारी कथा पढ़ चुकने के बाद मि० अनुज शर्मा ने स्त्रियों के बारे में अपनी राय बदल डाली थी । उन्हें लगा कि दमयन्ती उनसे ज्यादा आधुनिक और भाग्यवान है । बैठते ही उन्होंने पूछा—

"आप कब आईं इलाहाबाद ?"

"कल आई हूँ ।" मिसेज़ सैम्सन ने कहा ।

"क्यों क्या उसमें भी आप कोई नयी खोज करेंगे ?"

"जी....जी नहीं....बस यूँ ही पूछ लिया ।"

उनके जी में आया कि वह सैम्यूअल से पूछे कि उसका परिचय मिसेज़ सैम्सन से कब हुआ लेकिन मि० सैम्यूअल ने जरा बात ताड़ते हुये कहा—

"मेरा डाली का परिचय बहुत पुराना है... हम दोनों साथ साथ कान्वेन्ट में पढ़े हैं...." कहते कहते सैम्यूअल ने रहस्य भरी दृष्टि से मिसेज़ सैम्सन की ओर देखा । डाली जैसे कुछ लज्जित हो गई । मीनाक्षी ने व्यंग्य करते हुये कहा—"सुबह का भूला अगर शाम को घर वापस आ जाय तो उसे भूला नहीं कहते ।"

"लेकिन हम लोगों ने कभी भो भटकन का सामना नहीं किया।" मि॰ सैम्यूअल ने मीनाक्षी की ओर देख कर कहा। आगे बोला—

"हमने अपनी ज़िन्दगी जहाँ से शुरू की थी वहीं यह शर्त कर लिया था कि जीवन भर हम एक दूसरे का साथ देंगे....।"

"और मि॰ सैम्सन के मोकदमे की पैरवी भी करेंगे ....।"

मि॰ अनुज शर्मा ने एक बड़ा तीखा व्यंग्य किया। मि॰ सैम्यूअल की समझ में मि॰ अनुज का मूड पूरी तरह आ गया था। उन्होंने कहा —

"जी नहीं....हमने तै कर लिया है कि हम दोनों ज़िन्दगी को मुक्त होकर भी जिये लेकिन जब हम में से कोई भी थक कर किसी एक के पास आ जायेगा तो उसे दूसरे को स्वीकार करना पड़ेगा ...मिसेज़ सैम्सन और मि॰ सैम्सन का मोकदमा भी वैसा ही है। आज छः महीने फैसला हुआ होगा.... ।"

"फ़ैसला या लड़ाई।"

"लड़ाई हो का फैसला किया जाता है।"

मि॰ अनुज शर्मा के हाव भाव से ही यह पता चलता था कि वह मिसेज़ सैम्सन को नितान्त कृत्रिम प्रकार की स्त्री समझते थे। शायद इसीलिये वह इतने कटु और तीखे व्यंग्य करते जा रहे थे।

अभी वह बात हो ही रही थी कि राजा साहब हाथ में अख़बार लिये काफ़ी हाऊस में आ गये। आज राजा साहब जरूरत से ज्यादा प्रसन्न थे। पहले तो फाटक पर खड़े होकर उन्होंने पूरे काफी हाऊस को देखा फिर खामोश होकर एक जगह बैठने जा रहे थे। उन्होंने मि॰ अनुज को देख लिया। उनके साथ कोई और था। शायद इसीलिये वह मि॰ अनुज शर्मा की मेज पर नहीं आना चाहते थे। लेकिन फिर मिसेज़ सैम्सन को देख कर हँसते हुये वह वहाँ पहुँच गये। बोले—

'बधाईयाँ....आई मीन काँग्रेचुलेशन"

सैम्यूअल ने धन्यवाद दिया और पूछा—"कार्ड मिल गया" वह

वहीं कुर्सी खींच कर बैठ गये। मि० अनुज आज कुछ जरूरत से ज्यादा गम्भीर थे। उनके दिल में वही शंका बार बार काम कर रही थी कि यह लड़कियाँ और स्त्रियाँ जो एक से ज्यादा पति कर लेती हैं वह या तो आवारा होती हैं या दया की पात्र, दोनों ही स्थितियों को मि० अनुज रोमान्स के एडवेन्चर के उपयुक्त नहीं समझते थे। वह उठकर जाने लगे लेकिन फिर राजा साहब ने टोक दिया और उनको मजबूरन रुकना पड़ा। मिसेज़ सैम्सन को लगा जैसे मि० अनुज उसी के कारण वापस जा रहे हैं। वह कुछ संकुचित सी हो गई। उसके जी में आया कि वह उठकर चली जाय लेकिन वह उठी ही थी कि राजा साहब ने बैठा दिया। सैम्युअल ने कहा—

"मि० अनुज आप तो बस आज उखड़े उखड़े से हैं"

"जी··· जी नहीं तो····।"

"अब देखिये····आप हकलाते क्यों हैं····"

मि० अनुज को लगा जैसे बात दो टूक हो कर रह गयी। उसका सदुपयोग उनमें से किसी ने नहीं किया। मि० सैम्युअल ने ही कहा—

"अगले इतवार को भूलना मत····"

मेज़ पर बैठे सभी लोगों को सम्बोधित करते हुये कहा। मि० अनुज से भी अनमने ढंग से वही कहा। मि० सैम्युअल जैसे और दृढ़ स्वर में बोले—"मि० अनुज यह शादी शुद्ध दो अजातियों के बीच है और सैम्सन भी परकीया की है····।"

सैम्युअल की बात सुनकर सभी हँस पड़े लेकिन मि० अनुज शर्मा वैसे ही स्थितिप्रज्ञ दशा में गम्भीर बने बैठे रहे।



और अन्त में

"फिर क्या हुआ ?"

एक साथ ही सब के चेहरे पर एक यही भाव लिखा था। सब की आँखें नम थीं और सब के चेहरे उदास थे। मि० अनुज शर्मा बी० के० के जीवन का मार्मिक अंश पढ़कर समाप्त कर चुके थे। कमरे में बैठे हुये प्रत्येक व्यक्ति के मन में एक तलाश थी कि वह बी० के० बारे में अब तक जो सोचते थे वह सत्य है या आज जो कुछ हंसा देवी से मिलने के बाद सुनाया है वह सही है। जाने क्यों सब की आँखें थकी-थकी सी लग रही थीं चेहरे पर ऐसा भाव था जैसे अब तक सब ने बी० के० को समझने में अपराध तो किया ही है साथ ही श्री अनुज शर्मा को भी समझने में ग़लती की है। सब के सब मि० अनुज शर्मा का चेहरा ऐसे देख रहे थे जैसे उनसे क्षमा माँगने में संकोच का अनुभव हो रहा हो। अनुज शर्मा को भी लगा कि जैसे उनके मन का बोझ काफ़ी हल्का हो गया हो। उन्होंने फिर कुछ साहस करके कहा—

"बी० के० का अन्तिम पत्र मेरे पास आया था जिसमें उन्होंने लिखा था कि उनकी एक मात्र इच्छा यह थी कि हंसा देवी की रक्षा करने का भार मैं ले लूँ। हन्सा देवी की रक्षा के लिए वैसे भी कोई जरूरत नहीं थी क्योंकि उनके पास रुपया पैसा सब कुछ था। लेकिन बी० के० के जेल जाने के बाद अब वह कुछ दिनों एकदम गुमनाम हो कर जीना चाहती थीं। वह क्यों ऐसा करना चाहती थीं इसका कारण भी वह नहीं बताना चाहती थीं...."

सुनते-सुनते मि० भल्ला ने कहा—

"और सिर्फ़ बी० के० के कहने पर आपने हंसा देवी को संरक्षण दिया और किसी को भी यह पता नहीं लगने दिया कि हन्सा देवी मर गई है...."

"हाँ मैंने बी० के० के वचनों का पालन किया और आज तक दुनिया यह नहीं जान पाई कि वास्तव में हन्सा देवी मर गई या जीवित है....दुनियाँ आज भी जानती हैं कि हन्सा देवी मर चुकी है और हन्सा देवी आज भी जीवित है....लेकिन जिस हालत में हैं आप ने देख लिया है...."

"इनका रुपया पैसा, इनकी जायदाद कहाँ है?" मि० चतुर्वेदी ने पूछा।

"मुझे नहीं मालूम। मैं केवल इतना जानता हूँ कि उन्होंने सब कुछ वसीयत कर दिया है। वसीयत नामा मजिस्ट्रेट के यहाँ सील मोहर के साथ बन्द है। कोई नहीं जानता कि उसमें क्या है क्योंकि वह उनके मरने के बाद खुलेगा ...."

"हन्सा देवी कब तक मरेंगी..." मि० भल्ला ने पूछा।

कुछ कहा नहीं जा सकता ..वैसे बड़ी अफ़वाह यह है कि चित्रकार वकील श्री प्रकाश के नाम उनकी सारी वसीयत है..."

"लेकिन उस वकील के प्रति उनका इतना स्नेह क्यों था? ...वह तो बिल्कुल नौजवान बिल्कुल नई उमर का..."

मि० अनुज चुप हो गये फिर बोले—

"कुछ और मत समझियेगा....मैंने श्री प्रकाश को हन्सा देवी के साथ देखा है...बी० के० के साथ हन्सा देवी का एक साथी का सा सम्बन्ध था लेकिन श्री प्रकाश के प्रति वह अधिक उदार, भावुक और वातसल्य पूर्ण थीं....लोगों का तो यह कहना है कि कार को खरीदने का पैसा भी हन्सा देवी ने श्री प्रकाश को दिया था...क्यों दिया था, क्या कारण था इसके विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता।"

मिस्टर अनुज जब यह सारी कथा सुना रहे थे तो मीनाक्षी बिल्कुल खामोश थी। उसे लगता था कि मि० अनुज कहीं कुछ छिपाने के लिए प्रकाश को बेकार में घसीट रहे थे। वह भी हन्सादेवी को भली-भाँति जानती थी। श्री प्रकाश कौन था और हन्सा देवी क्यों उसे जरूरत से ज्यादा मानती थीं इसका मानवीय पक्ष मीनाक्षी को ज्ञात था ... वह बी०-के० और हन्सा देवी के भी सम्बंधों को जानती थी इसलिए जब मि० अनुज शर्मा चुपचाप बड़ी सफ़ाई के साथ निकल जाना चाहते थे तो उसके जी में बार बार आता था कि वह उठ कर खड़ी हो जाय और सारी कथा को आदि से अन्त तक बयान कर जाय लेकिन फिर जाने किस संकोच के कारण उसने यह नहीं किया। उसने जो कुछ मि० अनुज के जी में आया कह देने दिया। मि० अनुज शर्मा कहते जा रहे थे—

"जो राजा साहब अपना हुक्का नुमा मुँह लिए काफ़ी हाऊस में प्रायः बैठे मिलते हैं कि मूलतः हन्सादेवी उनकी परिचित थी। कहते हैं राजा साहब ही वह पहले व्यक्ति थे जिन्होंने सबसे पहले हन्सा देवी से परिचय प्राप्त किया था और उससे विवाह करने का प्रस्ताव किया था। हन्सा देवी कुछ दिनों उनके साथ रही भी थी लेकिन फिर जाने क्या हुआ कि राजा साहब और हन्सा देवी का विवाह नहीं हुआ और महीनों साथ रहने के बाद मि० सिन्हा और हन्सा देवी का विवाह सम्पूर्ण रीति-रिवाज के साथ सम्पन्न हुआ। इस विवाह की चर्चा कुछ दिनों तक पूरे शहर में रही लेकिन फिर धीरे-धीरे यह चर्चा समाप्त हो गई। वे दोनों सुख और शान्ति से रहने लगे ·"

कहते कहते मि० अनुज शर्मा चुप हो गये। उनके इस मौन गांभीर्य का क्या रहस्य था यह तो लोगों को नहीं पता लगा लेकिन सहसा बोलते बोलते रुक जाने से सब के मन में यह सन्देह अवश्य पैदा हो गया कि हो न हो इसके बाद की कहानी बड़ी मार्मिक और सार गर्भित होगी। चतुर्वेदी ने कहा—

"लगता है इसके आगे कि कथा में कहीं आप शामिल हैं·····"

"मैं शामिल तो नहीं हूँ लेकिन इस सुख शान्ति में बी० के० अवश्य शामिल है···क्योंकि इसी के बाद से ही बी० के० और हन्सा देवी की भेंट होती है और बी० के० के आने से जो परिवर्तन होते हैं वही इस सारी दुर्घटना का कारण बनता है···"

"लेकिन बी० के० को हन्सा देवी के यहाँ किसने पहुँचाया···"

मि० अनुज ने कहा "उसका कारण मैं था।"

"तो आप हन्सा देवी को बी० के०, मि० सिन्हा और राजा साहब के पहले से जानते थे "

"हाँ जानता था·····" मि० अनुज शर्मा ने कहा

"फिर आपने कैसे कहा कि राजा साहब ही पहले ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने हंसा देवी से परिचय प्राप्त किया था·····"

"इसलिए कि मेरा और हन्सा देवी का परिचय इलाहाबाद का नहीं कहीं और का था···हंसा देवी पहले मैनपुरी में रहती थीं, यहाँ यह

जायदाद उन्हें उनकी नानी से मिली थी···"

"कही ऐसा तो नहीं मि० अनुज कि बिचारी हन्सा देवी को आप ही के कारण मैनपुरी छोड़नी पड़ी हो···आखिर आप इलाहाबाद कैसे आये···?"

पुलिस सुपरिन्टेन्डेण्ट मिस्टर चतुर्वेदी के इस प्रश्न से सारे कमरे में सन्नाटा छा गया। मीनाक्षी आश्चर्य चकित हो चतुर्वेदी का चेहरा देखने लगी। उसे लगा कि यह सवाल बीच में कहाँ से पैदा हो गया। बात का जो सिलसिला था वह तो बी० के० को लेकर था। सम्बन्ध बी० के० और हंसा देवी को लेकर था। शादी के बाद से जब तब वह भी प्रकाश के साथ हंसा देवी से मिलने आई है लेकिन कभी कोई ऐसी बात देखने को ही नहीं मिली····इतना सरल और सुन्दर स्वभाव था हंसा देवी का फिर यह सारे प्रश्न क्यों उठ रहे हैं। मीनाक्षी ने यह सोचते-सोचते जब एक बार मि० अनुज शर्मा के चेहरे की ओर देखा तो उनका चेहरा आवेश और उद्वेग से तमतमा रहा था। ऐसा लग रहा था कि मि० चतुर्वेदी ने मि० अनुज शर्मा की कोई दुखती रग छू दी थी। क्षण दो क्षण वह मौन रूप से बैठे रहे फिर कंपती हुई आवाज में बोले —

"आप का अनुमान ठीक ही है···मेरा इलाहाबाद आने का कारण हंसा देवी ही है····शायद मेरे जीवन में इससे बड़ी घटना घटी ही नहीं····"

"तो क्या यह सच है कि श्री प्रकाश एडवोकेट, चित्रकार के पिता आप हैं और वह हन्सादेवी के पुत्र हैं····" मि० चतुर्वेदी ने दूसरा सवाल पूछा।

मि० अनुज शर्मा को लगा यह एक दूसरा वार था जिसे मि० चतुर्वेदी ने किया। जिस तत्थ को वह पिछले तीस वर्षों से छिपाये थे उसका सहसा इस रूप में उद्घाटन होगा इसकी आशा उन्हें नहीं थी। कभी-कभी हन्सा-देवी, प्रकाश और अनुज शर्मा को लेकर जो बातें लोगों के मन में उठती थीं उनमें इस प्रकार की शंकायें बराबर आती थीं। फ़ियट नं० १०११ जब पहले पहल प्रकाश लेकर कचेहरी गया था तब भी लोगों में काना-फूसी हुई थी लेकिन किसी ने कुछ कहा नहीं था। प्रकाश को उस कार से सम्बद्ध कई अन्य व्यंग भी सुनने को मिले थे लेकिन स्वयम् उनकी

समझ में नहीं आता था कि यह सब क्यों है। मीनाक्षी जो अभी तक मि० अनुज शर्मा को उनकी बुजुर्गी के बावजूद कुछ हल्के-फुल्के ढंग से लेती थी, गंभीर हो गई थी। श्री प्रकाश जिसे उसने जीवन के जाने कितने संघर्षों के बाद पाया था सहसा इस सन्दर्भ में नये सिरे से पाकर परीशान और उद्विग्न हो उठी थी। वहाँ जितने लोग बैठे थे वह एक साथ मि० अनुज शर्मा और मीनाक्षी के चेहरे पर चढ़ते उतरते-रंगों को देख रहे थे। उन्हें लगता था कि जैसे उनके सामने एक नया सन्दर्भ एक नयी आशंका के साथ आ उपस्थित हुआ है। एक तो हन्सादेवी का भी जो चित्र कुल मिलाकर उपस्थित हुआ था वह भी बड़ा विचित्र था। एक स्त्री और चार पुरुषों के जीवन में आये और फिर भी अपनी प्रकृति में वैसी ही सरल बनी रहे यह जरा विश्वास नहीं होता था। कुछ लोग हन्सादेवी के पैसों के कारण यह सब करते थे लेकिन उनके पास पैसों की कमी तो थी नहीं लेकिन लोगों का अनुमान था कि किस विशेष अवसर पर वह इन्हीं पैसों के माध्यम से लोगों को खरीद लेती थी। मि० अनुज शर्मा को भी कभी-कभी ऐसी बातें हल्के फुल्के ढंग से सुनने को मिल जाती थी लेकिन वह इन्हें टाल जाते थे। कभी किसी से इस विषय पर कोई बहस नहीं करते। उन्हें लगता था कि यह दुनिया लोगों को ऐसा ही समझती है। उसे रोका नहीं जा सकता लेकिन आज जिस प्रकार मि० चतुर्वेदी अपनी पुलिस बुद्धि के आधार पर बातें कर रहे थे वह जरूर मि० अनुज शर्मा को चकित किये हुई थी। मीनाक्षी का धीरज टूट चुका था। उठी और बाहर जा कर उसने कार स्टार्ट की और चली गई। कार की आवाज़ सब ने सुनी। सबके मन में मीनाक्षी का सहसा उठकर चला जाना भी खला लेकिन कोई अ नी जगह से टस से मस नहीं हुआ। कुछ संभल कर मिस्टर अनुज शर्मा ने कहा ---

"बी० के० के प्रति हन्सादेवी का जो भी प्रेम स्नेह था वह किसी भी प्रकार विकृत पूर्णनहीं था। बी० के० को हन्सादेवी व्यक्ति के रूप में प्रभावित करतो थी लेकिन सौन्दर्य के स्वरूप को वह चाहता था। पूरे जीवन भर बी० के० इसी दुविधा में पड़ा था। उसकी समझ में नहीं आया कि सौन्दर्य का वाह्य और आन्तरिक रूप होता ही नहीं''''वह किसी मार्मिक

क्षण में संतुलित होकर व्यक्ति-व्यक्ति को संस्कार दे देता है। जो समझते हैं कि ऐसा नहीं होता या जो यह समझते हैं कि सौन्दर्य का स्थूल रूपाकार ही महत्त्वपूर्ण होता है····हन्सादेवी का स्नेह बी० के० के प्रति शुद्ध माधुर्य का स्नेह था···हन्सा ने मुझसे कहा है कि उसे बी० के० के निकट बैठकर संगीत सुनाने में जाने क्यों एक ऐसी आत्मिक तुष्टि मिलती है जिसका उत्तर उसके पास नहीं था। उसने किन्ही बड़े ही मर्मस्पर्शी क्षणों में उसे बताया था कि बी० के० के प्रति उसका कभी भी कोई शारीरिक प्रसंग नहीं रहा है लेकिन फिर भी उसे बराबर लगा है कि शायद बी० के० ही ऐसा व्यक्ति था जो बावजूद इतने निकट रहने के कभी भी उस तपती देह की आँच को अर्थ नहीं दे सका जो शायद शरीर धर्म के नाते बुरा भी नहीं कहा जा सकता···"

कहते-कहते मि० अनुज शर्मा ने जिस मेज़ के चारो ओर सब लोग बैठे थे उसकी ओर संकेत करते हुये कहा—"यह मेज बी० के० के और मेरे बीच की मेज है। मैंने इसे काफी हाऊस में नीलाम में ख़रीदा था। काफी हाऊस में इसी मेज के आर-पार बैठ कर हम दोनों ने न जाने कितने मर्म पूर्ण क्षण बिताये हैं। हंसादेवी आज भी इस मेज को उतना ही पवित्र मानती है जितना कि वह चित्र····"

सहसा लोगों की दृष्टि उस काले कपड़े पर गई जो उस कमरे में एक फ्रेम में मढ़ा हुआ रखा था और जिस पर कई टेढ़ी-मेढ़ी आल्पीनें ऐसी लगी थीं कि जैसे वह कोई चित्र हो। मि० अनुज शर्मा ने कहा—"यह वह आल्पीनें हैं जिन्हें प्रायः बात-चीत करते समय बी० के० अकस्मात ही अपनी उंगलियों से टेढ़ा सीधा किया करता था। उसकी यह अजीब आदत थी कि पिन कुशन में आल्पीनों को वह रहने ही नहीं देता था। कहता था पिन कुशन देखकर उसे लगता है कि जैसे इतने इन्सान किसी गहरे काले दलदल में फंसे हैं। केवल सिर ऊपर रह गया है और सब धंस गया है। उन्हें जब वह उस पिन कुशन से निकालता तो लगता जैसे किसी दलदल में धंसे हुये आदमी को ऊपर निकाल रहा है····लेकिन फिर वह उन आल्पीनों को अपनी उंगलियों के बीच रखकर क्यों तोड़ता या मरोड़ता था, क्यों झुकाता था, इसका रहस्य समझ में नहीं आता था। वह प्रायः आदमी को भी आल्पीन नुमा कहता था और आल्पीनों को भी आदमी नुमा कहा करता था।"

मि० शर्मा अब भी कहते जा रहे थे। उन्होंने बगल में पड़े हुये एक टूटे फूटे लेटर बाक्स की ओर संकेत करते हुये कहा—"और यह वह लेटर-बाक्स है जिसमें अपने जीवन के प्रथम प्रणय सन्दर्भ में वह पत्र डाला करता था। इस पूरे लेटर बाक्स को बी० के० ने कैसे अपनाया इसका भी रहस्य समझ में नहीं आता लेकिन वह इस लेटर-बाक्स को हमेशा अपने ड्राइंग रूम की एक सजावट बनाये रहा...."

कुछ रुककर मि० अनुज शर्मा ने फिर कहा—

"और यह फ़ियट नं० १०११ का माडल है जिसे वह अपने जीवन की सबसे बड़ी घटना मानता था। कहता था मौत भी कितनी शान्ति प्रिय होती है यह मैंने इस गाड़ी की दुर्घटना में ही अनुभव किया था। मृत्यु को इतने निकट से देखने के बाद उसे जीवन ही जैसे निस्सार मालूम पड़ता था। वह अक्सर कहा करता था कि जीवन का सबसे महत्वपूर्ण अनुभव मृत्यु का है... मैं नहीं जानता कि उसका इसमें तात्पर्य क्या था लेकिन जब आज बी० के० नहीं है तो मेरे कानों में यह शब्द बार-बार गूँजते रहते हैं...

"और हन्सादेवी का कथन है कि बी० के० में जीवन की स्फूर्ति और सहज ही गतिशील बनाने की इतनी तीव्र क्षमता थी कि वह अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से क्षण भर में जीवन की सार्थकता का बोध करा देता था। हन्सादेवी के इस कथन का मैंने कभी भो प्रतिवाद नहीं किया। मेरा उनका प्रसंग जीवन भर रहा लेकिन वह बराबर यही कहती रहीं कि बी० के० के० साथ क्षण दो क्षण बातचीत करने से ही जो सुख मिलता था वह उन्हें मेरे साथ पूरा जीवन बिता देने पर भी नहीं मिला...."

कहते-कहते वह रुक गये। कमरे में बैठे सभी लोग चुपचाप सुन रहे थे। सबको लग रहा था कि अब मि० अनुज शर्मा अपने जीवन के बारे में कुछ कहेंगे लेकिन जैसे वह प्रसंग उसकी जबान पर बार-बार आता और आकर रुक जाता था। वह जैसे उस एक प्रसंग को कहने के लिये अनेक प्रसंगों की कथा कहे जा रहे थे। किसी का साहस भी नहीं हो रहा था कि वह उनसे पूछे कि फिर प्रकाश का और आपका क्या संदर्भ है लेकिन तभी मि० अनुज शर्मा ने कहा—

"नारी जीवन की चरम उपलब्धि शायद वह प्रसव पीड़ा है जिसमें वह माँ बनती है। हन्सादेवी आज भी कहती है कि उनके जीवन का सबसे

मधुर क्षण शायद बी० के० के साथ बीता है किन्तु जब मैंने उनसे पूछा कि पीड़ा का कौन सा मर्म पूर्ण प्रसंग उनके जीवन में घटित हुआ है तो उन्होंने कहा कि प्रकाश का जन्म और उसकी प्रसव पीड़ा से अधिक सुखद पीड़ा उन्होंने जीवन में नहीं झेली है। आप लोग जानना चाहते हैं प्रकाश के बारे में। वह मेरे और हन्सादेवी के कुआंरेपन की उपज है। मैं उसका पिता हूँ लेकिन मुझे आज तक नहीं पता कि पिता होना क्या होता है। हन्सादेवी मां होने का सुख जानती है लेकिन मैं पिता होने का सुख नहीं जानता। आज भी मैं प्रकाश से मिलता हूँ तो चाहता हूँ मेरे अन्दर वह भाव आये लेकिन जाने क्यों चाहते हुये भी नहीं आता। हन्सादेवी मैनपुरी में प्रकाश को जन्म देकर इलाहाबाद चली आई। हन्सा-देवी के माता पिता ने प्रकाश को पाला पोसा लेकिन मैं जैसे उस घटना से जुड़ा ही नहीं....''

और जब श्री अनुज शर्मा अपनी बात समाप्त कर चुके तो जितने लोग बैठे थे सब अवाक से उनका मुँह देखते रहे। कुछ की उत्सुकता अब भी शान्त नहीं हुई थी। वह कुछ और पूछने वाले थे लेकिन सहसा मि० अनुज शर्मा की आँखों में आंसू देखकर सब चुप हो गये। पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट मि० चतुर्वेदी को लगा कि उनका इस तरह प्रश्न पूछना उचित नहीं था। वह स्वयम् अपने को कटा हुआ अनुभव कर रहे थे। सब लोगों का मौन जैसे किसी घटना हीन होने की निरर्थकता या किसी घटना की प्रतीक्षारत प्रेरणा सा लग रहा था।

तभी कहीं से कमरे का दरवाजा खटका। लोगों ने देखा कि राजा साहब हांफते हुये दौड़े चले आ रहे हैं। एक दम निकट आकर बोले—

''गजब हो गया...''

''क्या....'' जैसे सबके मुँह से निकल पड़ा।

''मीनाक्षी की कार खड्ड में गिरकर चूर-चूर हो गई...वह अब नहीं रही....''

वहाँ जितने लोग थे सबके मुँह से एक चीख निकल गई। सब लोग उठ खड़े हुये। सबके सब बाहर निकल आये। मि० अनुज शर्मा फिर भी जहाँ बैठे थे। स्थिर बैठे रह गये। उनकी आँखें शून्यवत सपाट दीवार को घूरती रह गई।

